

श्री उपासकदशांग सूत्र

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)



प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन

संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-३०५६०१

 (०१४६२) २५१२१६, २५७६६६ (फैक्स) २५०३२८

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का १२२ वाँ रत्न

श्री उपासकदशांग सूत्र

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द्र बांठिया
पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन
संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शास्त्रा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-३०५६०१
☎ : (०१४६२) २५१२१६, २५७६६६

द्रव्य सहायक
उदारमना श्रीमान् गुप्त साधर्मी बन्धु
प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, जोधपुर ☎ : २६२६१४५
२. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, ब्यावर ☎ : २५१२१६
३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल
आंबेडकर पुतले के बाजू में, मनमाड (नासिक) ☎ : २५२५१
४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बाँ० नं० २२१७, बम्बई-२
५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० काँ० सोसा० ब्लॉक नं० १०
स्टेट बैंक के सामने, मालेगांव (नासिक)
६. श्री एच. आर. डोशी जी-३६ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, दिल्ली-६ ☎ : २३२३३५२१
७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, अहमदाबाद
८. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, बुलडाणा
९. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, भीलवाड़ा
१०. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, इन्दौर
११. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, मेरठ (उ. प्र.)
१२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड, चैन्नई ☎ : २५३५७७७५

मूल्य : २०-००

प्रथम आवृत्ति

१०००

वीर संवत् २५३०

विक्रम संवत् २०६१

नवम्बर २००४

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☎ २४२३२६५, २४२७६३७

समर्पण सौरठ सप्तक

सुत जड़ाव मुल्तान, अंतेवासी रतन को ।
गुरु समर्थ गुण-खान, पाल सुरांजम जस लियो ॥१॥
रतन सिरेमल सेव, अठावीस छह वर्ष लग ।
पाय ज्ञान रस मेव, धन खीचन नगरी भई ॥२॥
पावस पाली पेख, प्रात करत पडिलेहणा ।
ज्ञान क्रिया गुण देख, चित्त चकोर पाया शशि ॥३॥
बालोतरा मझार, समभावे सही वेदना ।
वैयावद्य जयकार, किम भूलूँ वे दिन भला ॥४॥
बहुश्रुतजी महाराज, गिरा करोड़ों जो करूँ ।
श्रमणश्रेष्ठ गुरुराज, गीतारथ तुम जग कहे ॥५॥
जैसा सुणिया भाव, तव तव अंतेवासी सुं ।
सप्तम अंग अनुवाद, हुकम बजायो 'रतन' रो ॥६॥
करे समर्पित केम, जो अर्पित चरणे सदा ?
चहे कुशलता खेम, भव भव शरणो घीसियो ॥७॥

(द्वारा-श्री घीसूलालजी पितलिया सिरियारी पूर्व आवृत्ति में से)

निवेदन

जिन महापुरुषों ने अपने पुरुषार्थ (तप और संयम) के द्वारा अनादि काल से जीव के साथ लगे राग-द्वेष रूपी शत्रुओं को जीत कर केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त कर तीर्थंकर पद प्राप्त कर लिया, वे महापुरुष जगत् जीवों के हित के लिए अपनी विमल वाणी द्वारा अर्थ रूपी में देशना फरमाते हैं जिसे निर्मल बीज बुद्धि के निधान गणधर सूत्र रूप में गून्थित करते हैं। यानी अर्थात्मक आगम के प्रणेता तीर्थंकर प्रभु हैं। इसीलिए आगमों को तीर्थंकर प्रणीत कहा गया है। प्रबुद्ध पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि आगम साहित्य की जो प्रामाणिकता है उसका मूल कारण गणधर कृत होने से नहीं किन्तु अर्थ प्ररूपक तीर्थंकर की वीतरागता और सर्वज्ञता के कारण है। गणधर केवल द्वादशांगी की रचना करते हैं जबकि अंग बाह्य आगमों की रचना स्थविर भगवन्त करते हैं।

वर्तमान में स्थानकवासी परम्परा ने जिन बत्तीस आगमों को मान्यता दी है, उसका समय-समय पर विभिन्न रूप में वर्गीकरण किया गया है। समवायांग और अनुयोग द्वार सूत्र में केवल द्वादशांगी का निरूपण हुआ है। जबकि नंदी सूत्र में अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य ये दो रूप किये हैं। साथ ही अंग बाह्य के आवश्यक और आवश्यक व्यक्तिरिक्त, कालिक और उत्कालिक भेद किये गये हैं। व्याख्याक्रम विषयगत भेद आदि की दृष्टि से वर्तमान आगम साहित्य को चार भागों में भी विभक्त किया। यथा-चरणकरणानुयोग-जिसके अन्तर्गत मुख्य रूप से आचार सम्बन्धी आगमों का समावेश किया गया। धर्मकथानुयोग - इसमें कथा साहित्य आगमों का समावेश है। गणितानुयोग - गणित के विषय सम्बन्धी आगमों को इसमें लिया गया है। द्रव्यानुयोग-जीव अजीव आदि छह द्रव्यों आदि से सम्बन्धित आगमों का इसमें समावेश है। इसके अलावा सबसे अर्वाचीन वर्गीकरण जिसका वर्तमान में प्रचलन है, वह ग्यारह अंग, बारह उपांग, चार मूल, चार छेद और बत्तीसवां आवश्यक सूत्र। वर्तमान वर्गीकरण के अनुसार प्रस्तुत उपासकदशांग सूत्र सातवां अंग सूत्र है। इसमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अनेक गृहस्थ उपासकों में से दस उपासकों के जीवन का वर्णन है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि भगवान् महावीर स्वामी के तो एक लाख उनसठ हजार श्रावक थे फिर इसमें मात्र दस का श्रमणोपासकों का ही वर्णन कैसे आया। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है

अन्य आगमों में भी उत्कृष्ट विशिष्ट श्रमणोपासक का वर्णन आया है - जैसे अंतगडदशा सूत्र में सुदर्शन श्रमणोपासक का, भगवती सूत्र में तुंगिका के श्रमणोपासक, शंख-पुष्कलि, मुद्रक, पिंगल, ऋषिभद्र आदि का, ज्ञाताधर्मकथांग में सुबुद्धि, अरणिक, मण्डुक आदि का, राजप्रश्नीय में चित्तसारथी का, औपपातिक में अम्बड़ तथा उनके सात सौ शिष्यों का, निरयावलिका सूत्र में चेटक आदि का वर्णन है जिनके प्रत्येक आत्म-प्रदेश में धर्म का गाढ रंग चढ़ा हुआ था। इस सूत्र का नाम दशांग होने के कारण दस अध्ययन हैं। साथ ही सभी दस श्रावकों की समान दीक्षा पर्याय समान अवधिज्ञान, प्रतिमा आराधना सभी का उत्पाद प्रथम देवलोक, चार पल्योपम की स्थिति आदि में समानता होने से इस सूत्र में दस श्रावकों का ही वर्णन है।

इस सूत्र में वर्णित भगवान् महावीर स्वामी के दस श्रमणोपासकों का वर्णन पढ़ते हैं तो उनकी उत्तम साधना के साथ उनकी स्पष्टवादिता, दृढ़ आत्मबल आदि के स्पष्ट दर्शन होते हैं। उनकी दृढ़ता एवं सिद्धान्त प्रियता की स्वयं भगवान् ने अपने श्री मुख से प्रशंसा की है। ऐसे श्रमणोपासकों का जीवन चारित्र्य वर्तमान हीयमान युग के श्रावक वर्ग के लिए प्रेरणास्पद है। उन श्रेष्ठ श्रमणोपासकों का विस्तृत जीवन वर्णन तो इस सूत्र के पारायण से पता चलेगा। पर उन आदर्श श्रमणोपासकों के जीवन की जो विशेष घटनाएं, जिसके कारण भगवान् के श्रीमुख से उनकी प्रशंसा की गई। उनका संक्षिप्त में यहाँ वर्णन किया जा रहा है -

आनंद श्रमणोपासक - इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में भारत भूमि में वाणिज्य ग्राम था। वहाँ जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसी नगर में आनंद नाम का सेठ रहता था। जो ऋद्धि सम्पत्तिशाली था। जिसकी नगर में बहुत प्रतिष्ठा थी। यानी लोगों के लिए मेढीभूत था। राजा भी अपने राजकार्यों में समय-समय पर उनकी सलाह लिया करता था। उनकी पत्नी का नाम शिवानंदा था। एक बार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वाणिज्यग्राम के बाहर उद्यान में पधारे। देवताओं ने भगवान् के समवसरण की रचना की। सभी लोग भगवान् के दर्शनार्थ गये। आनंदजी भी गये। भगवान् का उपदेश सुनकर आनंदजी ने श्रावक के बारहव्रत ग्रहण किये जिसका वर्णन इस अध्ययन में किया गया है। आनंद श्रावक के इस अध्ययन के अवलोकन से मुख्य दो विशेष बातें सामने आती है।

आनंद जी, भगवान् से श्रावक के बारहव्रत स्वीकार कर जब श्रमणोपासक बने तो भगवान् ने बारहव्रतों में लगने वाले अतिचारों का बाद में खुलासा किया, सबसे पहले सम्यक्त्व का स्वरूप बताकर इसमें लगने वाले अतिचारों (दोषों) से बचने का उपदेश दिया। जिसके फलस्वरूप

आनंद श्रावक ने प्रतिज्ञा की - “मैं अन्ययूथिकादि को मान सम्मान नहीं दूंगा, बिना बोलाये बोलूंगा नहीं और उन्हें आहारादि का भी निमंत्रण नहीं दूंगा।” इससे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि व्रतों की महत्ता सम्यक्त्व के पीछे रही हुई है। यानी सम्यक्त्व है तो ही श्रावकपना है और सम्यक्त्व है तो ही साधुपना, बिना सम्यक्त्व के व्रतों का कोई महत्त्व नहीं।

दूसरी घटना उनके संधारे के समय की है। संधारे के दौरान धर्म के विशिष्ट चिंतन और उज्वल परिणामों के कारण अवधिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से उन्हें जब अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ जिससे वे पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा में लवण समुद्र में पांच सौ योजन तक और उत्तर में चूलहिमवान् पर्वत तक देखने लगे। ऊपर में सौधर्म देवलोक और नीचे रत्नप्रभा पृथ्वी के लोलुच्युत नरकावास को देखने लगे। उसी बीच भगवान् महावीर स्वामी का वाणिज्यग्राम पधारना हुआ। गौतम स्वामी भगवान् की आज्ञा लेकर बेले के पारणे के लिए ग्राम में गोचरी पधारे। उन्होंने बहुत से मनुष्यों से सुना कि आनंद श्रावक पौषधशाला में संलेखना संधारा किया हुआ है। अतएव गौतम स्वामी उन्हें दर्शन देने हेतु वहाँ गये। गौतम स्वामी के पधारने से आनंद श्रावक बहुत हर्षित हुआ और अपने अवधिज्ञान की बात उन्हें कही। गौतम स्वामी ने कहा कि श्रावक को अवधिज्ञान तो हो सकता है, पर इतने विस्तार वाला नहीं हो सकता है। इसलिए हे आनंद ! तुम इस बात का दण्ड-प्रायश्चित्त लो।

आनंद श्रावक बोला - ‘हे भगवन्! क्या जिनशासन में सत्य और यथार्थ भावों के लिए भी आलोचना और प्रायश्चित्त होता है?’ गौतम स्वामी ने कहा - ‘आनंद ऐसा नहीं है।’ तब आनंद श्रावक बोला तो फिर भगवन् ! आपको स्वयं को दण्ड प्रायश्चित्त लेना चाहिये। आनंद का यह कथन सुनकर गौतम स्वामी के मन में शंका उत्पन्न हुई। अतः भगवान् के पास आकर सारा वृत्तान्त सुनाया। भगवान् ने कहा - हे गौतम! आनंद श्रावक का कथन सत्य है। अतः वापिस आनंद श्रावक के पास जाकर क्षमा मांगो और इस बात का प्रायश्चित्त लो। गौतम स्वामी बिना पारणा किये आनंद श्रावक के यहाँ क्षमा मांगने गये। इसे कहते हैं श्रावक की दृढधर्मिता एवं स्पष्टवादिता, आज के परिप्रेक्ष्य में यह अनुकरणीय है।

कामदेव श्रावक - चंपानगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगरी में कामदेव नामक एक ऋद्धि सम्पन्न सेठ रहता था। उसकी धर्मपत्नी का नाम भद्रा था। आनंदश्रावक की तरह वह भी नगर प्रतिष्ठित एवं राजा और प्रजा के लिये मान्य था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का वहाँ पधारे। कामदेव भगवान् के दर्शन करने

के लिए गया। आनंद श्रावक की तरह कामदेव ने भी श्रावक के व्रत अंगीकार किये। एक दिन वह अपनी पौषधशाला में पौषध करके धर्म ध्यान में रत था। अर्द्ध रात्रि के समय एक मिथ्यादृष्टि देव पिशाच का भयंकर रूप बना कर कामदेव श्रावक को अपने पौषधोपवास आदि व्रतों से विचलित करने का प्रयास किया। किन्तु वह निर्भय होकर धर्म ध्यान में स्थिर रहा। इसके बाद उस देव ने हाथी का रूप बनाया और कामदेव श्रावक को अपनी सूंड में उठाकर आकाश में फैंका, वापिस आकाश से गिरते हुए कामदेव श्रावक को अपने तीक्ष्ण दांतों में झेल कर फिर पृथ्वी पर डाल कर अपने पैरों से तीन बार कुचला। इस वेदना से भी जब कामदेव श्रावक विचलित नहीं हुआ तब उस पिशाच ने महाकाय सर्प का रूप धारण करके कामदेव श्रावक के शरीर में डंक मारे। इतने पर भी कामदेव श्रावक निर्भय होकर धर्मध्यान में दृढ़ रहा। उसके परिणामों में जरा भी फर्क नहीं आया तो पिशाच हार कर अपने असली देव रूप में प्रकट हुआ और कहने लगा-अहो कामदेव श्रमणोपासक! तुम धन्य हो, तुम्हारा जन्म सफल है। हे देवानुप्रिय! एक समय शक्रेन्द्र महाराज ने चौरासी हजार सामानिक देवों व अन्य देवों के सामने आपकी दृढ़धर्मिता की प्रशंसा की। शक्रेन्द्र महाराज के कथन पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। इसलिए परीक्षा लेने के लिए मैं यहाँ आया और तुम्हें अनेक प्रकार के उपसर्ग, परीषह उत्पन्न कर कष्ट पहुँचाया। पर आप विचलित नहीं हुए। शक्रेन्द्र महाराज ने आपकी दृढ़ता की जैसी प्रशंसा की वास्तव में आप वैसे ही है। मैंने जो आपको कष्ट पहुँचाया उसके लिए मुझे क्षमा कीजिये। आगे से ऐसा कभी नहीं करूँगा। ऐसा कह कर देव दोनों हाथ जोड़कर कामदेव श्रावक के पैरों में गिर पड़ा।

एक समय भगवान् ग्रामानुग्राम विचरते हुए चम्पानगरी पधारे। कामदेव श्रावक भगवान् के दर्शन करने गया। भगवान् ने निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को सम्बोधित करते हुए कामदेव श्रावक को देव द्वारा एक ही रात्रि में दिये हुए तीनों उपसर्गों को बताया और कहा - एक गृहस्थ श्रावक भी देव द्वारा दिये गये उपसर्गों को समभाव से सहन करता हुआ धर्म में दृढ़ रहता है तो श्रमण निर्ग्रन्थों को तो ऐसे उपसर्गों को सहन करने के लिए कितना तत्पर रहना चाहिये? भगवान् की इस बात को सब निर्ग्रन्थों ने विनय पूर्वक स्वीकार की।

इसी प्रकार चुलनीपिताजी श्रावक, सुरादेवजी श्रावक, चुलशतकजी श्रावक तथा सकडालजी श्रावक ने भगवान् से श्रावक के बारहव्रत स्वीकार किये एवं उन्हें भी पौषधव्रत की आराधना करते हुए मिथ्यादृष्टि देव द्वारा उपसर्ग एवं परीषह दिये गये। पर वे श्रमणोपासक कामदेव श्रावक की भांति पूर्णरूपेण आये उपसर्गों पर उत्तीर्ण नहीं हो सके। चुलनीपिताजी श्रावक ने पुत्रों की

घोरतम हत्या का आघात सहन कर लिया। किन्तु अपनी माता की हत्या का प्रसंग उपस्थित होने से विचलित हो गये। इसी प्रकार सुरादेव जी श्रावक अपने तन में भयंकर रोगों की उत्पत्ति होना जानकर, चुल्लशतकजी श्रावक धन के विनाश से एवं सकडाल जी श्रावक अपनी धर्म सहायिका की हत्या के भय से विचलित हुए। पर विचलित होकर भी उन्होंने देव की मांग के अनुसार धर्म छोड़ने का विचार नहीं किया। न ही उन्होंने उपसर्ग न देने की उनसे प्रार्थना ही की और वे तुरन्त संभल गये।

कुंडकोलिकजी श्रावक ने तो अपनी तर्क शक्ति और विमल बुद्धि के बल पर देव से वार्तालाप कर उसे पराजित कर दिया। जिसकी सिद्धान्तरक्षणी विमल बुद्धि के लिए स्वयं प्रभु महावीर ने उन्हें धन्यवाद दिया 'धण्णोसि णं कुण्डकोलिया'।

इसके अलावा श्रमणोपासक सकडालजी की दृढ़धर्मिता तो वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विशेष उपादेय है। जिस सकडालजी ने अपने जीवन के लम्बे काल तक जिस गोशालक को गुरु ही नहीं बल्कि उन्हें भगवान् के रूप में मानता रहा। पर ज्यों ही भगवान् महावीर का सम्पर्क हुआ और सत्य धर्म को समझ कर श्रावक के व्रतों को स्वीकार कर लिया। इसके बाद तो अपने पूर्व गुरु के घर आने पर उसको वंदन नमस्कार करना तो दूर बल्कि उसके आने पर पीठ फेर कर बैठ गया। वह व्यवहार गोशालक के लिए कितने खटकने वाला होगा। आजकल के लोग सकडालजी श्रावक के इस बदले हुए व्यवहार को कट्टर सम्प्रदायवादी एवं सभ्यता के विरुद्ध कह सकते हैं पर गहराई से चिंतन मनन करे तो सकडालजी का श्रावक व्यवहार अपने पूर्व गुरु गोशालक के साथ उचित ही लगता है। क्योंकि जब तक व्यक्ति सही स्थिति को नहीं समझता है तब तक ही वह कुगुरुओं के चक्कर में पड़ा रहता है। जब उसे यह पता चल जाता है कि ये कुगुरु स्वयं डूबने का कार्य कर रहे हैं तो मुझे कैसे तिरायेंगे? अतएव सुज्ञ श्रावक वर्ग को आदर्श श्रमणोपासक सकडालजी का उदाहरण सामने रखकर कुगुरुओं के सम्पर्क से अपना पिण्ड छुड़ा लेना ही उनके लिए हितकारक है।

महाशतकजी श्रमणोपासक का अध्ययन हमें प्रेरणा देता है कि सत्य होते हुए श्रावक को अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये। महाशतकजी श्रावक पौषधशाला में संलेखना करके बैठा हुआ उस समय उनकी पत्नी कामोन्मत्त होकर श्रमणोपासक को कामभोगों के लिए आमन्त्रित करने लगी तो श्रावकजी को क्रोध आ गया और उन्होंने अवधिज्ञान से उपयोग लगा कर रेवती से कहा - 'तू सात दिन के भीतर-भीतर अलसक (विषूचिका) रोग से पीड़ित होकर आर्तध्यान करती हुई काल धर्म को प्राप्त हो जावेगी।'

इसी दरम्यान भगवान् ग्रामानुग्राम विचरते हुए राजगृह नगर में पधारे। उन्होंने अपने शिष्य गौतम स्वामी को कहा - मेरा अन्तेवासी महाशतक श्रावक जो पौषधशाला में संलेखना करके बैठा हुआ है। उसने रेवती को सत्य किन्तु अप्रिय वचन कहे हैं। श्रावक को जो बात सत्य (तथ्य) होते हुए भी दूसरे को अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय लगे ऐसा वचन बोलना नहीं कल्पता है। अतः तुम जाओ और महाशतक श्रावक से कहो कि इस विषय की आलोचना कर यथायोग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करे। भगवान् के उक्त कथन को स्वीकार कर गौतम स्वामी महाशतक श्रावक के यहाँ पधारे। श्रावक ने उन्हें वंदना नमस्कार किया और गौतम स्वामी के कथनानुसार भगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य कर यथायोग्य आलोचना पूर्वक प्रायश्चित्त लिया।

इस प्रकार दस ही श्रावकों का जीवन हमारे लिए आदर्श रूप है। उन आदर्श श्रमणोपासकों के जीवन को संमुख रख कर हम अपनी आत्मपरिणति की ओर दृष्टिपात करे और यथाशक्ति अपने में रही कमजोरियों को निकालने का प्रयास करे तो हम भी आदर्श श्रमणोपासक बन सकते हैं। आज भी एक भवावतारी बनने में पंचम आरा बाधक नहीं है।

दस ही श्रावकों ने चौदह वर्ष पूरे करके पन्द्रहवें वर्ष में कुटुम्ब का भार अपने-अपने ज्येष्ठ पुत्रों को संभला कर स्वयं विशेष साधना में लग गये। सभी ने बीस बीस वर्ष तक श्रावक पर्याय का पालन किया। अन्त में संलेखना संधारा करके सभी श्रावक पहले देवलोक में उत्पन्न हुए और वहाँ चार पत्योपम का आयुष्य पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर वहाँ से मोक्ष पधारेगे।

मैंने तो प्रस्तुत सूत्र पर यह सामान्य निवेदन लिखा है। विशेष में तो पाठक वर्ग को सम्यग्दर्शन पत्रिका के आद्य संस्थापक सम्पादक आदरणीय रतनलालजी सा. डोशी द्वारा लिखित “भगवान् के आदर्श श्रमणोपासक” प्रस्तावना को पढ़ना चाहिये। जो पूर्व में प्रकाशित उपासकदशांग सूत्र में आपके द्वारा लिखा गया है वह इस आवृत्ति में भी दिया गया है।

आदरणीय तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री घीसूलालजी सा. पितलिया द्वारा अनुवादित संघ द्वारा उपासकदशांग सूत्र का पूर्व में प्रकाशन हो चुका है। पर संघ की आगम बत्तीसी योजना के अनुसार उसमें कठिन शब्दार्थ एवं विशेष विवेचन नहीं होने से इसका नये सिरे से अनुवाद करना उचित लगा ताकि सभी आगमों में एकरूपता रहे। इसके लिए सर्व प्रथम आदरणीय पितलिया सा. से निवेदन किया गया पर आपश्री ने अपनी असमर्थता बतलाई। अतः इसका पुनः अनुवाद सम्यग्दर्शन के सह-सम्पादक श्री पारसमलजी सा. चण्डालिया ने संघ की आगम

बत्तीसी प्रकाशन योजना के अनुसार मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ एवं विवेचन सहित तैयार किया। इसके पश्चात् मैंने भी इसका अवलोकन किया। प्रस्तुत आगम की भाषा सरल है, जिसे सामान्य जानकार साधक भी आसानी से पढ़ कर हृदयंगम कर सकता है।

इसके प्रकाशन के अर्थ सहयोगी **एक गुप्त साधर्मी बन्धु** है। आप स्वयं का नाम देना तो दूर अपने गांव का नाम देना भी पसन्द नहीं करते। आप संघ द्वारा प्रकाशित होने वाले अन्य प्रकाशन जैसे तेतली-पुत्र, बड़ी साधु वंदना, स्वाध्याय माला, अंतगडदसा सूत्र में भी सहयोग दे चुके हैं। इसके अलावा कितनी ही बार सम्यग्दर्शन अर्द्ध मूल्य योजना में सहकार देकर अनेक साधर्मी बन्धुओं को सम्यग्दर्शन मासिक पत्र अर्द्ध मूल्य में ग्राहक बनने में सहयोगी बने हैं। दो साल पूर्व संघ द्वारा लोंकाशाह मत समर्थन, जिनागम विरुद्ध मूर्ति पूजा, मुखवस्त्रिका सिद्धि एवं विद्युत बादर तेउकाय है प्रकाशित हुई तो आपने इन चार पुस्तकों के सेट को अपनी ओर से लगभग पांच सौ संघों को फ्री भिजवाये। इस प्रकार आप एकदम मूक अर्थसहयोगी है। आप संघ के प्रत्येक प्रकाशन में मुक्त हस्त से सहयोग देने के लिये तत्पर रहते हैं। ऐसे उदारमना गुप्त अर्थ सहयोगी पर संघ को गौरव है। संघ आपका हृदय से आभार मानता है। आप चिरायु रहे आपकी यह शुभ भावना उत्तरोत्तर वृद्धिगत रहे। इसी मंगल कामना के साथ।

पाठक बन्धुओं के समक्ष यह प्रकाशन अपने नूतन परिवेश में प्रस्तुत किया जा रहा है। कृपया इसका अवलोकन करावें और जहाँ सुज्ञ पाठक वर्ग को कहीं त्रुटि ध्यान में आवे हमें सूचित करने की कृपा करावें, हम उनके आभारी होंगे।

जैसा कि पाठक बन्धुओं को मालूम ही है कि वर्तमान में कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्य में काफी वृद्धि हो चुकी है। फिर भी दानदाता के आर्थिक सहयोग से इसका मूल्य मात्र **बीस रुपया** ही रखा गया है जो कि वर्तमान् परिप्रेक्ष्य में ज्यादा नहीं है। पाठक बन्धु इसका अधिक से अधिक उपयोग करेंगे।

इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.)

दिनांक: १०-११-२००४

संघ सेवक

नेमीचन्द बांठिया

अ. भा. सु. जैन सं. र. संघ, जोधपुर

भगवान् के आदर्श श्रमणोपासक

जिनोपदिष्ट द्वादशांगी का सातवाँ अंग 'उपासकदशांग सूत्र' है। इसमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अनेक गृहस्थ-उपासकों में से दस उपासकों का चरित्र वर्णन है। भगवान् के आनंद-कामदेव आदि उपासकों का चरित्र हम उपासकों के लिए पहले भी आदर्श (दर्पण) रूप था, आज भी है और आगे भी रहेगा। हम इस आदर्श को सम्मुख रख कर अपनी आत्मा, अपनी दशा और परिणति देखें और यथाशक्य अपनी त्रुटियों, दोषों और कमजोरियों को निकाल कर वास्तविक श्रमणोपासक बनने का प्रयत्न करें, तो हमारा यह भव और परभव सुधर सकता है और हम एक भवावतारी भी हो सकते हैं। यदि अधिक भव करे और सम्यक्त्व का साथ नहीं छोड़े, तो पन्द्रह भव-देव और मनुष्य के कर के सिद्ध भगवान् बन सकते हैं।

वे श्रमणोपासक धन-वैभव, मान-प्रतिष्ठा और अन्य सभी प्रकार की पौद्गलिक सम्पदा से भरपूर एवं सुखी थे। परन्तु जब भगवान् महावीर प्रभु का पावन उपदेश सुना, तो उनकी रुचि निर्वृत्ति की ओर बढ़ गई। भगवान् के प्रथम दर्शन में ही उन्होंने अपने व्यापार-व्यवसाय, आशा-तृष्णा और भोग-विलास पर अणुव्रत का ऐसा अंकुश लगाया कि वे वर्तमान स्थिति में ही संवरित रहे। साथ ही उनका लक्ष्य प्रवृत्ति घटा कर निर्वृत्ति बढ़ाने का भी रहा ही। इसी से वे चौदह वर्ष तक व्यापार व्यवसाय और गृह परिवार में रह कर अणुव्रतादि का पालन करते रहे। तत्पश्चात् व्यवसायादि से निवृत्त हो कर उपासक-प्रतिमाओं की आराधना करने के लिए पौषधशाला में चले गये और विशेष रूप से धर्म की आराधना करने लगे।

अन्यों की संगति से बचे

हम उन आदर्श श्रमणोपासकों के साधना जीवन पर दृष्टिपात करें, तो हमें उनकी भगवान् श्रमण-निर्ग्रन्थ और जिनधर्म के प्रति अगाध एवं अटूट श्रद्धा के दर्शन स्पष्ट रूप से होते हैं। वे एकान्त रूप से जिन-धर्म के ही उपासक थे। प्रतिमाराधना तो बाद की बात है। जिस दिन उन्होंने भगवान् के प्रथम दर्शन किये, प्रथम उपदेश सुना और सम्यग्दृष्टि तथा देशविरत श्रमणोपासक बने, उसी दिन, उसी समय उन्होंने भगवान् के सम्मुख यह प्रतिज्ञा कर ली कि - "मैं अब अन्ययूथिक देव अन्ययूथ के साधवादि और जिनधर्म को छोड़ कर अन्ययूथ में गये - सम्यक्त्व एवं जिनधर्म से पतित हुए वेशधारियों को वंदन नहीं करूँगा। उनसे सम्पर्क भी नहीं रखूँगा, अपने पूर्व के देव-गुरु और साधर्मि से जिन से उस दिन के पूर्व तक उसका सम्बन्ध रहा - हेय जान कर उन्होंने त्याग दिया। आज के लौकिक-दृष्टि वाले कई जैनी अपना मार्ग भूल गये हैं।

उन्होंने राजनैतिक एवं सामाजिक-लौकिक प्रचारकों से प्रभावित हो कर 'सर्वधर्म समभाव' का उनका घोष अपना लिया और अपना आदर्श छोड़ दिया। इस लौकिक प्रचार ने जैन उपदेशकों और लेखकों को भी प्रभावित किया। उन्होंने इस प्रचार को धर्म एवं शास्त्र सम्मत प्रमाणित करने के लिए 'अनेकान्त' का झूठा सहारा ले कर मिथ्यावाद चलाया और धर्मश्रद्धा की जड़ें ही काटने लगे। यदि उपासक-वर्ग उनके बहकावे में नहीं आवे और इन आदर्श उपासकों के साधनामय जीवन पर ध्यान दे, तो अपने धर्म में स्थिर रह सकते हैं।

समन्वय नहीं

अनेकान्त को रक्षक के बदले भक्षक बनाने वालों की चाल से बचने के लिए श्रमणोपासक आनन्द की इस प्रतिज्ञा पर ध्यान देना चाहिये कि - "मैं अन्ययूथिकादि को मान-सम्मान नहीं दूँगा, बिना बोलाये बोलूँगा भी नहीं और उन्हें आहारादि का निमंत्रण भी नहीं दूँगा।" कुछ दिन पूर्व तक जिन का उपासक था, भक्त था, परम श्रद्धा से एक मात्र उन्हें ही उपास्य एवं आराध्य मानता था, उन गोशालक के अपने घर आने पर भी जिसने आदर नहीं दिया और इतना भी नहीं कहा कि - "आइये, बैठिये।" एक बराबरी के गृहस्थ के आने पर भी हम - "आइये, पधारिये, विराजिये" आदि शब्दों से आगत का स्वागत करते हैं, तब जिन्हें वर्षों तक परम आराध्य मान कर वन्दनादि करते रहे - सर्वोत्कृष्ट सम्मान देते रहे, उसी के आगमन पर मुख फेर कर उपेक्षा करना कितना खटकने वाला होगा - आज की दृष्टि में? आज के ऐसे लोगों की दृष्टि में यह सभ्यता के विरुद्ध व्यवहार है। ऐसे सभ्यतावादी लोग सद्दालपुत्र को 'कट्टरपंथी' या 'सम्प्रदायवादी' कह सकते हैं। किन्तु ऐसी बात नहीं है। ऐसा वही सोच सकता है जिसकी दृष्टि में चोर और साहूकार, कूलटा और सती, विष और अमृत में, एक बाल अथवा भोंदू के समान समादर हो। जो काँच और रत्न में समभावी हो। उस सुश्रावक ने समझ लिया कि ये लोगों को उन्मार्ग में ले जाने वाले हितशत्रु हैं जीवों को भवावटवी में भटक कर दुःखी करने वाले हैं, विष से भी अधिक भयानक हैं। इनकी तो छाया से भी बचना चाहिये। हम जब तक अनजान होते हैं, तब तक मित्र रूप में प्रिय लगने वाले ठग से घनिष्ठता रखते हैं, परन्तु ज्यों ही उसकी असलियत ज्ञात हो जाती है, त्यों ही उससे बच कर दूर रहने लगते हैं। यही बात कुप्रावचनिकों के विषय में समझनी चाहिये। इस प्रकार श्रमणोपासक श्री आनन्दजी की प्रतिज्ञा और सकडालजी का गोशालक का आदर नहीं करना सर्वथा उचित है। ऐसा ही दूसरा उदाहरण ज्ञातार्थकथांग सूत्र अ० ५ का श्रमणोपासक सुदर्शनजी का है, जिन्होंने अपने पूर्व के धर्म गुरु परिव्राजकाचार्य शुकजी का आदर नहीं किया था। परिव्राजकाचार्य सरल थे, सत्यान्वेषी थे। सुदर्शनजी का परिवर्तन और अनादर उनके लिये भी लाभदायक हुआ और वे अपने

शिष्यों के साथ निर्ग्रन्थ-धर्म में दीक्षित होकर महात्मा थावच्चापुत्र अनगार के शिष्य बन गए और आराधक हो कर मुक्त हो गए।

अन्ययूथिक देव और उसके गुरुवर्ग एवं अपने से निकल कर अन्ययूथ में मिले हुए के प्रति ही श्रमणोपासक का यह अनादर पूर्ण व्यवहार है, परन्तु अपमान करने का नहीं। गृहस्थ के साथ ऐसा व्यवहार नहीं होता, क्योंकि गृहस्थ से सम्बन्ध या तो पारिवारिक होता है या सामाजिक एवं व्यावसायिक, विधर्मी से धार्मिक नहीं होता। अतएव उसका जो यथोचित आदर होता है, वह लौकिक आधार पर होता है और अन्यतीर्थी साधु तो मात्र धर्म से ही सम्बन्धित होते हैं।

आजकल अनेकान्त का मिथ्या सहारा लेकर अन्यो से समन्वय कर के उन्हें भी सच्चे मान कर आदर देने की तथाकथित जैन विद्वानों ने जो कुप्रवृत्ति अपनाई है, वह उपादेय नहीं है। यदि इस प्रकार का समन्वय श्रमण भगवान् महावीर प्रभु को मान्य होता, तो सद्दालपुत्र के नियतिवाद का खण्डन कर पुरुषार्थवाद का मण्डन नहीं करते और कुण्डकोलिक के नियतिवाद के खण्डन की सराहना नहीं करते, जबकि सम्यक् नियति को तो स्वीकार किया ही है और अन्य कारणों को भी स्वीकार करते हुए नियति मान्य की है। इससे स्पष्ट है कि स्याद्वाद एवं अनेकान्त सम्यक् हो और सिद्धांत के अनुकूल हो, तभी मान्य हो सकता है, अन्यथा वह मिथ्या होता है और अमान्य रहता है। जहाँ जिनेश्वर भगवंत के धर्मदेश के किंचित् भी असहमति हो, वहाँ उपेक्षा ही रहती है। जमाली आदि निहव एक को छोड़ कर सभी बातों में सहमत थे। केवल एक विषय की असहमति एवं विरोध के कारण वे मिथ्यादृष्टि एवं संघबाह्य ही माने गए। सुश्रद्धा के अभाव में विशुद्ध चर्या और आचार-धर्म का प्रतिपालन भी असम्यक् तथा संसार का ही कारण मानने वाला जैन दर्शन, गुड़ और गोबर को एकमेक करने वाले असम्यक् समन्वय को स्वीकार नहीं करता। अतएव आगमोक्त श्रमणोपासकों के चरित्र का ही अनुसरण करना हमारे लिए हितकारी होगा।

अरिहंत चेड़याइं प्रक्षिप्त है?

आनंदाध्ययन का 'अरिहंत चेड़याइं' शब्द भी विवाद का कारण बना है। मनुष्य का अहं उसे जान-बूझ कर अभिनिवेशी (हठाग्रही) बना कर कुकृत्य करवाता है। 'अरिहंत चैत्य' शब्द भी मताग्रह के बल से मूलपाठ में जा बैठा। सब से पहले 'चेड़याइं' घुसा और उसके बाद 'अरिहंत' पहुंच कर जुड़ गया। टीका के शब्दों से भी लगता है कि 'अरिहंत' शब्द टीकाकार द्वारा बताये हुए लक्षण के सहारे से मूलपाठ में घुस गया हो। सम्बन्धित पाठ का संस्कृत रूप टीका में इन अक्षरों में हैं -

“अन्ययूथिक परिगृहीतानि वा चैत्यानि”

इन अक्षरों के बाद टीकाकार ने “अर्हत्प्रतिमा लक्षणानि” अक्षरों से अन्ययूथिक परिगृहीत के लक्षण के रूप में वे शब्द लिखे हैं। यदि टीकाकार के समक्ष मूल में ‘अरिहंत चेइयाइं’ शब्द होता, तो संस्कृत रूप - “अन्ययूथिक परिगृहीतानि अर्हत् चैत्यानि” होता।

इतना होने पर भी वह पक्ष जिस अभाव की पूर्ति करना चाहता था, वह नहीं हो सकी। वह अभाव तो वैसा ही रहा। आनंदजी के साधना के व्रतों और भगवान् के बताये हुए अतिचारों में ऐसा एक भी शब्द नहीं है, जो मूर्ति की वंदना-पूजा आदि का किंचित् भी संकेत देता हो। उनकी ऋद्धि-सम्पत्ति का वर्णन है, भगवान् को वंदना करने जाने, व्रत ग्रहण करने, प्रतिमा आराधन आदि का जो वर्णन है, उनमें कहीं भी उनके मन्दिर जाने, मूर्ति पूजने-वंदने आदि (जिसे आज धर्म साधना का प्रमुख अंग माना जाता है) उल्लेख बिलकुल नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय जिन-प्रतिमा की पूजनादि प्रथा जैन-संघ में थी ही नहीं। न किसी श्रावक के वर्णन में है और न किसी साधु के चरित्र में। धर्म के विधि-विधानों में भी नहीं है, फिर एक-दो शब्द प्रक्षेप करने से क्या होता है?

चरित्र हमारा मार्गदर्शक है

भगवान् के आदर्श उपासकों का चरित्र हमारे लिए उत्तम मार्गदर्शक है। उनकी धीरता गंभीरता, धर्म-दृढ़ता, अटूट आस्था और देव-दानव के घोर उपसर्ग को शान्ति पूर्वक सहन करने का आत्मसामर्थ्य हमारे सब के लिए अनुकरणीय है।

श्री आनंदजी की स्पष्टवादिता, कामदेवजी की दृढ़ता, अडिगता और सहनशीलता, कुण्डकोलिकजी की सैद्धांतिकपटुता, सकडालपुत्र जी की कुप्रावचनिक पूर्वगुरु के प्रति अवहेलना-झूठी भलमनसाहत का अभाव आदि गुण अनुमोदनीय ही नहीं, अनुकरणीय है।

प्रबल शक्तिशाली भयानक दैत्य एवं पिशाच जैसे देव से भयभीत न होकर तीनों परीक्षा में उत्तीर्ण होने का श्रेय तो एकमात्र कामदेवजी को ही मिला है। उनके समक्ष देव भी पराजित हुआ। देव की सीमातीत क्रूरता भी हार गई। किन्तु अन्य श्रमणोपासक डिगे। श्री चुलनीपिताजी ने पुत्रों की हत्या का घोरतम आघात सहन कर लिया, परन्तु माता की हत्या का प्रसंग आने पर वे विचलित हो गए, इसी प्रकार सुरादेवजी अपने तन में भयानक रोगों की उत्पत्ति होना जान कर, चूलशतकजी धन-विनाश से, सकडालपुत्र जी धर्मसहायिका, धर्मरक्षिका, सुख-दुःख की साथिन पत्नी की हत्या के भय से विचलित हुए। परन्तु विचलित हो कर भी उन्होंने उस देव की

माँग के अनुसार धर्म छोड़ने का तो विचार ही नहीं किया, न प्रार्थना की, न गिड़गिड़ाये। उन्होंने साहस के साथ उस पर आक्रमण कर दिया। वे उसे देव नहीं, क्रूर मानव ही समझ रहे थे।

गृहस्थ प्रत्याख्यानवरण कषाय के उदय से युक्त होता है। उदयभाव की न्यूनाधिकता तो मनुष्यों में होती ही है। किसी का पुत्र पर अधिक स्नेह होता है, तो किसी का माता अथवा पत्नी पर। सुरादेवजी ने सोचा होगा कि भयंकर रोगों के उत्पन्न होने से शरीर की जो दुर्दशा होगी और आत्मा में अशांति उत्पन्न हो कर दुर्ध्यान होगा, वह साधना से पतित कर देगा। इस आशंका के मन में उत्पन्न होते ही वे विचलित हो गए, चूलशतकजी पुत्र-हत्या से नहीं, परन्तु धन-विनाश से डिगे। उन्हें धनविनाश से प्रतिष्ठा का विनाश लगा होगा और दारिद्र्य जन्य दुःखों ने डराया होगा।

श्री आनन्दजी तो घर छोड़ कर अन्य स्थान की पौषधशाला में चले गए थे, कदाचित् कामदेवजी भी अन्यस्थ पौषधशाला में गये हों, शेष चूलनीपिताजी आदि अपने भवन के किसी भाग में नियत की हुई पौषधशाला में ही आराधना करते रहे। यह बात उपसर्ग के समय उनकी ललकार माता एवं पत्नी के सुनने और उनके समीप आ कर भ्रम मिटाने और शुद्धिकरण करवाने की घटना से ज्ञात होती है।

दस ही क्यों ?

भगवान् महावीर प्रभु के लाखों श्रमणोपासकों में केवल दस ही ऐसे उपासक हों और अन्य इस श्रेणी के नहीं हों, ऐसी बात नहीं है। अंतगड सूत्र के सुदर्शन श्रमणोपासक, भगवती-वर्णित तुंगिका के श्रावक एवं शंख-पुष्कलि आदि कई थे, जिनके प्रत्येक आत्म-प्रदेश में धर्म का रंग अत्यंत गाढ़-गाढ़तम चढ़ा हुआ था। इस धर्म-रंग को छुड़ाने की शक्ति किसी देव-दानव में भी नहीं थी।

यह सूत्र 'दशांग' होने के कारण दस अध्ययन - दस उपासकों के चरित्र - तक ही सीमित है। ये दस ही श्रमणोपासक बीस वर्ष की श्रावक ऋषय, प्रतिमा आराधक, अवधिज्ञान प्राप्त प्रथम स्वर्ग में उत्पाद, चार पत्न्योपम की स्थिति और बाद के मनुष्यभव में महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति पाने वाले हुए। इस प्रकार की साम्यता वाले दस श्रमणोपासकों के चरित्र को ही इस सूत्र में स्थान देना था, अतएव आगमकार ने दस चरित्र ले कर शेष छोड़ दिये।

देवेन्द्र और जिनेन्द्र से प्रशंसित

वे आदर्श श्रमणोपासक देवेन्द्र और जिनेन्द्र से प्रशंसित थे। कामदेव श्रावकजी की धर्मदृढ़ता

आदि की प्रशंसा सौधर्म स्वर्ग के अधिपति, असंख्य देव-देवियों के स्वामी शक्रेन्द्र ने की थी। एक अविश्वासी देव उन्हें चलायमान करने आया। उसने पिशाच, गजराज और नागराज का रूप बना कर कामदेव जी को घोरतिघोर उपसर्ग दिये, किन्तु वह उन्हें धर्म से च्युत नहीं कर सका। वह निष्फल हुआ, पराजित हुआ। उसे कामदेवजी के चरणों में गिर कर क्षमा माँगनी पड़ी। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रमणोपासक कामदेवजी की प्रशंसा की और श्रमण-निर्ग्रन्थों को उनका अनुकरण करने का उपदेश दिया और कुण्डकोलिक श्रमणोपासक को उसकी सिद्धांत-रक्षिणी विमल बुद्धि पर धन्यवाद दिया। - 'धण्णेसि णं तुमं कुण्डकोलिया!' (अ. ६) और मद्दुक श्रमणोपासक को कहा - 'सुदु ण मद्दुया। साहुणं मद्दुया।' (भग० १८-७)

ऐसे थे वे महामना आदर्श श्रमणोपासक। धर्म में पूर्ण निष्ठा, दृढ़ आस्था और प्राणों की बाजी लगा कर भी स्थिर रहने की दृढ़ता होना परम आवश्यक है। इससे भव-बन्धन कट कर मुक्ति सन्निकट होती है।

प्रतिमाओं का स्वरूप और श्रमणोपासक चरित्र

प्रतिमाओं का नाम और आगम-वर्णित स्वरूप पर विचार करते लगता है कि अंत की दो-तीन प्रतिमाओं के पूर्व की प्रतिमाएं ऐसी नहीं कि जिसमें गृह-त्याग कर उपाश्रय में रहते हुए साधना करना आवश्यक ही हो जाय, जैसे-दर्शन प्रतिमा है। इसमें सम्यक्त्व का निरतिचार शुद्ध पालन करना अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त अन्य साधना जो प्रतिमाधारण करने के पूर्व की जाती थी और जिन व्रतों का पालन होता था, वह पालन होता रहे। इस प्रतिमा के लिए घरबार, कुटुम्ब-परिवार आदि छोड़ना आवश्यक नहीं लगता।

२. दूसरी प्रतिमा में प्रथम प्रतिमा के दर्शनाचार के सिवाय पांच अणुव्रत और तीन गुणव्रत का पालन करना आवश्यक है।

३. तीसरी में सामायिक और देशावकासिक व्रत का पालन करने की अधिकता है।

४. चौथी में अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को प्रतिपूर्ण पौषध करना विशेष रूप में बढ़ जाता है।

५. पाँचवीं में दिन को ब्रह्मचर्य का पालन करना और रात में परिमाण कर के मर्यादित रहना होता है, स्नान और रात्रिभोजन का भी त्याग होता है।

पाँचवीं प्रतिमा तक ब्रह्मचर्य का सर्वथा त्याग करना और चौथी तक स्नान और रात्रि-भोजन का त्याग आवश्यक नहीं माना गया।

६. छठी ब्रह्मचर्य प्रतिमा है, ७वीं में सचित्त वस्तु के आहार का त्याग होता है, परन्तु आवश्यक कार्य में आरम्भ करने का त्याग नहीं होता। आठवीं में स्वतः आरंभ करने का, ९ वीं में दूसरों से आरंभ करवाने का त्याग होता है और १०वीं में उसके लिए बनाये हुए भोजन का त्याग होता है।

यहाँ तक आठवीं प्रतिमा तक की पालना तो गृहत्याग के बिना ही विवेकपूर्वक धर्मसाधना करते रहने से हो सकती है। परन्तु भगवान् के उपासकों का चरित्र देखते हुए और उनकी साधना पर विचार करते हुए लगता है कि वे विशेष साधक थे। सम्यक्त्व युक्त अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतों का पालन तो वे चौदह वर्ष तक करते ही रहते थे। पन्द्रहवें वर्ष में उनकी भावना बढ़ी, परन्तु सर्वत्यागी निर्ग्रन्थ होने जितना सामर्थ्य अपने में नहीं पाया, फिर भी उन्हें त्याग तो विशेष करना ही था। श्रमणोपासक के लिए प्रतिमा का आराधन करने के सिवाय विशेष साधना उनके सामने नहीं थी। इसलिए उन्होंने घरबार का त्याग करने के बाद ही प्रतिमा का पालन करना चालू किया और तपस्या भी चालू कर दी। दर्शन-प्रतिमा का पालन करते समय भी वे अन्य व्रतों के पालक, ब्रह्मचारी और रात्रि-भोजन के त्यागी रहे थे। गृह त्याग कर उपाश्रय में चले जाने के पश्चात् भी वे चौथी प्रतिमा तक अब्रह्मचारी या रात्रि-भोजी रहे हों, ऐसा मानने में नहीं आता। अतएव यही उचित प्रतीत होता है कि वे विशेष साधक थे-श्रमणभूत आराधक थे।

वैसे श्रमणोपासक आज भी हो सकते हैं

जब आनन्द-कामदेवजी और अरहन्नक श्रमणोपासक का वर्णन आता है, तो कई लोग यह कह कर बचाव करते हैं कि-‘यह तो चौथे आरे की बात है। आज न तो वैसा शरीर-संहनन है और न आत्मसामर्थ्य। इस युग में उनकी बराबरी नहीं हो सकती। अभी पाँचवाँ आरा है। शरीर ढीले ढाले हैं, शक्ति कम है, परिस्थिति प्रतिकूल है। इसलिए समय के अनुसार चलना चाहिये।’

यह ठीक है कि यह पाँचवाँ आरा है, संहनन-संस्थान वैसे नहीं हैं और धन-सम्पत्ति भी उतनी नहीं है। परन्तु आत्म-सामर्थ्य से सम्यक् पुरुषार्थ उतना नहीं हो सके, ऐसा मानना उचित नहीं है। आज भी श्रमणोपासक उन जैसी साधना और तपस्या कर सकते हैं और उनसे अधिक भी। कई मासखमण, कोई दो मास, तीन मास तक की तपस्या करने वाले और संथारा कर के देह त्यागने वाले आज भी हैं।

इस पंचमकाल में भी अपनी टेक पर मर-मिटने वाले दृढ़ मनोबली हैं। राजनैतिक उद्देश्य से स्वयं मौत के मुंह में जाने वाले क्रान्तिकारी हुए। धैर्यपूर्वक फाँसी पर लटकने वाले हुए और

जीती जागती स्वयं अग्निकुण्ड में कूद कर जल मरने वाली वीरांगनाएं हुईं। क्रोध, शोक या हताश हो कर आत्मघात करने की घटनाएं तो होती ही रहती है - हमारे अपने ही युग में। कई मनोबली बिना क्लोरोफार्म लिये बड़ा आपरेशन करवा लेते हैं। फिर धर्म के लिए ही साहस का अभाव कैसे माना जाय? क्या इस युग में एक भवावतारी नहीं हो सकते?

मैं तो सोचता हूँ कि कोई निष्ठापूर्वक अपनी सामर्थ्य के अनुसार सम्यक् साधना करे, तो उन श्रमणोपासकों के समान साधना हो सकना असंभव नहीं है।

इस सूत्र का मननपूर्वक स्वाध्याय करना विशेष लाभकारी होगा। इससे हमें मार्गदर्शन मिलेगा, साथ ही धर्म-आराधना में अग्रसर होने की प्रेरणा मिलेगी।

उपासकदशांग का यह प्रकाशन

बहुत दिनों से मेरी भावना प्रज्ञापना सूत्र का प्रकाशन करने की थी, परन्तु कोई अनुवाद करने वाला नहीं मिल रहा था। एक महाशय से अनुवाद करवाया था, परन्तु वह उपयुक्त नहीं लगा। फिर मैंने यह काम प्रारम्भ किया, तो अन्य अधूरे पड़े कार्यों के समान यह कार्य भी रुक गया। मैं प्रथम पद का एकेन्द्रिय जीवों का अधिकार भी पूर्ण नहीं कर सका। तत्पश्चात् यहाँ पं. मु. श्री उदयचन्द्रजी म. पधारे। मैंने आपसे यह कार्य करने का निवेदन किया। आपने सहर्ष स्वीकार किया और कार्य चालू कर दिया। यदि यह कार्य सतत चालू रहता, तो अब तक कम से कम प्रथम भाग तो प्रकाशित हो ही जाता, परन्तु वे विहार और व्याख्यानोदि में व्यस्त रहने के कारण प्रथम भाग जितना अंश भी नहीं बना सके।

प्रज्ञापना के पश्चात् मेरा विचार जीवाजीवाभिगम सूत्र के प्रकाशन का भी था। परन्तु अब यह असंभव लग रहा है। मैं यह भी चाहता था कि अपने साधर्मि बन्धुओं के उपयोग के लिए उपासकदशांग का प्रकाशन भी होना चाहिए। परन्तु करे कौन?

गत कार्तिक शुक्लपक्ष में मैं दर्शनार्थ पाली-जोधपुर आदि गया था। वहाँ सुधर्मप्रचार मंडल के अग्रगण्य महानुभावों-धर्ममूर्ति श्रीमान् सेठ किसनलालजी सा. मालू, धार्मिक शिक्षा के प्रेमी एवं सक्रिय प्रसारक तत्त्वज्ञ श्रीमान् धींगड़मलजी साहब, संयोजक श्री घीसूलालजी पितलिया आदि से विचार-विनिमय चलते मैंने श्री घीसूलालजी पितलिया से कहा - “आप उपासकदशांग सूत्र का अनुवाद कीजिये। यह सूत्र सरल है। फिर भी मैं देख लूँगा और संघ से प्रकाशित हो जायगा।” श्री पितलिया जी ने स्वीकार कर लिया। फिर साधनों और शैली के विषय में बात हुई। पत्र-व्यवहार भी होता रहा। परिणाम स्वरूप यह सूत्र प्रकाश में आया।

श्री घीसूलालजी नवयुवक हैं, शिक्षित हैं, धर्मप्रिय हैं, जिज्ञासु हैं और तत्त्वचिंतक हैं। उनका धर्मोत्साह देख कर प्रसन्नता होती है। सीधा-सादा साधनामय जीवन है। 'अंतकृत विवेचन' इनकी प्रथम कृति है। इसे देख कर ही मैंने श्री पितलियाजी से उपासकदशांग सूत्र का अनुवाद करने का कहा था। परिणाम पाठकों के सामने हैं।

इसके प्रकाशन का व्यय धर्ममूर्ति सुश्रावक श्रीमान् सेठ किशनलालजी पृथ्वीराजजी गणेशमलजी सा. मालू प्रति १०००, श्रीमान् सेठ पीराजी छगनलालजी सा. झाब प्रति १००० और सुश्राविका श्रीमती कमलाबाई बोहरा धर्मपत्नी श्रीमान् सेठ मिलापचन्दजी सा. मंडया निवासी ने प्रति १००० का दिया है।

परिशिष्ट में भगवती सूत्र स्थित तुंगिका नगरी के श्रावकों की भव्यता का वर्णन है। वह भी पाठकों के जानने योग्य समझ कर मैंने लिख कर परिशिष्ट में जोड़ दिया है और श्री कामदेवजी की सज्जाय भी जो भावोल्लास बढ़ाने वाली है, इसमें स्थान दिया है। आशा है कि पाठक इनसे लाभान्वित होंगे।

इसमें मुझे आनन्दजी के व्रतों और कर्मादानादि विषय में भी लिखना था, परन्तु उतना अवकाश नहीं होने के कारण छोड़ दिया।

आशा है कि धर्मप्रिय पाठक इसका मनन पूर्वक स्वाध्याय कर भ० महावीर प्रभु के उन आदर्श श्रमणोपासकों की धर्मश्रद्धा, धर्मसाधना और धर्म में अटूट आस्था के गुणों को धारण कर अपनी आत्मा को उन्नत करेंगे। उनकी ऋद्धि सम्पत्ति की ओर देखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि जिनधर्म प्राप्ति के पश्चात् उन गृहस्थ साधकों ने पौद्गलिक सम्पत्ति और इन्द्रिय भोग पर अंकुश लगा दिया था और १४ वर्ष पश्चात् तो सर्वथा त्याग कर के साधनामय जीवन व्यतीत किया था। इसी से वे एक भवावतारी हुए थे। हमारा ध्येय तो होना चाहिए सर्वत्यागी निर्ग्रन्थ बनने का, परन्तु उतनी शक्ति नहीं हो, तो देशविरत श्रमणोपासक हो कर अधिकाधिक धर्म साधना अवश्य ही करें।

सर्वप्रथम यह सावधानी तो रखनी ही चाहिये कि लौकिक प्रचारकों के दूषित प्रचार के प्रभाव से अपने को बचाये रखें। जब भी वैसे विचार मन में उदित हों, तो इस सूत्र में वर्णित आनंद-कामदेवादि उपासकों के आदर्श का अवलम्बन ले कर लौकिक विचारों को नष्ट कर दें, तभी सुरक्षित रह कर मुक्ति के निकट हो सकेंगे।

सैलाना

वैशाख शु० १ विक्रम सं० २०३४

वीर संवत् २५०३ दिनांक २६-४-१९७७

- रत्नलाल डोशी

दी शब्द

आगमप्रेमी श्रुतश्रद्धालु पाठकों के पाणि-पद्यों में श्री उपासकदशांग सूत्र प्रस्तुत करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता है।

जो देव-गुरु की सेवा-उपासना करे, उन्हें उपासक या 'श्रमणोपासक' कहा जाता है। जिनवाणी सुनने की तत्परता के कारण जिन्हें 'श्रावक' भी कहा जाता है। ऐसे दस आदर्श उपासकों का जीवन चरित्र इस 'उपासकदशांग सूत्र' में गुंफित है।

मूलपाठ में अधिकांश टीकार्थ वाली प्रति का सहारा लिया गया है। कहीं-कहीं मुनि नथमलजी संपादित लाडून् वाली प्रति तथा सुत्तागमे से भी सहायता ली गई है। जिन-जिन पुस्तक-ग्रन्थों का उपयोग हुआ, उनकी सूची अलग दी गई है। उन लेखकों प्रकाशकों का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

परम आदरणीय आगमवेत्ता श्रीमान् रतनलालजी सा. डोशी, सैलाना इस कार्य-संपूर्ति के आद्य से इति तक सम्प्रेरक रहे हैं। उन्हीं के आदेश से मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ। मेरे लिए आगम अनुवाद का यह पहला अवसर था। अतः बिना उनके उन्मुक्त दिशा-दर्शन के यह कार्य संभव नहीं था। मैं उनके प्रति आभार-अभिव्यक्ति कर उक्लण होना नहीं चाहता। वे अपने कुशल निर्देशन में मुझे घिस-घिस कर गोल बनाएं। सदा सर्वदा यही अपेक्षा रहती है।

मुझे न तो संस्कृत व्याकरण का ज्ञान है, न प्राकृत भाषा का। अतः शब्दों की विभक्ति, वचन, क्रिया आदि के अनुसार अर्थ नहीं हो पाया होगा। कहीं गूढ़ शब्दों के भाव यथावत् समझ में नहीं आने से अपूर्ण-अर्थ भी संभव है। उन सब का परिमार्जन करना विद्वानों का अनुग्रह मानूंगा।

अनेक स्थलों पर अर्थ करने में अनेक प्रकार की मान्यताएँ थी और हैं। मैंने अपनी समझ से वही अर्थ मान्य किया है जो प्रसंगानुसार उचित लगा जैसे -

१. 'आयाहिणं पयाहिणं' का अर्थ अमुक 'आदक्षिणा-प्रदक्षिणा' करते हैं। पर परिक्रमा का औचित्य ध्यान में नहीं आने से 'सिरसा अंजलिबद्ध आवर्तन' को ही अभिप्रेत माना है।



२. 'अण्णउत्थियाणि परिग्गहियाणि अरिहंतचेइयाइं' का अर्थ स्वयं टीकाकार श्रीमद् अभयदेवजी सूरि ने 'अरिहन्त जिन प्रतिमा' किया है। पर प्रस्तुत प्रसंग में हमने चेइय का अर्थ 'जैन साधु' किया है। श्री उववाई सूत्र अनुवाद में श्री उमेशचन्दजी म. सा. 'अणु' ने भी यही अर्थ किया है - अम्बड़ वर्णन में।

३. 'हिरण्णकोडीओ' में हिरण्ण का अर्थ 'स्वर्णमुद्रा' किया है। जहाँ हिरण्णसुवण्ण शब्द साथ आते हैं, वहाँ चांदी एवं सोना अर्थ भी किया जाता है तथा बिना घड़ा एवं घड़ा हुआ सोना भी किया जाता है।

इसी प्रकार श्रावक के अतिचार, कर्मादान - व्याख्या, पांच सौ हल का अर्थ, आनंदजी का छठा व्रत आदि विषयों का यथामति खुलासा करने का यत्न किया है। ऐसा करने में दूसरों की हीलना की दृष्टि की अपेक्षा उचित अर्थ के महत्त्व की पुष्टि का ही ध्यान रखा है, तथापि किसी भूल की ओर इंगित किए जाने वालों का अनुग्रह मान कर परिमार्जन की भावना रखूंगा।

मुझे आशा है, मेरा यह श्रम पाठक स्वाध्याय, चिन्तन-मनन व उन्मुक्त प्रतिक्रियाएं व्यक्त कर सार्थक करेंगे। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य में जिन-जिन का सहयोग रहा उनका हार्दिक आभार मानना सर्वथा संगत ही है, विशेष रूप से परिजनों का, जिन्होंने मुझे समय का अवकाश प्रधान किया। परम श्रद्धेय दानवीर सेठ श्रीमान् किसनलालजी पृथ्वीराजजी सा. मालू की सत्प्रेरणा भी विस्मृत नहीं की जा सकती।

२८ जनवरी १९७७

ब्रह्मपुरी, सिरियारी

शुभाभिलाषी

वी. घीसूलाल पितलिया

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

१. बड़ा तारा टूटे तो-
२. दिशा-दाह *
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-
४. अकाल में बिजली चमके तो-
५. बिजली कड़के तो-
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-
- ८-९. काली और सफेद धूंअर-
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

- ११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-

काल मर्यादा

- एक प्रहर
- जब तक रहे
- दो प्रहर
- एक प्रहर
- आठ प्रहर
- प्रहर रात्रि तक
- जब तक दिखाई दे
- जब तक रहे
- जब तक रहे

ये तिर्यच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।

तब तक

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

१५. श्मशान भूमि-

सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

१६. चन्द्र ग्रहण-

खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

१७. सूर्य ग्रहण-

खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

१८. राजा का अवसान होने पर,

जब तक नया राजा घोषित न हो

१९. युद्ध स्थान के निकट

जब तक युद्ध चले

२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,

जब तक पड़ा रहे

२१-२४. आषाढ़, आश्विन,

कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा

दिन रात

२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-

दिन रात

२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि-

इन चार सन्धिकालों में-

१-१ मुहूर्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

श्री उपासकदशांग सूत्र

विषयानुक्रमणिका

क्रं.	विषय	पृष्ठ	क्रं.	विषय	पृष्ठ
१.	प्रस्तावना	१	१३.	व्रतों के अतिचार	३३-५२
	प्रथम अध्ययन	३-७९	१.	सम्यक्त्व के अतिचार	३३
२.	श्रमणोपासक आनंद	३	२.	अहिंसा व्रत के अतिचार	३५
३.	जंबू स्वामी की जिज्ञासा और सुधर्मा स्वामी का समाधान	४	३.	सत्य व्रत के अतिचार	३५
४.	आनंद गाथापति का वैभव	५	४.	अस्तेय व्रत के अतिचार	३६
५.	आनंद का व्यक्तित्व	७	५.	ब्रह्मचर्य व्रत के अतिचार	३७
६.	शिवानंदा	१०	६.	अपरिग्रह व्रत के अतिचार	३८
७.	कोल्लाक सन्निवेश	११	७.	दिशा व्रत के अतिचार	३९
८.	भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण	१२	८.	उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के अतिचार	४०
९.	आनंद का दर्शनार्थ गमन	१३	९.	अनर्थदण्ड विरमण के अतिचार	४४
१०.	धर्मदेशना	१५	१०.	सामायिक व्रत के अतिचार	४६
११.	आनंद की प्रतिक्रिया	१६	११.	देशावगासिक व्रत के अतिचार	४७
१२.	व्रत-ग्रहण	१८-३३	१२.	पौषधोपवास व्रत के अतिचार	४९
१.	अहिंसा व्रत	१८	१३.	यथासंविभाग (अतिथिसंविभाग) व्रत के अतिचार	५१
२.	सत्य व्रत	२०	१४.	संलेखना के अतिचार	५२
३.	अस्तेय व्रत	२१	१५.	आनन्द जी का अभिग्रह	५३
४.	स्वदार संतोषव्रत	२२	१६.	शिवानंदा भी श्रमणोपासिका बनी	५९
५-६	इच्छा परिमाणव्रत/दिशव्रत	२३	१७.	आनन्द का भविष्य कथन	६०
७.	उपभोग परिमाण व्रत	२६	१८.	आनन्द श्रावक का श्रेष्ठ संकल्प	६१
८.	अनर्थदण्ड विरमण	३२			

क्रं.	विषय	पृष्ठ	क्रं.	विषय	पृष्ठ
१८.	प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर	६३	तृतीय अध्ययन १०१-११०		
१९.	उपासक प्रतिमा	६५	४०.	श्रमणोपासक चुलनीपिता	१०१
२०.	आनन्दजी ने संथारा किया	६८	४१.	देवकृत उपसर्ग - पुत्र वध की धमकी	१०२
२१.	आनन्द श्रावक को अवधिज्ञान	६९	४२.	धर्म दृढ़ता	१०२
२२.	गौतम स्वामी का समागम	७०	४३.	ज्येष्ठ पुत्र का वध	१०३
२३.	आनंद श्रावक का अवधिज्ञान		४४.	मंजले एवं छोटे पुत्र का वध	१०३
	विषयक वार्तालाप	७४	४५.	मातृवध की धमकी	१०४
२४.	क्या सत्य का भी प्रायश्चित्त होता है?	७४	४६.	चुलनीपिता का शौभ	१०५
२५.	गौतम स्वामी की शंका का समाधान	७६	४७.	चुलनीपिता देव पर झपटता है	१०६
२६.	गणधर गौतम की क्षमायाचना	७६३	४८.	माता की जिज्ञासा	१०६
२७.	संमाधि मरण-देवलोक गमन	७८	४९.	चुलनीपिता का समाधान	१०७
२८.	उपसंहार	७९	५०.	व्रत भंग हुआ प्रायश्चित्त लो	१०८
	द्वितीय अध्ययन ८०-१००		५१.	प्रतिमा आराधन	१०९
२९.	श्रमणोपासक कामदेव	८०	५२.	भविष्य कथन	१०९
३०.	कामदेव की संपदा	८०	चौथा अध्ययन १११-११४		
३१.	श्रावक धर्म की आराधना	८०	५३.	श्रमणोपासक सुरादेव	१११
३२.	देवकृत उपसर्ग - पिशाच रूप	८१	५४.	रोगों की धमकी	११२
३३.	हस्ती रूप से घोर उपसर्ग	८७	पांचवां अध्ययन ११५-११७		
३४.	सर्प रूप देव उपसर्ग	९०	५५.	श्रमणोपासक चुल्लशतक	११५
३५.	देव का पराभव	९२	५६.	धन नाश की धमकी	११६
३६.	इन्द्र से प्रशंसित	९३	छठा अध्ययन ११८-१२६		
३७.	भगवान् द्वारा कामदेव की प्रशंसा	९६	५७.	श्रमणोपासक कुण्डकौलिक	११८
३८.	स्वर्ग गमन	९९	५८.	अशोकवाटिका में साधना रत	११८
३९.	भविष्य कथन	९९	५९.	नियतिवाद पर देव से चर्चा	११९

क्रं.	विषय	पृष्ठ	क्रं.	विषय	पृष्ठ
६०.	कुण्डकौलिक का प्रश्न	१२१	८१.	अमारि घोषणा और रेवती का पाप	१५६
६१.	देव का उत्तर	१२२	८२.	रेवती पति को मोहित करने गई	१५६
६२.	देव पराजित हो गया	१२२	८३.	अवधिज्ञान का प्रादुर्भाव	१५६
६३.	कुण्डकौलिक तुम धन्य हो	१२४	८४.	तू दुःखी होकर नरक में जाएगी	१५६
सातवां अध्ययन १२७-१७१			८५.	भगवान् गौतमस्वामी को भेजते हैं	१६१
६४.	श्रमणोपासक सकडालपुत्र	१२७	८६.	महाशतक तुम प्रायश्चित्त लो	१६३
६५.	सकडालपुत्र को देव संदेश	१२६	नवम अध्ययन १६६-१६७		
६६.	सकडालपुत्र की कल्पना	१३०	८७.	श्रमणोपासक नंदिनीपिता	१६६
६७.	भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण	१३१	दशम अध्ययन १६८-१६९		
६८.	धर्म देशना	१३२	८८.	श्रमणोपासक सालिहीपिता	१६८
६९.	भगवान् और सकडालपुत्र के प्रश्नोत्तर	१३३	८९.	उपसंहार	१७०
७०.	सकडालपुत्र श्रमणोपासक बना	१३६	९०.	उपासकदशांग का संक्षेप में परिचय	१७१
७१.	अग्निमित्रा श्रमणोपासिका हुई	१३८	१.	श्रमणोपासकों के नगर	१७१
७२.	सकडाल को समझाने गोशालक आया	१४१	२.	श्रावकों की पत्नियों के नाम	१७१
७३.	सकडालपुत्र ने गोशालक को आदर नहीं दिया	१४२	३.	उपसर्ग	१७१
७४.	स्वार्थी गोशालक भगवान् की प्रशंसा करता है	१४२	४.	स्वर्ग में उत्पन्न हुए उन विमानों के नाम	१७२
७५.	मैं भगवान् से विवाद नहीं कर सकता	१४६	५.	गोधन की संख्या	१७२
७६.	मैं तुम्हें धर्म के उद्देश्य से स्थान नहीं देता	१४८	६.	श्रावकों की धन संपत्ति	१७२
७७.	देवोपसर्ग	१४९	७.	उपभोग परिभोग के नियम	१७२
आठवां अध्ययन १५२-१६७			८.	अवधिज्ञान का परिमाण	१७३
७८.	श्रमणोपासक महाशतक	१५२	९.	प्रतिमाओं के नाम	१७३
७९.	कामासक्त रेवती की नृशंस योजना	१५४	परिशिष्ट		
८०.	रेवती ने सपत्नियों की हत्या कर दी	१५५	९१.	तुंगिका के श्रमणोपासक	१७४
			९२.	श्रमणोपासकों की आत्मिक सम्पत्ति	१७५
			९३.	श्री कामदेव जी की सज्जाय	१७८

आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत संघ द्वारा प्रकाशित आगम
(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

अंग सूत्र

क्रं. नाम आगम	मूल्य
१. आचारांग सूत्र भाग १-२	५५-००
२. सूयगडांग सूत्र भाग १-२	४५-००
३. स्थानांग सूत्र भाग १-२	६०-००
४. समवायांग सूत्र	२५-००
५. भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
६. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग १-२	८०-००
७. उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८. अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
९. प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
१०. विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१. उववाइय सुत्त	२५-००
२. राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३. जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग १-२	८०-००
४. प्रज्ञापना सूत्र भाग १-२-३-४	१६०-००
५. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र	५०-००
६-१०. निरयावलिका सूत्र	२०-००

(कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)

मूल सूत्र

१. नन्दी सूत्र	२५-००
----------------	-------

शीघ्र प्रकाशित होने वाले आगम

१. अनुयोगद्वार सूत्र २. उत्तराध्ययन सूत्र

संघ के अन्य प्रकाशन

क्रं.	नाम	मूल्य		मूल्य	
२८.	अंगपविट्टसुत्ताणि भाग १	१४-००	७६.	सुधर्मचरित्रसंग्रह	१०-००
२९.	अंगपविट्टसुत्ताणि भाग २	४०-००	७७.	लौकाशाहमत समर्थन	१०-००
३०.	अंगपविट्टसुत्ताणि भाग ३	३०-००	७८.	जिनागम विरुद्ध मूर्ति पूजा	१५-००
३१.	अंगपविट्टसुत्ताणि संयुक्त	८०-००	७९.	बड़ी साधु वंदना	१०-००
३२.	अनंगपविट्टसुत्ताणि भाग १	३५-००	८०.	तीर्थकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
३३.	अनंगपविट्टसुत्ताणि भाग २	४०-००	८१.	स्वाध्याय सुधा	७-००
३४.	अनंगपविट्टसुत्ताणि संयुक्त	८०-००	८२.	आनुपूर्वी	१-००
३५.	अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०	८३.	सुखविपाक सूत्र	२-००
३६.	आयारो	८-००	८४.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
३७.	सूयगडो	६-००	८५.	जैन स्तुति	६-००
३८.	उत्तरज्ज्ञयणाणि (गुटका)	६-००	८६.	सिद्ध स्तुति	३-००
३९.	दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००	८७.	संसार तरणिका	७-००
४०.	अंगपविट्टसुत्ताणि भाग १	१४-००	८८.	आलोचना पंचक	२-००
४१.	णंदी सुत्तं (गुटका)	३-००	८९.	विनयचन्द्र चौबीसी	१-००
४२.	चउछेयसुत्ताई	१५-००	९०.	भवनाशिनी भावना	२-००
४३.	आचारांग सूत्र भाग १	२५-००	९१.	स्तवन तरंगिणी	५-००
४४.	अंतगडदसा सूत्र	१०-००	९२.	सामायिक सूत्र	१-००
४५-४६.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग १, २, ३	४५-००	९३.	सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
४७.	आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००	९४.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
४८.	दशवैकालिक सूत्र	१२-००	९५.	जैन सिद्धांत परिचय	३-००
४९.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००	९६.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
५०.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००	९७.	जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
५१.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००	९८.	जैन सिद्धांत कोविद	३-००
५२.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	२०-००	९९.	जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
५३.	पन्नवणा सूत्र के थोकडे भाग १	८-००	१००.	तीर्थकरों का लेखा	१-००
५४.	पन्नवणा सूत्र के थोकडे भाग २	१०-००	१०१.	जीव-धड़ा	२-००
५५.	पन्नवणा सूत्र के थोकडे भाग ३	६-००	१०२.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
५६-५८.	तीर्थकर चरित्र भाग १, २, ३	१४०-००	१०३.	लघुदण्डक	२-००
५९.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००	१०४.	महादण्डक	१-००
६०.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००	१०५.	तेतीस बोल	२-००
६१-६३.	समर्थ समाधान भाग १, २, ३	५७-००	१०६.	गुणस्थान स्वरूप	२-००
६४.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००	१०७.	गति-आगति	१-००
६५.	आत्म साधना संग्रह	२०-००	१०८.	कर्म-प्रकृति	१-००
६६.	आत्म शुद्धि का मूल तत्त्वत्रयी	२०-००	१०९.	समिति-गुप्ति	२-००
६७.	नवतत्त्वों का स्वरूप	१५-००	११०.	समकित के ६७ बोल	२-००
६८.	अगार-धर्म	१०-००	१११.	पच्चीस बोल	२-५०
६९.	Saarth Saamaayik Sootra	१०-००	११२.	नव-तत्त्व	७-००
७०.	तत्त्व-पृच्छा	१०-००	११३.	सामायिक संस्कार बोध	४-००
७१.	तेतली-पुत्र	४५-००	११४.	मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
७२.	शिविर व्याख्यान	१२-००	११५.	विद्युत् सचित तेऊकाय है	३-००
७३.	जैन स्वाध्याय माला	१८-००	११६.	धर्म का प्राण यतना	२-००
७४.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००	११७.	सामण्ण सङ्घिधम्मो	अप्राप्य
७५.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१५-००	११८.	मंगल प्रभातिका	१.२५
			११९.	कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	४-००

॥ णमो सिद्धाणं ॥

गणधर महाराज श्री सुधर्मा स्वामी प्रणीत

श्री उपासकदशांग सूत्र

(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

प्रस्तावना

भूतकाल में अनंत तीर्थंकर हो चुके हैं। भविष्य में फिर अनंत तीर्थंकर होंगे और वर्तमान में संख्यात तीर्थंकर विद्यमान हैं। अतएव जैन धर्म अनादिकाल से है, इसीलिए इसे सनातन (सदातन-अनादि कालीन) धर्म कहते हैं।

केवलज्ञान हो जाने के बाद सभी तीर्थंकर भगवंत अर्थ रूप से प्रवचन फरमाते हैं, वह प्रवचन द्वादशांगी वाणी रूप होता है। तीर्थंकर भगवंतों की उस द्वादशांग वाणी को गणधर सूत्र रूप से गूथन करते हैं। द्वादशांग (बारह अङ्गों) के नाम इस प्रकार हैं -

१. आचारांग २. सूयगडांग ३. ठाणांग (स्थानांग) ४. समवायाङ्ग ५. विवाहपण्णत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति या भगवती) ६. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ७. उपासकदशाङ्ग ८. अंतगडदसा ९. अनुत्तरौपपातिकदशा १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक और १२. दृष्टिवाद।

जिस प्रकार धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय-ये पांच अस्तिकाय कभी नहीं थे, कभी नहीं हैं और कभी नहीं रहेंगे ऐसी बात नहीं किन्तु ये पांच अस्तिकाय भूतकाल में थे, वर्तमान में हैं और भविष्यत् काल में भी रहेंगे इसी प्रकार यह द्वादशाङ्ग वाणी कभी नहीं थी, कभी नहीं है और कभी नहीं रहेगी, ऐसी बात नहीं, किन्तु भूतकाल में थी, वर्तमान में है और भविष्यत्काल में रहेगी। अतएव यह मेरु पर्वत के समान ध्रुव है, लोक के समान नियत है, काल के समान शाश्वत है, निरन्तर वाचना आदि देते रहने

पर भी इसका क्षय नहीं होने के कारण अक्षय हैं। गंगा सिन्धु नदियों के प्रवाह के समान अव्यय है। जम्बूद्वीप लवण समुद्र आदि द्वीप समुद्रों के समान अवस्थित है और आकाश के समान नित्य है।

यह द्वादशाङ्ग वाणी गणिपिटक के समान है अर्थात् गुणों के गण एवं साधुओं के गण को धारण करने से आचार्य को गणी कहते हैं। पिटक का अर्थ है - पेटी या पिटारी अथवा मंजूषा। आचार्य एवं उपाध्याय आदि सब साधु साध्वियों के सर्वस्व रूप श्रुतरत्नों की पेटी (मंजूषा) को 'गणिपिटक' कहते हैं।

जिस प्रकार पुरुष के बारह अंग होते हैं। यथा - दो पैर, दो जंघा, दो उरू (साथल) दो पसवाड़े, दो हाथ, एक गर्दन और एक मस्तक। इसी प्रकार श्रुतरूपी परम पुरुष के भी आचाराङ्ग आदि बारह अंग होते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ग्यारह गणधर हुए थे। उनकी नौ वाचनाएं हुईं। अभी वर्तमान में उपलब्ध आगम पांचवें गणधर श्री सुधर्मा स्वामी की वाचना के हैं। सम्पूर्ण दृष्टिवाद तो दो पाट तक ही चलता है। इसलिए दृष्टिवाद का तो विच्छेद हो गया है। वर्तमान में ग्यारह अंग ही उपलब्ध होते हैं। इन ग्यारह अंगों में सातवां अंग 'उपासकदशांग सूत्र' है। इसमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अनेक गृहस्थ-उपासकों में से दस उपासकों का चरित्र वर्णन है।

इस सूत्र में दस अध्ययनों में दस आदर्श उपासकों का चरित्र होने के कारण यह उपासकदशांग सूत्र कहलाता है। ये दस ही श्रमणोपासक बीस वर्ष की श्रावक पर्याय, प्रतिमा आराधक, अवधि ज्ञान प्राप्त प्रथम स्वर्ग में उत्पाद, चार पत्न्योपम की स्थिति और बाद के मनुष्य भव में महाविदेह क्षेत्र में मुक्ति पाने वाले हुए। इस प्रकार की साम्यता वाले दस श्रमणोपासकों के चरित्र को इस सूत्र में स्थान दिया गया है। इसके प्रथम अध्ययन का वर्णन इस प्रकार है -

पठमं अज्झरयणं - प्रथम अध्ययन

श्रमणोपासक आनंद

(१)

तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा णामं णयरी होत्था। वण्णओ। पुण्णभदे चेइए। वण्णओ।

कठिन शब्दार्थ - तेणं - उस, कालेणं - काल में, समएणं - समय में, होत्था - थी, वण्णओ - वर्णन के योग्य।

भावार्थ - उस काल (वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे के अंत में) उस समय (जब आर्य सुधर्मा स्वामी विराजमान थे) में चम्पा नामक नगरी थी। पूर्णभद्र नामक चैत्य था। दोनों का वर्णन औपपातिक सूत्र से जान लेना चाहिए।

विवेचन - किसी भी वर्णन में समय का पुरावा (प्रमाण) देने से उसकी प्रामाणिकता बढ़ जाती है। यहाँ 'काल' और 'समय' दो शब्द आये हैं। साधारणतया ये पर्यायवाची हैं। जैन पारिभाषिक दृष्टि से इनमें अंतर भी है। काल वर्तना-लक्षण सामान्य समय का वाचक है और समय काल के सूक्ष्मतम सबसे छोटे भाग का सूचक है।

'तेणं कालेणं' पद से यहाँ इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे का ग्रहण किया गया है और 'तेणं समएणं' पद से उसकी समाप्ति का वह समय ग्रहण किया गया है जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष पधार चुके थे और भगवान् सुधर्मा स्वामी वीर शासन के द्वितीय पट्टधर बन गये थे। श्रेणिक सम्राट काल धर्म को प्राप्त हो चुके थे। कोणिक महाराज ने राजगृही छोड़ कर चंपा को राजधानी बना दिया था। जम्बूस्वामी भगवान् सुधर्मा स्वामी के प्रधान शिष्य बन चुके थे।

उस काल उस समय चंपा नामक नगरी थी। उसके ईशान कोण में पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था। नगरी और यक्षायतन का वर्णन उववाई सूत्र से ज्ञातव्य है।

शंका - चम्पा नगरी भगवान् के जमाने में थी और सुधर्मा स्वामी के जमाने में भी थी तो फिर जो है उसके लिए 'थी' पद क्यों दिया गया है?

समाधान - इसका कारण पुद्गलों में परिवर्तन और जीवों का चयापचय दोनों समझ लेना चाहिए। सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु द्वारा केवलज्ञान से लोक का जो स्वरूप किसी भी पूर्ववर्ती समय में देखा गया है वह उसके उत्तरवर्ती दूसरे समय में नहीं देखा जाता है। जीवाजीव द्रव्यों के गुण, पर्याय एवं क्षेत्र, काल, भाव आदि बदल जाते हैं। अतः जैसा वैभव भगवान् की विद्यमानता में चंपा का था वैसा सुधर्मा स्वामी के पाटवी युग में नहीं था तथा आज यदि वह चम्पा है भी सही तो वैसी की वैसी नहीं है। इसीलिए आगमकार ने चम्पा के लिए 'थी' पद का प्रयोग किया है।

राजा, नगरी, यक्षायतन, उद्यान आदि का वर्णन श्री औपपातिक सूत्र में दिया गया है। 'वण्णओ' पद के द्वारा वर्णन वहाँ देखने की भलामण दी गई है।

जंबू स्वामी की जिज्ञासा और सुधर्मा स्वामी का समाधान

(२)

तेणं कालेणं तेणं समणेणं अज्जसुहम्मे समोसरिणं जाव जम्बू पज्जुवासमाणे एवं वयासी-जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं छट्ठस्स अंगस्स णायाधम्मकहाणं अयमट्ठे पण्णत्ते, सत्तमस्स णं भंते! अंगस्स उवासगदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते? एवं खलु जम्बू! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा - आणंदे १, कामदेवे २, गाहावइचुलणीपिया ३, सुरादेवे ४, चुल्लसयए ५, गाहावइकुंडकोलिए ६, सद्दालपुत्ते ७, महासयए ८, णंदिणीपिया ९, सालिहीपिया १०।

कठिन शब्दार्थ - अज्ज - आर्य-पाप से घृणा करने वाले, समोसरिण - ठहरे, एवं - इस प्रकार, वयासी - कहा, जइ - यदि, भंते - भगवन्, समणेणं भगवया महावीरेणं - श्रमण भगवान् महावीर से-के द्वारा (तीसरी विभक्ति में प्रयुक्त), जाव - यावत्, संपत्तेणं - मोक्ष को संप्राप्त, अयमट्ठे - अयम् अर्थे - यह अर्थ, पण्णत्ते - कहा गया है, के - क्या, अट्ठे - अर्थ, अज्झयणा - अध्ययन।

भावार्थ - उस काल उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी का चम्पानगरी के पूर्णभद्र यक्षायतन में पधारना हुआ यावत् जम्बू अनगर भगवान् की विनयपूर्वक पर्युपासना करते हुए इस

प्रकार बोले-हे भगवन्! अपने तीर्थ की अपेक्षा धर्म की आदि करने वाले तीर्थकर भगवान् यावत् मोक्ष को संप्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने छोटे अंग ज्ञाताधर्मकथा का जो अर्थ बतलाया, वह मैं सुन चुका हूँ। हे भगवन्! सातवें अंग उपासकदशा का श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने क्या अर्थ (भाव) फरमाया है?

आर्य सुधर्मा बोले - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें अंग उपासकदशा के दस अध्ययन फरमाये हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं - १. आनंद २. कामदेव ३. गाथापति चुलनीपिता ४. सुरादेव ५. चुल्लशतक ६. गाथापति कुण्डकौलिक ७. सद्दालपुत्र ८. महाशतक ९. नन्दिनीपिता और १०. शालिहिपिता।

विवेचन - एक जगह जो वर्णन विस्तार से आ गया उसको 'जाव' पद से अन्य स्थलों पर संकोच प्रदान किया जाता है ताकि ज्यादा विस्तार न हो। आगमों में स्थान स्थान पर 'जाव' पद आता है वह अन्य आगमों की भलामण देने वाला समझना चाहिये।

आर्य सुधर्मा स्वामी चम्पा नगरी में पधारे, परिषद् धर्म श्रवण के लिए आयी, वापस गई- यह सब 'जाव' पद का संकोच बता रहा है। भगवान् महावीर स्वामी के लिए जो 'जाव' पद आया उसमें पूरा का पूरा 'णमोत्थुणं' का छोटी विभक्ति वाला 'आङ्गराणं' आदि पाठ तीसरी विभक्ति 'आङ्गरेण' आदि में ग्रहण कर लेना चाहिए।

भगवान् महावीर स्वामी को प्रथम पाट पर एवं भगवान् सुधर्मा स्वामी को द्वितीय पाट पर माना गया है। तृतीय पाट पर जंबू स्वामी को मानने का कारण यह है कि भगवान् के तीन पाट मुक्त हुए। भगवान् की मौजूदगी में जो गणधर मुक्ति पधारे, उनके शिष्य सुधर्मा स्वामी को संभलाए गए थे। सबसे लम्बी उम्र वाले गणधर भगवान् के पाटवी हुआ करते हैं और जो गणधर केवली हो जाते हैं वे पाटवी नहीं बनते हैं। गणधरों के पाटवी भी गणधर नहीं हुआ करते हैं अतः सुधर्मा स्वामी का पट्टधर बनना भगवान् की विद्यमानता में ही तय हो गया था।

आनंद गाथापति का वैभव

(३)

जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते?

एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे णामं णयरे होत्था। वण्णओ। तस्स (णं) वाणियगामस्स णयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए दूइपलासए णामं चेइए। तत्थ णं वाणियगामे णयरे जियसत्तू राया होत्था। वण्णओ। तत्थ णं वाणियगामे आणंदे णामं गाहावई परिवसइ, अइडे जाव अपरिभूए।

तस्स णं आणंदस्स गाहावइस्स चत्तारि हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ वुट्ठिपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

कठिन शब्दार्थ - बहिया - बाहर, उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए - उत्तर पूर्व (ईशान कोण) के दिशा भाग में, दूइपलासए - द्युतिपलाशक, चेइए - चैत्य (उद्यान), गाहावई - गाथापति-गृहपति - घर का मुखिया - सेठ, परिवसइ - रहता था, अइडे - आढ्य - प्रचुर धन सम्पत्ति से युक्त, अपरिभूए - अपरिभूत - किसी से नहीं दबने वाला, चत्तारि - चार, हिरण्णकोडीओ-करोड़ स्वर्ण मुद्राएं, णिहाण पउत्ताओ - निधान प्रयुक्ता - भूमिगत निधान में रखी गई - फिक्स डिपोजिट-सुरक्षित निधि, वुट्ठिपउत्ताओ - वृद्धि प्रयुक्त - व्यापार वाणिज्य में धन वृद्धि के लिए लगी हुई, पवित्थरपउत्ताओ - प्रविस्तार प्रयुक्त - घर बिखरी में लगी हुई, वया - व्रज-टोला, दसगोसाहस्सिएणं - दस हजार गायों का।

भावार्थ - आर्य जम्बूस्वामी ने पूछा - हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें अंग उपासकदशा सूत्र के दस अध्ययन फरमाये हैं तो प्रथम अध्ययन में भगवान् ने क्या भाव फरमाये हैं? सो आप कृपा पूर्वक फरमावें।

भगवान् सुधर्मा स्वामी बोले - हे जम्बू! उस काल उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था। उस नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा ईशानकोण में द्युतिपलाशक नामक चैत्य था। जितशत्रु नामक वहां का राजा था। राजा का वर्णन औपपातिक सूत्र में ज्ञातव्य है। उस वाणिज्यग्राम में आनंद नामक गाथापति - सम्पन्न गृहस्थ रहता था। वह आढ्य (धनाढ्य) यावत् अपरिभूत था।

उस आनंद गाथापति का चार करोड़ का धन (स्वर्ण मुद्राएं) भण्डार (खजाने) में रखा था। चार करोड़ का धन व्यापार में लगा था। चार करोड़ स्वर्ण घर बिखरी (धन, धान्य द्विपद चतुष्पद आदि साधन सामग्री) में लगा हुआ था। उसके चार व्रज-गोकुल थे। प्रत्येक व्रज (गोकुल) में दस हजार गायें थीं।

विवेचन - विपुल ऋद्धि समृद्धि वाले को 'गाथापति' कहा जाता है। 'अहे जाव अपरिभूए' में 'जाव' शब्द से इस पाठ का ग्रहण हुआ है -

'अहे दित्ते विच्छिण्णविउलभवनसयणासणजाणवाहणे बहुधणजायरूवरयए आओगपओगसंपउत्ते विच्छिण्णपउरभत्तपाणे बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूए बहुजणस्स अपरिभूए।' (भगवती सूत्र श. २ उ० ५)

अर्थ - आनंद धन-धान्यादि से परिपूर्ण, तेजस्वी, विख्यात, विपुल भवन, शयन, आसन, यान वाले, स्वर्ण-रजत आदि प्रचुर धन वाले और अर्थलाभ के लिए धनादि देने वाले थे। सब के द्वारा भोजन किए जाने पर भी प्रचुर आहार-पानी बचता था। गाय-भैंस आदि दुधारु जानवर तथा नौकर-चाकरों की प्रचुरता थी। बहुत-से लोग मिल कर भी उनका पराभव नहीं कर सकते थे।

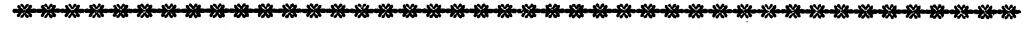
'चत्तारि हिरण्णकोडीओ' का आशय उस समय की प्रचलित स्वर्णमुद्राओं से है। भण्डार में सुरक्षित निधि के रूप में चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएं अथवा उतने मूल्य के हीरे-जवाहरात आदि रहा करते थे। चार करोड़ स्वर्णमुद्राओं के मूल्य का धन व्यापार में लगा हुआ था। चार करोड़ का अवशेष परिग्रह घर-बिखरी के रूप में फैला हुआ था।

आनंद गाथापति के चार गोकुल (वज्र) थे यानी ४०,००० गायें थी। उक्त विवरण से प्रकट होता है कि गो पालन का कार्य उस समय बहुत उत्तम माना जाता था। समृद्ध गृहस्थ इसे रुचि पूर्वक अपनाते थे।

आनंद का व्यक्तित्व

से णं आणंदे गाहावई बहूणं राईसर जाव सत्थवाहाणं बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य मंतेसु कुडुंबेसु य गुज्जेसु य रहस्सेसु य णिच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्सवि य णं कुडुंबस्स मेढी पमाणं आहारे आलंबणं चक्खू, मेढीभूए जाव सव्वकज्जवद्दावए यावि होत्था।

कठिन शब्दार्थ - बहसु - बहुत से, राईसर - राजा-मांडलिक राजा और ईश्वर-ऐश्वर्य शाली प्रभावशाली पुरुष, सत्थवाहाणं - सार्थवाह-परदेश में व्यापार करने वाले, कज्जेसु - कार्यों में, कारणेसु - कारणों में, मंतेसु - मंत्रेषु-मंत्रणाओं में, कुडुंबेसु - पारिवारिक कार्यों (समस्याओं) में, गुज्जेसु - गोपनीय विषयों में, रहस्सेसु - रहस्यों में, णिच्छएसु - निर्णयों



में, ववहारेसु - व्यवहारों में, आपुच्छणिज्जे - पूछने योग्य, पडिपुच्छणिज्जे - बार बार पूछने योग्य, कुडुंबस्स - कुटुम्ब का, मेढी - मेढि - मुख्य केन्द्र, पमाणं - प्रमाण-स्थिति स्थापक-प्रतीक, आहारे - आधार, आलंबणं - आलम्बन, चक्खू - चक्षु-मार्ग दर्शक, मेढिभूए - मेढी भूत, सव्वकज्जवद्दावए - सर्वकार्य वर्धापक - सभी कार्य आगे बढ़ाने वाले।

भावार्थ - वे आनंद गाथापति बहुत से राजा ईश्वर यावत् सार्थवाहों के द्वारा बहुत से कार्यों में, कारणों में, मंत्रणाओं में, कौटुम्बिक अनुष्ठानों में, गोपनीय कार्यों में, रहस्यमय पेचीदगियों में वस्तु तत्त्व का निर्णय करने में, विवादित विषयों का न्याय करने में एक बार तथा बार-बार पूछे जाने योग्य थे। उन्हें दूसरे लोग ही पूछते हों और घर में कोई कद्र न हो-ऐसी बात नहीं थी। अपने स्वयं के कुटुम्ब के भी वे मेढी-प्रमाण आधार, आलंबन और चक्षु थे। वे मेढीभूत, प्रमाणभूत, आलंबनभूत, चक्षुभूत थे। अधिक क्या कहा जाय - सभी कार्यों में उनके द्वारा अच्छी सलाह दिए जाने से वे कार्य बढ़ोत्तरी को प्राप्त होते थे।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आनंद गाथापति की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा उनके आदरणीय प्रभावशाली व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है। आनंद गाथापति ने केवल अपने परिवार के लिए ही नहीं अपितु अन्य लोगों के लिए भी मेढिभूत (केन्द्र बिन्दु), आधारभूत, प्रमाणभूत, आलंबनभूत और चक्षुभूत थे। वे सभी के लिए पूछने एवं सलाह लेने योग्य थे।

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त 'कज्जेसु' आदि शब्दों के विशिष्ट अर्थ इस प्रकार हैं जो आनंद गाथापति की विशिष्टताओं को प्रकट करते हैं -

कज्जेसु (कार्येषु) - किसी भी प्रकार के सामान्य कार्यों में - यह कार्य कैसे करना? यह पूछना।

कारणेषु (कारणेषु) - 'अमुक कार्य ऐसे क्यों बना?' 'इसके क्या कारण थे?' अथवा 'अमुक कार्य के बनने बिगड़ने के कारण क्या हो सकते हैं?' इस प्रकार कारणों के विषय में पूछना।

मंतेसु (मंत्रेषु) - अमुक लड़के या लड़की का संबंध करना है सो अमुक ठिकाना कैसा रहेगा? अमुक लड़का ठीक रहेगा या गलत-इस प्रकार की गोपनीय सलाहें 'मंतेसु' के अंतर्गत आती है।

कुडुंबेसु (कुटुम्बेसु) - पारिवारिक कार्यों के विषय में सलाह-मशविरा लेना। अपने परिवार वाले तो आनंद जी को हर कार्य में पूछते ही थे पर दूसरे लोग भी उनसे सलाह लेते रहते थे।

गुज्जरेसु - अत्यंत गोपनीय विषयों में विचार विमर्श करना। जो अत्यंत गंभीर प्रकृति का हो, बात अपने तक रखने वाला हो, बाहर किसी को भी नहीं कहने वाला हो, बात प्रकट हो जाय तो अनेक अनर्थ हो जाए - ऐसे गोपनीय विषयों में आनंद से पूछा जाता था। जैसे कुएं में पत्थर डाला गया तो वह कभी भी अपने आप कुएं से बाहर नहीं आयेगा। उसी प्रकार गुप्त रहस्यों को पचाने वाले आनंद गाथापति थे।

रहस्सेसु - रहस्सेषु - किसी भी बात की तह तक पहुँचना, बाल की खाल निकालना, तथ्यों के तल तक गति करना। जैसे - जासूस लोग येन केन प्रकारेण खोज बिन करते हैं वैसे ही आनंद जी भी इतनी पैनी बुद्धि वाले थे कि लोग उनसे गहनतम समस्याओं के समाधान पाते थे। वे दूध का दूध और पानी का पानी कर देने वाले थे, तथ्यों का निचोड़ निकाल कर मंत्र मुग्ध कर देते थे।

णिच्छएसु - फैसले देने में आनंद गाथापति बड़े ही न्यायनिपुण एवं विचक्षण थे। उनका न्याय लोहे की लकीर हुआ करता था। उस पर कोई संशय उठाने की गुंजाईश ही नहीं बचती थी। क्योंकि वे तटस्थ दृष्टि वाले एवं पक्षपात से परे थे। विवादग्रस्त विषयों में दोनों पक्षकारों को सत्य तथ्य से अवगत करा कर अपनी अपनी भूलें बता कर वे महान्यायाधिपति पद के योग्य बन गए थे।

ववहारेसु - यहाँ व्यवहार का अर्थ है विधि या न्याय। न्याय का शाब्दिक अर्थ है - अलग करना। झगड़ा दो व्यक्तियों अथवा पक्षों के बीच होता है तो दोनों उलझ जाते हैं, गुत्थमगुत्था हो जाते हैं। उनको समझा बुझा कर शान्त करने वाले थे। अपराधी को आत्मीयता पूर्वक अपराध के दोष बताते थे ताकि वह भविष्य में अपराध नहीं करता था। उनके पास सच्चरित्र बनाने की कला थी।

आपुच्छणिज्जे - उपरोक्त सभी कार्यों में कारणों में वे पूछे जाते थे, पूछने योग्य थे, उनसे पूछ कर किया गया कार्य पार पड़ता था, बिगड़ता नहीं था।

पडिपुच्छणिज्जे - एक बार पूछा और काम पार नहीं पड़ा तो अनेक विषय ऐसे होते हैं जिनमें बारबार भी पूछना पड़ता है। आनंद गाथापति को बारबार भी पूछा जाता था, तब भी वे नाराज नहीं होते थे, अगले व्यक्ति को अल्पबुद्धि या नादान नहीं समझते थे। धैर्य और शांति से रास्ता बताते, उस पर चलाते और बार-बार पूछने पर भी सही सलाह देते थे।

मेढी - मेढि* अर्थात् केन्द्र। गायटे पर बैलों को चलाने के लिए बीच केन्द्र में लकड़ी से अर्थात् मेढी के चारों ओर १०-१५ बैल बांधते हैं। कुशल किसान मेढी के निकट पूर्ण ताकत वाले बैल को रखता है वह बैल मेढीया (मेढीभूत) कहलाता है। वह मेढीया बैल सभी बैलों के हिचकोले=हिचके सहन करते हुए भी चलता रहता है। इसी तरह आनंदजी भी मेढी के समान सबका कहा हुआ सुनते थे। केन्द्रीभूत थे।

प्रमाणं - पहले संयुक्त परिवार थे। अर्थात् एक ही परिवार में सौ-पचास सदस्य भी साथ रहते थे। वहाँ कलह हो जाना सहज था पर वहाँ आनंद प्रमाणभूत थे। उनकी दी हुई व्यवस्था को प्रमाणभूत माना जाता था। वे बड़े विवेकशील थे। परिवार का संगठन कैसे अक्षुण्ण रहे, विनय आदि गुण कम न हों, आज्ञा पालन की रुचि बनी रहे, इसलिए वात्सल्यता के साथ सबको समझाते थे। मात्र एक अनुशासन से सबका सर्वतोमुखी विकास होता है।

आहारे - जैसे शरीर के लिए आहार जरूरी है वैसे ही आनंदजी भी सबके लिए पोषण देने वाले तथा शोषण से बचाने वाले थे।

आलंबणं - जैसे धरती सभी जीवों के लिए सहारा देने वाली है वैसे ही वे धरती के समान सबको सहारा देने वाले थे।

चक्खू - जैसे आंख के बिना शरीर सूना है वैसे ही वे सबके पथ प्रदर्शक एवं दिशा निर्देशक होने से आंख के समान थे।

मेढीभूए - मेढी के समान थे।

सव्वकज्जवट्ठावए - सभी कार्य आगे बढ़ाने वाले थे। प्रगति कराने वाले थे।

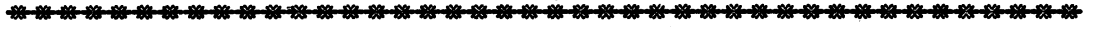
शिवाणंदा

तस्स णं आणंदस्स गाहावइस्स सिवाणंदा ❖ णामं भारिया होत्था, अहीण जाव सुरूवा आणंदस्स गाहावइस्स इट्ठा आणंदेणं गाहावइणा सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठा सह जाव पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - भारिया - भार्या - विवाहिता पत्नी, अहीण - अहीन - प्रतिपूर्ण-

* मेढि उस काष्ठ दंड को कहा जाता है जिसे खलिहान के बीचोबीच गाड़ कर जिससे बांध कर बैलों को अनाज निकालने के लिए चारों ओर घुमाया जाता है।

❖ पाठान्तर - सिवणंदा



पांचों इन्द्रियों वाली, सुरूवा - सुंदर रूप वाली, इट्टा - इष्ट-इच्छित, सद्धि - साथ में, अणुरत्ता- अनुरक्त-प्रीति युक्त, अविरत्ता - अविरक्त, सद्द - शब्द, पंचविहे - पांच प्रकार के, माणुस्सए - मानवीय, कामभोए - कामभोगों का, पच्चणुभवमाणी- अनुभव करती हुई।

भावार्थ - उस आनंद गाथापति के शिवानन्दा नामक पत्नी थी। उसकी पांचों इन्द्रियाँ अहीन-प्रतिपूर्ण-रचना की दृष्टि से अखंडित सम्पूर्ण, अपने अपने विषयों में सक्षम थी यावत् वह सर्वांगसुन्दरी थी। आनंद गाथापति की वह इष्ट-प्रिय थी। वह आनंद गाथापति के प्रति अनुरक्त-अनुरागयुक्त, अत्यंत स्नेहशील और अविरक्त (पति के प्रतिकूल होने पर भी वह कभी विरक्ता-अनुराग शून्य-रुष्ट नहीं होती) थी। वह अपने पति के साथ इष्ट-प्रिय यावत् पांच प्रकार के सांसारिक कामभोग भोगती हुई रहती थी।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में शिवानंदा भार्या के गुणों का चित्रण किया गया है। वह शील और सौन्दर्य से युक्त थीं। यहाँ प्रयुक्त 'अविरत्ता' (अविरक्त) विशेषण पति के प्रति पत्नी के समर्पण भाव तथा नारी के उदात्त व्यक्तित्व का सूचक है।

कोल्लाक सन्निवेश

तस्स णं वाणियगामस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए एत्थ णं कोल्लाए णामं सण्णिवेसे होत्था, रिद्धत्थिमिय जाव पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। तत्थ णं कोल्लाए सण्णिवेसे आणंदस्स गाहावइस्स बहुए मित्तणाइणियगसयण-संबंधिपरिजणे परिवसइ, अइडे जाव अपरिभूए।

कठिन शब्दार्थ - सण्णिवेसे - सन्निवेश-उपनगर (कॉलोनी), रिद्धत्थिमिय - वैभवशाली सुरक्षित - गगनचुम्बी भवनों से भरपूर, स्वचक्र और परचक्र के भय से रहित, पासाईए - चित्त को प्रसन्न करने वाला, दरिसणिज्जे - दर्शनीय, अभिरूवे - अभिरूप - मन को अपने में रमा लेने वाला, पडिरूवे - प्रतिरूप - मन में बस जाने वाला, मित्त - मित्र, सखा, णाइ - न्याति-जाति वाले, णियग - निजक - माता पिता आदि, सयण - स्वजन - बंधु-बंधव आदि, संबंधि - संबंधी-श्वसुर आदि, परिजणे - परिजन - दास-दासी आदि, परिवसइ - निवास करते थे।

भावार्थ - उस वाणिज्य ग्राम के बाहर उत्तर पूर्व दिशाभाग - ईशानकोण में कोल्लाक

नाम सन्निवेश - उपनगर था। वह रिद्धि-स्तम्भित एवं समृद्धि युक्त था यावत् प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप था। उस कोल्लाक सन्निवेश में आनंद गाथापति के मित्र, ज्ञातिजन (समान आचार विचार के स्वजातीय लोग) निजक (माता-पिता, पुत्र-पुत्री आदि) स्वजन सम्बंधी परिजन आदि निवास करते थे जो समृद्ध यावत् अपरिभूत थे अर्थात् धनवान एवं सच्चरित्र होने से किसी से दबने वाले नहीं थे।

भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए। परिसा णिग्गया। कूणिए राया जहां तथा जियसत्तू णिग्गच्छइ णिग्गच्छित्ता जाव पज्जुवासइ।

कठिन शब्दार्थ - समणे - श्रमण - तप संयम में श्रम करने वाले, कषायों का शमन करने वाले, सुमन-अच्छा मन रखने वाले, भगवं - भगवान् - आत्मिक ऐश्वर्य से युक्त, महावीरे - कर्मक्षय में प्रचण्ड पराक्रमी, पज्जुवासइ - पर्युपासना करता है।

भावार्थ - उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वाणिज्यग्राम नगर के द्युतिपलास चैत्य में पधारे। ठहरने के लिए यथोचित स्थान ग्रहण किया। संयम और तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हुए। परिषद् आई। कोणिक के समान राजा जितशत्रु भी भगवान् के दर्शन वंदन के लिए निकला। यावत् पर्युपासना करने लगा।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भगवान् महावीर स्वामी के वाणिज्य ग्राम में पदार्पण, समवसरण, परिषद् का निकलना और राजा जितशत्रु के दर्शनार्थ जाने का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। भगवान् महावीर स्वामी के विशिष्ट गुणों और प्रभु के प्रत्येक अंगोपांग का विस्तृत वर्णन उववाई सूत्र में है जिज्ञासुओं को वहाँ से देख लेना चाहिये।

यहाँ समोसरिए, परिसा णिग्गया से पाठ संक्षिप्त किया गया है इसमें भगवान् महावीर स्वामी के पदार्पण की जानकारी होना, समूह में दर्शन करने के लिए घर से एवं नगरी से निकलना आदि वर्णन है।

राजा जितशत्रु के घर से निकलने, भगवान् की सेवा में पहुँच कर पर्युपासना करने आदि का वर्णन उववाई सूत्र में वर्णित राजा कोणिक के भगवान् के दर्शनार्थ जाने, वंदन एवं पर्युपासना करने के समान है। अतः उववाई सूत्र का उक्त स्थल दृष्टव्य है।

आनंद का दर्शनार्थ गमन

तए णं से आणंदे गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्टे समाणे 'एवं खलु समणे जाव विहरइ, तं महाफलं (जाव) गच्छामि णं जाव पज्जुवासामि' एवं संपेहेइ, संपेहिता णहाए सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पायविहारचारेणं वाणियगामं णयरं मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणामेव दूइपलासे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ जाव पज्जुवासइ।

कठिन शब्दार्थ - इमीसे कहाए - यह वृत्तांत, लद्धट्टे समाणे - जानकर, एवं खलु - इस प्रकार निश्चय ही, महाफलं - महान् फल, संपेहेइ - विचार किया, णहाए - स्नान किया, सुद्धप्पावेसाइं - सभा में पहनने योग्य नए अथवा धुले हुए वस्त्रों को, अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे - अल्प-वजन में हल्के, महार्घ-भावों में कीमती आभरण-गहनों से शरीर को अलंकृत किया, सयाओ - अपने, गिहाओ - घर से, पडिणिक्खमइ - निकला, सकोरंटमल्लदामेणं - कौरंट-कनैर के फूलों की माला सहित, छत्तेणं - छत्र को, धरिज्जमाणेणं - धारण किये हुए, मणुस्सवग्गुरा परिक्खित्ते - पुरुषों के समूह से घिरे हुए, पायविहारचारेणं - पैदल ही चलते हुए, मज्झं-मज्झेणं - राजमार्ग से होते हुए।

भावार्थ - तदनन्तर आनंद गाथापति ने यह वृत्तांत जान कर कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वाणिज्यग्राम नगर के बाहर द्युतिपलाश उद्यान में तप संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचार रहे हैं अतः मैं उनके दर्शन का महान् फल प्राप्त करूँ, ऐसा मन में विचार आया। विचार करके उसने स्नान किया, शुद्ध तथा सभा योग्य मांगलिक वस्त्र अच्छी तरह पहने। अल्पभार वाले किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। अपने घर से निकला, निकल कर कौरंट पुष्पों की माला से युक्त छत्र धारण किये हुए, पुरुषों से घिरा हुआ पैदल चल कर ही वाणिज्यग्राम नगर के राज मार्ग से होता हुआ जहाँ द्युतिपलाश चैत्य था भगवान् महावीर

स्वामी थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वंदन नमस्कार किया यावत् पर्युपासना करने लगा।

विवेचन - 'तं महाफलं जाव गच्छामि' में निम्न सूत्रांश का ग्रहण हुआ है - 'तं महाफलं खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्सवि सवणयाए किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसणं-पडिपुच्छण पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमंग पुण विउलस्स अट्टस्स गहणयाए?'

अर्थ - अहो देवानुप्रिय! तथारूप के अरहंत भगवंतों के (महावीर आदि) नाम और (काश्यप आदि) गोत्र सुनने का भी महान् फल है, फिर उनकी सेवा में जाने, वंदना-नमस्कार करने, सुख-साता पूछने एवं पर्युपासना करने के फल का तो कहना ही क्या? उनसे एक धार्मिक वचन सुनने का भी महान्-महान् लाभ है, फिर प्रवचन सुन कर विपुल श्रुत प्राप्त करने का तो कहना ही क्या?

आनंद गाथापति ने स्नान किया और सभा में जाने योग्य वस्त्राभूषण धारण किए। यह लौकिक-व्यवहार है। स्नान का धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

'सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं' का अर्थ - 'कोरंट वृक्ष के फूलों की माला को छत्र पर धारण किया' समझना चाहिए। कई जगह 'कोरंट वृक्ष के फूलों को छत्र धारण किया' - अर्थ भी देखा जाता है, पर शब्दों का अर्थ इस प्रकार है - कोरंट वृक्ष की मालाओं के समूह सहित छत्र धारण किया। 'स' शब्द यहाँ सहित का द्योतक है।

'आयाहिणं पयाहिणं' - का अर्थ कोई 'भगवान् के चारों ओर प्रदक्षिणा' करते हैं, पर स्थानकवासी आमनाय 'हाथ जोड़ कर अपने अंजलिपुट से सिरसा आवर्तन' इस अर्थ को ठीक मानती है। वैसे ही भगवान् की परिक्रमा का कोई कारण ध्यान में नहीं आता।

'मज्झं मज्झेणं' का अर्थ अनेक स्थानों पर 'बीचोबीच', 'मध्य भाग से' देखा जाता है, पर वह उचित नहीं है। 'मज्झं मज्झेणं' का बहुश्रुत-सम्मत अर्थ तो है - 'राजमार्ग से गमन'। गली-कूँचों से जाना 'मज्झं मज्झेणं' नहीं है।

इस सूत्र में उस समय के श्रेष्ठी वर्यों की धर्म भावना का जीवंत चित्र उपस्थित किया गया है जो आनंद की भाषा और भावना रूप से सूत्र में विस्तार से निरूपित किया है। वे श्रेष्ठी वर्ग धर्मगुरुओं के दर्शन और पर्युपासना करने तथा उनके मुखारविन्द से धर्म श्रवण कर जीवन में व्रत

नियम धारण करने को ही महान् हितकारी कल्याणकारी समझते थे और हृदय में वैसा अनुभव भी करते थे। आज भी ऐसी श्रद्धा, भावना और धर्मनिष्ठता अनुकरणीय है।

धर्मदेशना

तए णं समणे भगवं महावीरे आणंदस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए जाव धम्मकहा, परिसा पडिगया, राया य गए।

कठिन शब्दार्थ - महइ महालियाए - विशाल जन सभा को, धम्मकहा - धर्मकथा, परिसा पडिगया - परिषद् लौटी, राया य - राजा भी, गए - गये।

भावार्थ - तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आनंदगाथापति तथा विशाल परिषद् को धर्मकथा कही। परिषद् और राजा धर्म सुन कर चले गए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीर्थंकर भगवान् की धर्मदेशना का वर्णन है। भगवान् के धर्मोपदेश का विस्तृत वर्णन औपपातिक सूत्र में है। यहाँ उसका संक्षिप्त पाठ ग्रहण किया गया है। उस उपदेश का संक्षिप्त विषय निर्देश इस प्रकार है -

१. लोक, अलोक, जीव, अजीव आदि नरकादि, माता-पिता, ऋषि-मुनि, सिद्ध-सिद्धि आदि तत्त्वों का अस्तित्व है।
२. अठारह पाप, पापों का त्याग, पुण्य और पाप कर्मों का फल आदि है।
३. केवली प्ररूपित उत्कृष्ट धर्म का आचरण, आराधन कर जीव सिद्ध होता है, यदि कर्म शेष रहे तो देव बनता है और उसके बाद के भवों में मुक्त होता है।
४. नरकादि चार गतियों में जाने अर्थात् उनके आयुष्य बंध के चार-चार कारण हैं।
५. दो प्रकार के धर्म (अगार धर्म और अनगार धर्म) की आराधना बंधन-मुक्ति का मार्ग है।
६. अनगार धर्म में पांच महाव्रतों और रात्रि भोजन विरमण व्रत का पालन हो।
७. अगार धर्म में श्रावक के बारहव्रतों का स्पष्टीकरण है। अगार धर्म में स्थित श्रावक भी आज्ञा का आराधक होता है।
८. दोनों धर्मों में पंडित मरण संलेखना संथारा का भी कथन है।

इस प्रकार का धर्मोपदेश सुन कर कितनेक जीव अनगार बनते हैं, कितनेक श्रावक के व्रत स्वीकार करते हैं और कितनेक सम्यग्-दर्शन को प्राप्त करते हैं।

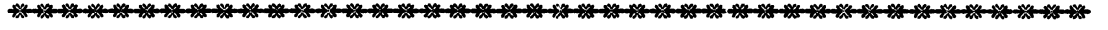
संसार से विमुख कर मोक्षाभिमुख करने वाले व्याख्यान ही 'धर्मकथा' है। धर्मकथा सुनने का सबसे बड़ा लाभ सर्वविरति अंगीकार करना है। श्रावक व्रत वही स्वीकार करता है जो संयम धारण न कर सके। जिसकी जिनवाणी पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं है, वह न तो संयमी जीवन के योग्य है और न श्रावक-व्रतों के।

आनंद की प्रतिक्रिया

(४)

तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्ट जाव एवं वयासी - 'सद्दहामि णं भंते! णिगंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! णिगंथं पावयणं, रोएमि णं भंते! णिगंथं पावयणं, एवमेयं भंते!, तहमेयं भंते!, अवितहमेयं भंते!, इच्छियमेयं भंते!, पडिच्छियमेयं भंते! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते!, से जहेयं तुब्भे वयह' त्तिकट्टु जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-सेट्टि(सेणावइ)सत्थवाहप्पभिइया मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, णो खलु अहं तहा संचाएमि मुंडे जाव पव्वइत्तए, अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि।

कठिन शब्दार्थ - अंतिए - समीप, धम्मं - धर्म को, सोच्चा - सुन कर, णिसम्म - हृदय में धारण करके, हट्टतुट्ट - हृष्ट तुष्ट, सद्दहामि - श्रद्धा करता हूँ, णिगंथं पावयणं - निर्ग्रन्थ प्रवचन पर, पत्तियामि - प्रतीति करता हूँ, रोएमि - रुचि करता हूँ, एवमेयं - यह ऐसा ही है, तहमेयं - यह तथ्यपरक है, अवितहमेयं - यही अवितथ-सत्य-संदेह रहित है, इच्छियमेयं- यही इच्छित है, पडिच्छियमेयं - यही प्रतीच्छित-स्वीकृत है, इच्छियपडिच्छियमेयं- यही इच्छित प्रतीच्छित है, तुब्भे - आपने, जहेयं - जंसा अर्थ, वयह - कहा, सत्थवाहप्पभिइओ - सार्थवाह प्रभृति-आदि, मुंडे भवित्ता - मुण्डित होकर, अगाराओ - आगार-घर बार से, अणगारियं - अनगार के रूप में, पव्वइया - प्रव्रजित, संचाएमि - समर्थ हूँ, पंचाणुव्वइयं - पांच अणुव्रतों, सत्तसिक्खावइयं - सात शिक्षा व्रतों, दुवालसविहं-



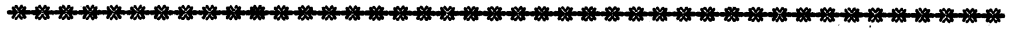
द्वादशविध, गिहिधम्मं - गृहस्थ धर्म-श्रावक धर्म को, पडिवज्जिस्सामि - स्वीकार करूँगा, अहासुहं - जैसा सुख हो, देवाणुप्पिया - देवानुप्रिय, मा - मत, पडिबंध - प्रतिबंध - प्रमाद-विलम्ब, करेह - करो।

भावार्थ - तब आनन्द गाथापति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्म का श्रवण कर हर्षित एवं परितुष्ट होता हुआ यावत् इस प्रकार बोला - हे भगवन्! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा है, निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रतीति-विश्वास है। निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे रुचिकर है। यह ऐसा ही है, तथ्य है, सत्य है, इच्छित है, प्रतीच्छित है, इच्छित-प्रतीच्छित है। यह वैसा ही है जैसा आपने कहा है हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार आपके पास अनेक राजा, ऐश्वर्यशाली, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, श्रेष्ठी, सेनापति एवं सार्थवाह आदि मुण्डित होकर गृहवास का परित्याग कर अनगार रूप में प्रव्रजित हुए, मैं उस प्रकार मुंडित होकर गृहस्थ जीवन का परित्याग कर अनगार धर्म में प्रव्रजित होने में असमर्थ हूँ अतः आपके पास पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत मूलक बारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ। आनंद के इस प्रकार कहने पर भगवान् ने कहा - हे देवानुप्रिय! जिससे तुमको सुख हो वैसा ही करो। धर्म कार्य में विलम्ब (प्रमाद) मत करो।

विवेचन - जिसका विवाह होता है उसके नाम से गीत गाए जाते हैं वैसे ही यद्यपि धर्मसभा में साधु साध्वी भी थे पर यहाँ आनंदजी का वर्णन प्रधान होने से यह कहा जा रहा है कि प्रभु ने आनंद गाथापति और उपस्थित जन समुदाय को वह धर्मकथा कही जो भव भव के बंधन तोड़ने वाली है, ब्रतों के द्वारा आत्मा को सुरक्षा देने वाली है, जाज्वल्य अंगारों के उष्ण-तप्त स्पर्श में भी मन की शांति-समाधि टिका कर कैवल्य एवं निर्वाण देने वाली है। धर्म सुन कर राजा एवं परिषद् स्वस्थान को गए।

आनंद को भगवान् की अष्टादश अघमलहारिणी एवं भव जलतारिणी जिनवाणी बहुत प्रिय लगी। हर्ष एवं प्रसन्नता से खिले हुए वे श्रीचरणों में निवेदन करते हैं -

‘हे निर्ग्रन्थनाथ! मैं आपके निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि करता हूँ। यह यथाकथित है, सत्य है, असत्य रहित है, यह मुझे रूचा है, बहुत बहुत प्यारा लगा है। जो बात आपने फरमाई है उसको कोई नकार नहीं सकता है, क्योंकि सत्य स्वर्ण को असत्य अग्नि जला नहीं सकती। हे महामहिम! आपश्री ने संयम भी निरूपित किया। निस्संदेह संयम ऊँचा है, अच्छा है, आपके पास बहुत से धन्य भाग राजा ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक इभ्य सेठ सेनापति सार्थवाह आदि संयम भी लेते ही हैं। मैं उन्हें शूरीर मानता हूँ पर अभी मेरी



शक्ति सामर्थ्य संयम लूं - वैसी नहीं लगती है। आपने जो श्रावक धर्म फरमाया जिसकी गृहस्थावस्था में रहते हुए भी आराधना संभव है ऐसे पांच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रत रूप द्वादशविध श्राद्ध धर्म को मैं आप से ग्रहण करूँगा।”

यह सुन कर भगवान् ने कहा - “हे देवानुप्रिय! सर्वविरति रूप प्रत्याख्यान को आवरण करने वाली कषाय की तीसरी चौकड़ी का जब तक क्षयोपशम न हो तब तक चारित्रमोह संयम में बाधक होता है। तुम श्रावक व्रत धारण करने व पालने के सुयोग्य पात्र हो। मैं तुम्हें श्रावक व्रत अंगीकार करवाऊँगा। धर्मानुष्ठान में किसी प्रकार की रुकावट रूप प्रतिबंध नहीं करना है।”

भगवान् के द्वारा आज्ञापित अनुज्ञापित होने से आनन्द गाथापति की प्रसन्नता का पारावार नहीं रहा। निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि के बाद वे द्वादश श्रावक धर्म को क्रमशः इस प्रकार अंगीकार करते हैं।

व्रत-ग्रहण

(५)

१. अहिंसा व्रत

तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए तप्पढमयाए थूलगं पाणाइवायं पच्चक्खाइ, ‘जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं ण करेमि ण कारवेमि मणसा वयसा कायसा’ १।

कठिन शब्दार्थ - तप्पढमयाए - प्रथम, थूलगं - स्थूल, पाणाइवायं - प्राणातिपात-हिंसा का, पच्चक्खाइ - प्रत्याख्यान-त्याग किया, दुविहं - दो करण, तिविहेणं - तीन योग से, ण करेमि - नहीं करता हूँ, ण कारवेमि - नहीं कराता हूँ, मणसा - मन से, वयसा - वचन से, कायसा - काया से।

भावार्थ - तव आनन्द गाथापति श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से प्रथम व्रत में स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करते हैं - मैं यावज्जीवन दो करण तीन योग से अर्थात् मन, वचन, काया से स्थूल प्राणातिपात-स्थूल हिंसा का सेवन नहीं करूँगा और न करवाऊँगा।

विवेचन - संसारी जीवों के मुख्य दो भेद हैं - त्रस और स्थावर। स्थूल प्राणातिपात विरमण में श्रावक निरपराधी त्रस जीवों की जान बूझ कर संकल्प पूर्वक हिंसा का त्याग करता हूँ।



स्थूल प्राणातिपात (हिंसा) - शिकार करने की वृत्ति से पंचेन्द्रिय हिंसा, मांसाहार के लिये पंचेन्द्रिय हिंसा, निष्प्रयोजन कुतूहलवृत्ति, चंचलवृत्ति अथवा हिंसक क्रूर परिणामों से संकल्पपूर्वक त्रस जीवों की अर्थात् बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा, क्रोध आदि कषाय वश होकर अल्पमत अपराधी या निरपराधी छोटे बड़े किसी त्रस जीवों की हिंसा आदि स्थूल हिंसा के कार्य हैं। इस प्रकार की हिंसा का प्रथम अणुव्रती श्रावक के त्याग होता है।

शेष हिंसा - गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते, शरीर और परिवार के निर्वाह के लिए जो गृहकार्य अथवा व्यापार अथवा वाहनों के द्वारा गमनागमन होता है, जिसमें स्थावर अथवा त्रस जीवों की हिंसा हो जाती है। स्वयं के अथवा स्वयं के आश्रित जीवों की सुरक्षा उपचार आदि में त्रस जीवों की हिंसा होती है। आक्रमण करते हुए जीवों का सामना करने के लिए हिंसा होती है। स्वयं के प्राणों की अथवा सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए जीव रक्षा का प्रयत्न करते हुए भी किसी जीव की हिंसा हो जाती है आदि प्रसंगों में जो हिंसा होती है वह उपरोक्तव्रत में सूचित स्थूल हिंसा में समाविष्ट नहीं होती वह अवशेष हिंसा है, जिसका श्रावक को आगार होता है।

करण और योग - करना, कराना और अनुमोदन करना, ये तीन करण हैं अर्थात् हिंसादि पाप कार्य स्वयं करना, दूसरों को आदेश देकर हिंसा करवाना और हिंसा करने वालों का अनुमोदन करना, हिंसा को अच्छा समझना।

मन, वचन और काया ये तीन योग हैं अर्थात् किसी भी कार्य को करने के ये तीन साधन हैं। इन तीन योगों से करना, कराना, अनुमोदन आदि क्रिया होती है।

मन से - १. पाप कार्य करने का स्वयं संकल्प करना २. मन में ही अपने अधीन व्यक्ति को पाप कार्य करने की प्रेरणा करनी, आदेश देना ३. मन में ही जो कोई पाप कार्य किया उसे अच्छा मानना, देख कर अथवा सुनकर अत्यंत खुश होना। यहाँ मन से करने कराने में प्रसन्नचन्द्र राजर्षि और तंदुलमच्छ का दृष्टान्त उपयुक्त है। मन से कार्य करने कराने का निर्णय करना। मन में ही मंत्र स्मरण से हिंसा प्रवृत्ति स्वयं की जा सकती है और मंत्र द्वारा दूसरों से हिंसा कराई भी जा सकती है।

वचन से - १. पाप कार्य का संकल्प और निर्णय वचन से प्रकट करना, मंत्रोच्चारण आदि द्वारा किसी की हिंसा करना २. हिंसा आदि कार्यों का वचन से आदेश देना, प्रेरणा करना ३. हिंसा का कार्य करने वाले की वचन से प्रशंसा करना अथवा धन्यवाद देना।

काया से - १. शरी से स्वयं हिंसा करना २. शरीर अथवा हाथ से ईशारा करके किसी को कहे बिना हिंसा की प्रेरणा करना ३. हिंसा का काम करने वाले का हाथों से या सम्पूर्ण शरीर से अनुमोदन करना।

स्थूल दृष्टि से मन के द्वारा अनुमोदन, वचन से कराना और काया से करना - ये तीन बोल सहज और सरलता से समझे जाते हैं अन्य छह विकल्पों को समझने के लिए सूक्ष्म दृष्टिकोण से विचार करना पड़ता है।

भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक ५ में श्रावक के अणुव्रत ग्रहण करने के कारण और योग की अपेक्षा ४६ भंग कहे गये हैं। यहाँ आनंद श्रमणोपासक ने प्रथम अणुव्रत में दो करण तीन योग से स्थूल हिंसा का त्याग किया है।

२. सत्य व्रत

तयाणंतरं च णं थूलगं मुसावायं पच्चक्खाइ, 'जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं ण करेमि णं कारवेमि मणसा वयसा कायसा' २।

कठिन शब्दार्थ - तयाणंतरं - तदनन्तर - इसके बाद, मुसावायं - मृषावाद - असत्य भाषण।

भावार्थ - तदनन्तर स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान करते हैं - 'मैं' यावज्जीवन दो करण तीन योग से स्थूल मृषावाद-असत्य का सेवन नहीं करूँगा, नहीं कराऊँगा, मन से, वचन से और काया से।'

विवेचन - चौथे गुणस्थान तक के जीव चारित्र के सर्वथा अभाव के कारण 'बाल' कहे जाते हैं ज्योंही कोई भी छोटा मोटा व्रत समकित सहित ग्रहण किया जाता है जीव 'बाल पंडित' की श्रेणी में आ जाता है।

पहले व्रत के ग्रहण करने के पूर्व तक शास्त्रकार ने मूल पाठ में आनंद को 'तएणं से आणंदगाहावइ' आनंद गाथापति कहा है। आनंद गाथापति, पहला व्रत ग्रहण करते ही चौथे से पांचवें गुणस्थान पर आरुढ़ हो गये। अब यह कहा गया है कि आनंद श्रावक ने दूसरा व्रत ग्रहण किया। वह 'स्थूल मृषावाद प्रत्याख्यान' रूप है। दूसरे व्रत में आनंद श्रमणोपासक प्रतिज्ञा करते हैं - "मैं यावज्जीवन के लिए स्थूल (मोटे) झूठ को मन, वचन, काया से स्वयं बोलूँगा नहीं और न दूसरों से बुलवाऊँगा।"

स्थूल मृषा - बड़ा झूठ-अकारण किसी को दण्डित होना पड़े, नुकसान हो, राज्य की ओर से बड़ा अपराध मान कर सजा देने में आवे, लोगों में निंदा हो, कुल जाति अथवा धर्म कलंकित हो ऐसे असत्य वचन का उच्चारण 'बड़ा झूठ' कहलाता है साथ ही जिस वचन के बोलने से किसी के प्राण संकट में पड़ते हो तो उसे भी स्थूल मृषा कहा जाता है।

'आवश्यक सूत्र' में मृषावाद के मुख्य पांच भेद इस प्रकार बताये गये हैं -

१. कन्यालीक - वर कन्या आदि के विषय में मिथ्याभाषण।

२. गवालीक - गाय आदि पशुओं के संबंध में मिथ्या भाषण।

३. भूमालिक - भूमि के संबंध में असत्य भाषण।

४. न्यासापहार - धरोहर दबाने के लिए झूठ बोलना - किसी ने पूर्ण विश्वास से अपनी कीमती वस्तु किसी के पास रखी हो उस संबंध में विश्वासघात करके झूठ बोलना।

५. कूट साक्ष्य - झूठी गवाही - पूर्ण असत्य के पक्ष में साक्षी देना जिससे सच्चा व्यक्ति दंडित हो कर नुकसान को प्राप्त हो।

आनंद श्रमणोपासक ने इन पांच प्रकार के स्थूल मृषावाद का दूसरे व्रत में त्याग किया।

अवशेष मृषा - स्थूल मृषावाद का त्याग करने पर भी श्रावक द्वारा कितनेक असत्य का गृहस्थ जीवन में त्याग नहीं हो सकता। साधु के समान श्रावक के लिए वचन समिति का विधान भी नहीं है। श्रावक भी भिन्न-भिन्न वय और स्वभाव वाला होता है। अतः भूल से, आदत से, हास्य विनोद से, भयसंज्ञा से अपने प्राणों की रक्षा अथवा सामान संपत्ति की रक्षा के लिए, स्वजनपरिजन की सुरक्षा हेतु अथवा व्यापार में असत्य भाषण हो जाता है, उसका इस व्रत में आगार होता है अर्थात् इस प्रकार के असत्य को स्थूल मृषावाद से अतिरिक्त समझना चाहिये, जिसका श्रावक को त्याग नहीं होता है।

३. अस्तेय व्रत

तयाणंतरं च णं थूलगं अदिण्णादाणं पच्चक्खाइ, 'जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं ण करेमि ण कारवेमि मणसा वयसा कायसा' ३।

भावार्थ - तत्पश्चात् आनंद श्रावक तीसरे व्रत में स्थूल अदत्तादान का प्रत्याख्यान करते हैं - 'मैं जीवन पर्यंत दो करण तीन योग से स्थूल अदत्तादान का सेवन नहीं करूँगा और नहीं कराऊँगा, मन, वचन और काया से।

विवेचन - दूसरे अणुव्रत को ग्रहण करने के बाद आनंद श्रमणोपासक ने क्रम प्राप्त तीसरे अणुव्रत को ग्रहण किया। इसमें 'स्थूल अदत्तादान' का प्रत्याख्यान होता है। वे प्रतिज्ञा करते हैं - हे भगवन्! मैं यावज्जीवन के लिए स्थूल अदत्तादान (मोटी-चोरी) मन, वचन और काया से न तो स्वयं करूँगा और न दूसरे से करवाऊँगा।

स्थूल अदत्तादान - १. सेंध लगा कर - दीवाल अथवा दरवाजा तोड़ कर चोरी करना २. गांठ खोल कर - सामान की पेटी में से सामान चुराना ३. ताले को कुंची द्वारा खोल कर - ताला तोड़ कर अथवा अन्य चाबी से ताला खोल कर चोरी करना ४. मार्ग में चलते हुए को लूट कर - किसी को जोर जबरदस्ती से लूटना अथवा विश्वासघात कर जेब काट लेना ५. 'यह वस्तु अमुक की है' - ऐसा जान कर भी चोरी की भावना से उस वस्तु को लेना। आवश्यक सूत्र में इन सब को 'बड़ी चोरी' माना गया है। श्रावक इस प्रकार की बड़ी चोरी का त्याग करता है।

अवशेष अदत्तादान - चोरी की मनोवृत्ति के अभाव में परिचित अथवा परिचित व्यक्ति की वस्तु लेना अथवा पुनः देना अथवा उपयोग में ले लेना। व्यापार व्यवसाय में भी जिसका परस्पर विश्वास हो उसकी किसी भी वस्तु को लेना या देना। राजकीय व्यवस्था, नियम संतोषप्रद नहीं होने से कितनेक नियमों का पालन नहीं होता। इसके अलावा भी व्यापार व्यवसाय की वे सूक्ष्मतम प्रवृत्तियाँ जिनका उपरोक्त पांच स्थूल अदत्तादान में समावेश नहीं होता है, वे सब प्रवृत्तियाँ अवशेष अदत्तादान में समझनी चाहिये।

यद्यपि अवशेष हिंसा, झूठ और चोरी से यथायोग्य पाप का सेवन और कर्म बंध तो होता ही है किन्तु गृहस्थ जीवन की अनेक परिस्थितियों के कारण उनकी अवशेष में गणना की गयी है। उनका भी श्रावक को विवेक पूर्वक त्याग का लक्ष्य रखना चाहिये।

४. स्वदार संतोष व्रत

तयाणंतरं च णं सदारसंतोसिए परिमाणं करेइ, 'णणत्थ एक्काए सिवणंदाए भारियाए, अवसेसं सव्वं मेहुणविहिं पच्चक्खा(इ)मि मणसा वयसा कायसा ४।

कठिन शब्दार्थ - सदारसंतोसिए - सदार - स्व-अपनी विवाहिता पत्नी में संतोष, णणत्थ- सिवाय, एक्काए - एक, अवसेसं - अवशेष-अतिरिक्त, मेहुणविहिं - मैथुन विधि का, पच्चक्खामि - प्रत्याख्यान - त्याग करता हूँ।

भावार्थ - चौथे व्रत में आनंदजी 'स्वदार संतोष परिमाण' करते हैं - 'मैं अपनी भार्या शिवानंदा के अतिरिक्त शेष सभी के साथ मैथुन विधि का मन, वचन और काया से प्रत्याख्यान करता हूँ।'

विवेचन - स्थूल अदत्तादान प्रत्याख्यान रूप तीसरा अणुव्रत ग्रहण करके आनंद श्रावक चौथा अणुव्रत धारण करते हैं। वे प्रतिज्ञा करते हैं कि - 'हे भगवन्! मैं अपनी एक मात्र विवाहिता पत्नी शिवानंदा के अतिरिक्त बाकी सब मैथुन विधि का मन, वचन, काया से सेवन नहीं करूँगा।'

चौथे व्रत में करण का स्पष्टीकरण मूल पाठ में नहीं है इसका कारण यह है कि आनंद श्रावक ने शिवानंदा पत्नी के अलावा सम्पूर्ण कुशील का त्याग किया है। इस विषय में परम्परा से एक करण एक योग समझना चाहिये। क्योंकि गृहस्थ जीवन में पुत्र आदि के लग्न करने के लिए उसे आदेश या निर्देश करने पड़ सकते हैं। उत्तरदायित्व से मुक्त होने पर करण योग में वृद्धि की जा सकती है। देव देवी की अपेक्षा दो करण तीन योग से त्याग समझना चाहिये।

यहाँ मूल पाठ में कुछ प्रतियों में 'सिवनंदा' पाठ मिलता है किन्तु अभिधान राजेन्द्रकोष में आनंद श्रावक के वर्णन में सर्वत्र मूलपाठ में 'सिवाणंदा' पाठ है। शब्दकोष के क्रम में भी 'सिवाणंदा' शब्द और उसकी व्याख्या है। 'सिवनंदा' शब्द कोष में नहीं है इसीलिए यहाँ मूल पाठ में 'सिवानंदा' शब्द दिया है जो कि शुद्ध है।

५-६ इच्छा परिमाणव्रत/दिशाव्रत

तयाणंतरं च णं इच्छाविहिपरिमाणं करेमाणे हिरण्णसुवण्णविहिपरिमाणं करेइ, णण्णत्थ चउहिं हिरण्णकोडीहिं णिहाणपउत्ताहिं, चउहिं वुट्ठिपउत्ताहिं चउहिं पवित्थरपउत्ताहिं, अवसेसं सव्वं हिरण्णसुवण्णविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - इच्छाविहिपरिमाणं - इच्छा विधि परिमाण, हिरण्णसुवण्णविहि-परिमाणं - हिरण्य स्वर्णविधि परिमाण।

भावार्थ - तदनन्तर आनंद जी पांचवें इच्छाविधि-परिग्रह परिमाण व्रत में हिरण्य स्वर्ण विधि का परिमाण करते हैं - 'चार करोड़ स्वर्ण मुद्राएं भण्डार में, चार करोड़ व्यापार में, चार करोड़ की घर बिखरी। इसके अतिरिक्त शेष हिरण्य स्वर्ण विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।'

तयाणंतरं च णं चउप्पयविहिपरिमाणं करेइ, 'णण्णत्थ चउहिं वएहिं दसगोसाहस्सिएणं वएणं, अवसेसं सव्वं चउप्पयविहिं पच्चक्खामि ३' ।

कठिन शब्दार्थ - चउप्पयविहिपरिमाणं - चतुष्पद विधि परिमाण।

भावार्थ - इसके बाद चतुष्पद विधि का परिमाण करते हैं - 'दस हजार गायों का एक ब्रज, ऐसे चार ब्रज के अतिरिक्त शेष पशु-धन का प्रत्याख्यान करता हूँ।'

विवेचन - चौथा अणुव्रत ग्रहण करने के बाद क्रम से पांचवें स्थान वाला परिग्रह परिमाण व्रत आनंद जी इस प्रकार ग्रहण करते हैं - 'हे भगवन्! मैं चार करोड़ स्वर्ण मुद्राओं से अतिरिक्त धन का निधान नहीं रखूंगा। मैं चार करोड़ स्वर्ण मुद्राओं से अधिक का व्यापार नहीं करूंगा। मैं चार करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के अतिरिक्त घर बिखरी नहीं रखूंगा। शेष सब स्वर्ण-रजत का मन, वचन, काया से त्याग करता हूँ।'

चतुष्पद विधि का प्रत्याख्यान इस प्रकार करते हैं - 'हे भगवन्! दस हजार पशुओं का एक ब्रज होता है ऐसे चार ब्रज यानी चालीस हजार गायों के पशु धन से ज्यादा नहीं रखूंगा। शेष सब चतुष्पद विधि का मन, वचन, काया से त्याग करता हूँ।'

तयाणंतरं च णं खेत्तवत्थुविहिपरिमाणं करेइ, 'णण्णत्थ पंचहिं हलसएहिं णियत्तणसइएणं हलेणं अवसेसं सव्वं खेत्तवत्थुविहिं पच्चक्खामि ३' ।

कठिन शब्दार्थ - खित्त - क्षेत्र - खेत जैसी खुली जमीन, वत्थु - वास्तु - ढंकी जमीन-मकान, नोहरा आदि, पंचहिं हलसएहिं - पांच सौ हल, णियत्तणसइएणं - सौ निवर्तन।

भावार्थ - तदनन्तर आनंद जी श्रेत्र वास्तु विधि का परिमाण करते हैं - 'सौ निवर्तन का एक हल, ऐसे पांच सौ हल उपरान्त शेष सभी क्षेत्र वास्तु विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।'

विवेचन - निवर्तन का माप इस प्रकार है -

दशकरै भवेत् वंश, विंशवंशे निवर्तनम्।

निवर्तन शतैर्मानम् हलक्षेत्रं स्मृतं बुधैः॥

अर्थात् - दस हाथ का एक बांस, बीस बांस का एक निवर्तन, सौ निवर्तन का एक हल होता है - ऐसा बुद्धिमानों का कहना है।

अब हम पांच सौ हल का नाप निकाल सकते हैं -

दस हाथ = एक बांस। बीस बांस = २०० हाथ। २०० हाथ = १ निवर्तन। १०० निवर्तन = २००० बांस = २०००० हाथ = एक हल।

चार हाथ = एक धनुष, दो हजार धनुष = १ कोस अर्थात् ८००० हाथ का एक कोस होता है अर्थात् १ हल में (२०००० हाथ में) ढाई कोस का क्षेत्र हुआ। एक हल में ढाई कोस तो ५०० हल में १२५० साढ़े बारह सौ कोस भूमि हुई।

वाणिज्य ग्राम नगर के चारों ओर आनंदजी ने सवा छह सौ सवा छह सौ कोस का क्षेत्र खुला रख कर छोटे व्रत की मर्यादा की है।

मुनियों के लिए जो ढाई कोस का अवग्रह क्षेत्रीय व्यास पद्धति से बताया गया है। अपने स्थानक से चारों ओर वे दो कोस भोजन पानी लाने व आगे आधा कोस पंचमी के लिए जा सकते हैं। वैसे ही क्षेत्रीय व्यास की पद्धति से पूर्व पश्चिम के साढ़े बारह सौ कोस तथा उत्तर दक्षिण के साढ़े बारह सौ कोस माने जाते हैं। यह छठाव्रत है।

वर्तमान में उपलब्ध व्रतों की पाठ परम्परा अनुसार, पांचवां छठा और सातवां इन तीनों व्रतों से संबंधित मर्यादा पांचवें इच्छा परिमाणव्रत के अंतर्गत उपलब्ध है। लिपि परम्परा में किसी सूत्र अथवा शब्दों में परिवर्तन हुआ हो ऐसा संभव है क्योंकि अतिचार दर्शक पाठ में छोटे दिशाव्रत के अतिचार यथाक्रम से दिये हैं परन्तु उक्त सूत्रों में दिशाव्रत का स्पष्ट नाम नहीं है फिर भी दिशाव्रत की मर्यादा खेत्तवत्थु के अंतर्गत समाविष्ट होती है क्योंकि यहाँ खेत्तवत्थु की मर्यादा में ५०० हल प्रमाण भूमि की मर्यादा का उल्लेख है। ५०० हल प्रमाण भूमि सम्पूर्ण भारत देश प्रमाण होती है, अतः यह मर्यादा दिशाव्रत की ही हो सकती है।

तयाणंतरं च णं सगडविहिपरिमाणं करेइ, 'णण्णत्थ पंचहिं सगडसएहिं दिसायत्तिएहिं, पंचहिं सगडसएहिं संवाहणिएहिं, अवसेसं सव्वं सगडविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - सगड - छकड़े-शकट, दिसायत्तिएहिं - दिग् यात्रिक - यात्रा करने के लिए, संवाहणिएहिं - माल ढोने के लिए।

भावार्थ - तदनन्तर आनंद जी शकट-विधि का परिमाण करते हैं - 'पांच सौ छकड़े (गाड़ियाँ) यात्रार्थ गमनागमन के लिए तथा पांच सौ छकड़े माल ढोने के लिए, शेष सब शकट विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।'

तयाणंतरं च णं वाहणविहिपरिमाणं करेइ, 'णण्णत्थ चउहिं वाहणेहिं,

दिसायत्तिएहिं चउहिं वाहणेहिं संवाहणिएहिं, अवसेसं सव्वं वाहणविहिं पच्चक्खामि ३' ५।

भावार्थ - तदनन्तर आनंद श्रमणोपासक वाहन विधि का परिमाण करते हैं - चार वाहन (जलयान) यात्रा के लिए और चार वाहन माल ढोने के लिए रख कर मैं शेष वाहन विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

विवेचन - छकड़े व जहाज बारबार काम में लिए जाने वाले होने से परिभोग की मर्यादा में आते हैं। सोने चांदी के गहनों की मर्यादा भी सातवें व्रत में गिनी जाती है। चीजों की मर्यादा तो सातवें व्रत की वस्तु है पर उनका मूल्य पांचवें व्रत का विषय है। कीमत तो परिग्रह परिमाण में शामिल हैं तथा संख्या सातवें व्रत में शामिल है। आनंद जी ने जो चार करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के मूल्य की घर बिखरी रखी है वह कीमत हजार छकड़ों, चार जहाजों के अलावा भी बहुत सी चीजें शामिल गिनने पर भी कम नहीं पड़ती है। अतः आनंद श्रमणोपासक के व्रत में बाधा नहीं आई है।

७. उपभोग परिमाण व्रत

तयाणंतरं च णं उवभोगपरिभोगविहिं, पच्चक्खायमाणे उल्लणियाविहि-परिमाणं करेइ, 'णण्णत्थ एगाए गंधकासाईए, अवसेसं सव्वं उल्लणियाविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - उवभोगपरिभोगविहिं - उपभोग-परिभोग विधि का, उल्लणियाविहि-आर्द्र नयनिका विधि - आर्द्र-गीलापन, नयन-दूर करने वाला। स्नान के बाद पानी से भीगे शरीर को पोंछने के लिए जो अंगोछा(टवाल) आदि काम में लिया जाता है वह आर्द्रनयनिका विधि में शामिल है, गंधकासाईए - सुगंधित काषायिक वस्त्र - सुगंध से युक्त लाल रंग का रोएंदार वस्त्र (टवाल)।

भावार्थ - तब आनंद श्रावक ने सातवें व्रत में उपभोग परिभोग विधि के प्रत्याख्यान में १. आर्द्रनयनिका विधि का परिमाण किया - 'मैं सुगंधित काषायिक वस्त्र के सिवाय शेष आर्द्रनयनिका विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।'

विवेचन - एक बार काम में लेने के बाद जिसका दुबारा उपयोग न हो सके वह उपभोग

की सामग्री गिनी जाती है, जैसे भोजन पानी आदि। बार-बार काम में लेने योग्य वस्तुएं परिभोग की सामग्री गिनी जाती है जैसे - पलंग, बिस्तर, गहना, पेन, जूता, कार आदि। आनंद श्रमणोपासक उपभोग परिभोग विधि में ग्यारह वस्तुओं का परिमाण करते हैं। उसमें प्रथम आर्द्रनयनिका विधि में एक गंध काषायिक वस्त्र की मर्यादा कर शेष का त्याग करते हैं।

तथाणंतरं च णं दंतवणविहिपरिमाणं करेइ, 'णण्णत्थ एणेणं अल्ललट्ठी-महुएणं, अवसेसं दंतवणविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - दंतवणविहिपरिमाणं - दंत धावन-दतौन विधि का परिमाण, अल्ललट्ठी महुएणं- अल्ल-आर्द्र-गीली, लट्ठि-लकड़ी मधुकर-मुलेठी या जेठी।

भावार्थ - २. तत्पश्चात् दातुन विधि का परिमाण करते हैं - 'मैं हरी मुलेठी के सिवाय शेष सब प्रकार के दतौनों का त्याग करता हूँ।'

तथाणंतरं च णं फलविहिपरिमाणं करेइ, 'णण्णत्थ एणेणं खीरामलएणं, अवसेसं फलविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - फलविहि - फलविधि, खीरामलएणं - क्षीरामलक - दुधिया आंवला।

भावार्थ - ३. तदनन्तर फल विधि के परिमाण में क्षीर आमलक के सिवाय शेष सब फलविधि का आनंद प्रत्याख्यान करते हैं।

विवेचन - यहाँ फल विधि का प्रयोग खाने के फलों के संदर्भ में नहीं है। बाल, मस्तक आदि धोने के लिए जिन फलों का उपयोग किया जाता है उनका यहाँ ग्रहण है। कम खटाई वाला दूध के समान मीठा आंवला क्षीरामलक कहलाता है। ऐसे आंवले की इस कार्य में विशेष उपादेयता होने से आनंद ने इसके अलावा बाकी सब फलविधि का त्याग कर दिया।

तथाणंतरं च णं अब्भंगणविहिपरिमाणं करेइ, 'णण्णत्थ सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं, अवसेसं अब्भंगणविहिं पच्चक्खामि ३'।

तथाणंतरं च णं उव्वट्ट(ण)णाविहिपरिमाणं करेइ, 'णण्णत्थ एणेणं सुरहिणा गंधट्टएणं, अवसेसं उव्वट्टणाविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - अब्भंगणविहिपरिमाणं - अभ्यंगन विधि का परिमाण, सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं - शत पाक सहस्रपाक तैल, उव्वट्टणाविहि - उद्वर्तन (उबटन) विधि, गंधट्टएणं - गंधाष्टक-आठ सुगंधित वस्तुओं का मिश्रण।

भावार्थ - ४. तदनन्तर अभ्यंगन विधि का परिमाण करते हैं - 'मैं शतपाक-सहस्रपाक तैल के सिवाय शेष अभ्यंगन विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।'

५. तत्पश्चात् उद्वर्तन विधि का परिमाण करते हैं - 'मैं गंधाष्टक चूर्ण के सिवाय शेष उबटन विधि का त्याग करता हूँ।'

विवेचन - अभ्यंगन का अर्थ है 'मालिश', शतपाक के तीन अर्थ उपलब्ध होते हैं - १. सौ बार जो अन्य औषधियों सहित पकाया गया हो। २. सौ वस्तुएं जिनमें मिली हों ३. जिसके निर्माण में सौ स्वर्ण-मुद्राएं व्यय की गई हों। शरीर के मल को दूर कर निर्मल बनाने वाले द्रव्य पीठी आदि जिनमें तेलादि स्निग्ध पदार्थों का मिश्रण होता है, उसे 'उद्वर्तन-विधि' कहते हैं। आठ सुगंधित वस्तुओं को मिला कर बनाई गई वस्तु 'सुगन्धित गन्धाष्टक' कही जाती है।

तयाणतरं च णं मज्जणविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ अट्टहिं उट्टिएहिं उदगस्स घडएहिं, अवसेसं मज्जणविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - मज्जणविहि - स्नान विधि, अट्टहिं - आठ, उट्टिएहिं - औष्ट्रिक - ऊंट के आकार के जिनका मुंह संकड़ा गर्दन लम्बी और आकार बड़ा हो, उदगस्स - पानी के, घडएहिं - घड़े ।

भावार्थ - ६. इसके बाद स्नान विधि का परिमाण करते हैं - "मैं प्रमाणोपेत आठ घड़ों से अधिक जल का स्नान में प्रयोग नहीं करूँगा।"

विवेचन - "उट्टिएहिं उदगस्स घडएहिं" - ऊंट के चमड़े से बनी कूपी, जिसमें घी-तेल भरा जाता था, वैसे आकार का मिट्टी का घड़ा तथा जिसका माप उचित आकार के घड़े में समाए जितने जल-प्रमाण होता था, ऐसे आठ घड़े प्रमाण जल से अधिक का आनंदजी ने त्याग कर दिया था। सामान्य स्नान में तो वे इससे भी कम जल का प्रयोग करते थे।

तयाणतरं च णं वत्थविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ एणेणं खोमजुयलेणं, अवसेसं वत्थविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - वत्थविहि - वस्त्र विधि, खोमजुयलेणं - क्षोम युगल-सूती कपड़े का जोड़ा।

भावार्थ - ७. तदनन्तर वस्त्र विधि का परिमाण करते हैं - मैं एक क्षोमयुगल - सूती जोड़े के सिवाय शेष वस्त्र विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

विवेचन - यहाँ एक जोड़े का यह अर्थ नहीं समझना कि उसी जोड़े को धोते व पहनते थे। यहाँ एक का अर्थ है सिर्फ एक जाति का जोड़ा खुला रखा यानी सूती कपड़े के सिवाय शेष सभी ऊनी, रेशमी आदि जाति के कपड़ों का आनंदजी ने त्याग किया था।

तयाणंतरं च णं विलेखणविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ अगरुकुंकुमचन्दण-मादिएहिं, अवसेसं विलेखणविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - विलेखणविहि - विलेपन विधि, अगरुकुंकुम चंदणमाइएहिं - अगर, कुंकुम, चंदन आदि द्रव्यों से।

भावार्थ - ८. तत्पश्चात् विलेपन विधि का परिमाण करते हैं - "मैं अगर, कुंकुम और चंदन आदि के अतिरिक्त शेष विलेपन विधि का त्याग करता हूँ।"

तयाणंतरं च णं पुप्फविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ एगेणं सुद्धपउमेणं मालइकुसुमदामेणं वा, अवसेसं पुप्फविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - पुप्फविहि - पुष्पविधि, सुद्धपउमेणं - शुद्ध पद्म का फूल - श्वेत कमल, मालइकुसुमदामेणं - मालती फूल माला।

भावार्थ - ९. तदनन्तर वे पुष्पविधि परिमाण - फूल एवं फूलमालाओं की मर्यादा - करते हैं - मैं श्वेत कमल एवं मालती के फूलों की माला के सिवाय शेष पुष्पविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

तयाणंतरं च णं आभरणविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ मट्टकण्णेज्जएहिं णाममुद्दाए य, अवसेसं आभरणविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - आभरणविहि - आभरणविधि, मट्टकण्णेज्जएहिं - मृष्ट-कोमल स्पर्श वाले कान में पहिने जाने वाले गहने-कुण्डल (मुरकियां) तुगलें आदि, णाममुद्दाए - नामांकित मुद्रिका (अंगूठी)।

भावार्थ - १०. तत्पश्चात् वे आभरण विधि परिमाण-गहनों की मर्यादा करते हैं - मैं कानों के कुण्डल एवं नामांकित मुद्रिका के अतिरिक्त शेष आभरण विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

तयाणंतरं च णं धूवणविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ अगरुतुरुक्कधूवमाइएहिं, अवसेसं धूवणविहिं पच्चक्खामि ३'।

कठिन शब्दार्थ - धूवणविहिपरिमाणं - धूपन विधि परिमाण-अगरबत्ती लोबान आदि



द्रव्यों को जला कर शरीर वस्त्र, भवन आदि को धूपित करना सुवासित करना धूपन विधि है। अगरुतुरुक्कधूवमाइएहिं - अगर, तुरुक्क (लोबान) धूप आदि।

भावार्थ - ११. तदनन्तर आनंद जी धूपन विधि का परिमाण करते हैं - “मैं अगरु, तुरुक्क (लोबान) धूप के सिवाय सभी धूपन विधि का त्याग करता हूँ।”

विवेचन - आर्द्रनयनिका विधि से लगा कर ग्यारहवीं धूपन विधि तक के सारे बोलों में खाने पीने की एक भी चीज नहीं आई है। ये सारे बोल शरीर के बाह्य परिभोग के ही हैं अतः तीसरी फलविधि में भी खाने पीने के फल ग्रहण नहीं किये गये हैं। खाए जाने वाले फलों की मर्यादा आगे माधुरकविधि में आई है।

अब खाए जाने वाले तथा पिए जाने वाले दस बोलों को भोजनविधि की मर्यादा में इस प्रकार ग्रहण करते हैं।

तयाणंतरं च णं भोयणविहिपरिमाणं करेमाणे पेज्जविहिपरिमाणं करेइ,
'णणत्थ एगाए कट्टपेज्जाए अवसेसं पेज्जविहिं पच्चक्खामि ३'।

तयाणंतरं च णं भक्खविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ एगेहिं घयपुण्णेहिं
खंडखज्जएहिं वा, अवसेसं भक्खविहिं पच्चक्खामि ३'।

तयाणंतरं च णं ओदणविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ कलमसालिओदणेणं,
अवसेसं ओदणविहिं पच्चक्खामि ३'।

तयाणंतरं च णं सूवविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ कलायसूवेण वा
मुग्गमाससूवेण वा, अवसेसं सूवविहिं पच्चक्खामि ३'।

तयाणंतरं च णं घयविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ सारइएणं गोघयमण्डेणं,
अवसेसं घयविहिं पच्चक्खामि ३'।

तयाणंतरं च णं सागविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ वत्थुसाएण वा तुंबसाएण
वा सुत्थियसाएण वा मंडुक्कियसाएण वा अवसेसं सागविहिं पच्चक्खामि ३'।

तयाणंतरं च णं माहुरयविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ एगेणं पालंगामाहुरएणं
अवसेसं माहुरयविहिं पच्चक्खामि ३'।

तयाणंतरं च णं जेमणविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ सेहंबदालियंबेहिं, अवसेसं जेमणविहिं पच्चक्खामि ३' ।

तयाणंतरं च णं पाणियविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ एणेणं अंतलिक्खोदएणं, अवसेसं पाणियविहिं पच्चक्खामि ३' ।

तयाणंतरं च णं मुहवासविहिपरिमाणं करेइ, 'णणत्थ पंचसोगन्धिएणं तम्बोलेणं अवसेसं मुहवासविहिं पच्चक्खामि ३' ६ ।

कठिन शब्दार्थ - भोयणविहि - भोजन विधि - खाने पीने की वस्तुएं, पेज्जविहि - पेयविधि, कट्टपेज्जाए - चावल की मांड, उबले हुए मूंगों का रस, भक्खणविहि - भक्षण विधि, घयपुण्णेहिं - खूब घी पचाए हुए, खंडखज्जएहिं - खाण्ड के खाजे, ओदणविहि - ओदन विधि, कलमसालिओदणेणं - कलम शालि - चावल विशेष उस समय के सब से ऊंची जाति के चावल, सूवविहि - सूप विधि - दालों की मर्यादा, कलायसूवेण - चने की दाल, मुग्गमाससूवेण - मूंग, उड़द की दाल, घयविहि - घृत विधि, सारइणं गोघयमंडेणं - शारदीय गोघृत सार, सागविहिपरिमाणं - शाक विधि-हरी सब्जियों की मर्यादा, वत्थुसाएण-बथुआ, सुत्थियसाएण - सौवस्तिक (चंदलौई) मंडुक्कियसाएण - मंडुकी (साग विशेष)-अप्रसिद्ध सब्जी, माहुरयविहि - माधुरकविधि-रसाल फल, पालंगामाहुरएणं - पालंका माधुरक-अप्रसिद्ध फल विशेष, जेमणविहि - व्यंजन विधि, सेहंबदालियंबेहि - कांजी के बड़े, खटाई युक्त दाल के बड़े (दही बड़े), पाणियविहि - पानी-विधि - पीने के पानी की मर्यादा, अंतलिक्खोदएण - अंतरिक्षोदक - आकाश से बरसा, टांकों में भरा गया पानी, मुहवासविहि-मुखवासविधि - भोजन के बाद रसना एवं घ्राणेन्द्रिय को तृप्त करने वाले स्वादिम, पंचसोगंधिएणं तंबोलेणं - पांच सुगंधि पदार्थों (ईलायची, लवंग, कपूर, कंकोल और जायफल) से युक्त ताम्बूल।

भावार्थ - इसके बाद आनंदजी भोजन-विधि का परिमाण करते हुए -

(अ) पेय-विधि का परिमाण करते हैं - मैं उबाले हुए मूंग का जूस (पानी) और घी में तले चावलों के पेय के अतिरिक्त शेष पेय-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(आ) भक्षण-विधि का परिमाण करते हैं - मैं घेवर व मीठे खाजों के अतिरिक्त शेष (मिष्ठान्न) भक्षण-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(इ) ओदण-विधि का परिणाम करते हैं - मैं कलमशालि (चावल विशेष) के अतिरिक्त शेष ओदण-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ई) सूप-विधि का परिमाण करते हैं - मैं चने, मूंग और उड़द की दाल के सिवाय शेष सूप-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(उ) घृत-विधि का परिमाण करते हैं - 'शारदीय गो-घृतसार' के अतिरिक्त शेष घृत विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ऊ) साग-विधि का परिमाण करते हैं - बथुआ, सौवस्तिक (चंदलाई) और मंडुकी (साग-विशेष) के अतिरिक्त शेष साग-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ए) माधुरक-विधि का परिमाण करते हैं - मैं 'पालंका' के अतिरिक्त शेष माधुरक-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ऐ) जीमण-विधि का परिमाण करते हैं - घोलबड़े व दाल के बड़ों के अतिरिक्त शेष जीमण विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ओ) पानी का परिमाण करते हैं - 'आकाश से गिरे पानी' के अतिरिक्त शेष पानी का त्याग करता हूँ।

(औ) मुखवास-विधि का परिमाण करते हैं - मैं (इलायची, लोंग, कपूर, कंकोल और जायफल) पांचों सौगंधिक तंबोल के अतिरिक्त शेष मुखवास-विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

विवेचन - भोजन-विधि के परिमाण में उपर्युक्त दस बोलों की मर्यादा करते हैं। 'सारङ्ग' के दो अर्थ मिले हैं - १. शरद ऋतु में निष्पन्न २. प्रातः उषाकाल में बनाया हुआ। 'गोघयमंडेणं' का अर्थ है स्वस्थ उत्तम नस्ल की गायों के दही से शुद्धतापूर्वक बनाया हुआ घी। 'पालंका' के लिए इतनी ही जानकारी मिलती है कि यह महाराष्ट्र देश का प्रसिद्ध मीठा फल है। आकाश से बरसे पानी को संभवतः बड़े-बड़े टाँकों में जेल लिया जाता था। जमीन पर नहीं पड़ने के कारण उसे 'अंतरिक्षोदक' कहा गया है।

द. अनर्थदण्ड विरमण

तयाणंतरं च णं चउव्विहं अणट्ठादण्डं पच्चक्खाइ, तंजहा - अवज्झाणायरियं पमायायरियं हिंसप्पयाणं पावकम्मोवएसे ३, ७॥ ५॥

कठिन शब्दार्थ - चउव्विहं - चार प्रकार के, अणट्ठादण्डं - अर्थ=कारण, प्रयोजन

अनर्थ=निष्प्रयोजन बिना कारण व्यर्थ ही फालतू में दण्ड-सजा, पीड़ा, कष्ट। बिना प्रयोजन के आत्मा को दण्डित करने के सभी कार्य अनर्थदण्ड हैं। तंजहा - वे इस प्रकार हैं - अवज्जाणायरियं - अपध्यानाचरण, पमायायरियं - प्रमादाचरण, हिंसप्पयाणं - हिंस्रप्रदान, पावकम्मोवएसे - पाप कर्मोपदेश।

भावार्थ - तदन्तर आठवें व्रत में आनंद श्रमणोपासक चार प्रकार के अनर्थदण्ड का प्रत्याख्यान करते हैं -

१. अपध्यानाचरण - आर्त्त-रौद्र आदि बुरे ध्यान का आचरण नहीं करूँगा।
२. प्रमादाचरण - प्रमाद का सेवन नहीं करूँगा।
३. हिंस्रप्रदान - हिंसा में प्रयुक्त होने वाले उपकरण प्रदान नहीं करूँगा।
४. पापकर्मोपदेश - पाप कर्म का उपदेश नहीं दूँगा।

विवेचन - शिक्षा-व्रतों के लिए श्रावक का यह मनोरथ रहता है कि 'ऐसी मेरी श्रद्धा प्ररूपणा तो है, फरसना करूँ तब शुद्ध होऊँ।' सामायिक कभी कम बने, ज्यादा बने, नहीं बने, चौदह नियम आदि कभी चितारे, कभी याद नहीं रहे, दया-पौषध का अवसर कभी हो, कभी न हो तथा अतिथि-संविभाग व्रत की स्पर्शना भी साधु-साध्वी का योग मिलने पर संभव है। अतः संभवतः आनन्दजी के चारों शिक्षा-व्रतों का उल्लेख यहाँ नहीं हो पाया हो। वैसे तो उन्होंने अमुक प्रकार से शिक्षाव्रत भी ग्रहण किए ही होंगे, तभी उन्हें 'बारह व्रतधारी' कहा गया है।

आनन्दजी की व्रत-प्रतिज्ञाओं के बाद भगवान् उन्हें व्रतों के अतिचार बदलाते हैं।

व्रतों के अतिचार

(२१)

सम्यक्त्व के अतिचार

इह खलु 'आणंदाइं' समणे भगवं महावीरे आणंदं समणोवासगं एवं वयासी-
 "एवं खलु आणंदा! समणोवासणं अभिगयजीवाजीवेणं जाव अणइक्कमणिज्जेणं
 सम्मत्तस्स पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - संका,
 कंखा, विइगिच्छा, परपासंडपसंसा, परपासंडसंथवो।

कठिन शब्दार्थ - अभिगयजीवाजीवेणं - जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता, अणइक्कमणिज्जेणं - अनतिक्रमणीय-विचलित नहीं किया जा सके, सम्मत्तस्स - सम्यक्त्व के, पंच - पांच, अइयारा - अतिचार, पेयाला - प्रधान, जाणियव्वा - जानने योग्य, ण समायरियव्वा - आचरण करने योग्य नहीं, संका - शंका, कंखा - कांक्षा, विइगिच्छा - वितिगिच्छा-विचिकित्सा, परपासंडपसंसा - पर पाषण्ड प्रशंसा, परपासंडसंथवो - पर पाषण्ड संस्तव।

भावार्थ - आनन्द श्रमणोपासक को सम्बोधित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया - 'हे आनन्द! जीव-अजीव आदि नव तत्त्व के ज्ञाता एवं देव-दानवादि से भी समकित-च्युत नहीं किए जा सकने योग्य श्रमणोपासक को सम्यक्त्व के प्रधान पांच अतिचार जानने योग्य तो हैं, परन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं। यथा - १. शंका २. कांक्षा ३. विचिकित्सा ४. परपाषंड प्रशंसा ५. परपाषंड संस्तव।'

विवेचन - अतिचार - अभिधान राजेन्द्र कोश भाग १ पृ० ८ पर अतिचार शब्द के कुछ अर्थ इस प्रकार दिये हैं - ग्रहण किए हुए व्रत का अतिक्रमण, उल्लंघन, चारित्र में खलना, व्रत में देश-भंग के हेतु आत्मा के अशुभ परिणाम विशेष।

सम्यक्त्व के पांच अतिचार इस प्रकार हैं -

१. शंका - जिनेन्द्र-प्ररूपित निर्ग्रन्थ-प्रवचन के विषय में संशय-वृत्ति रखना - 'यह ऐसा है या वैसा है' आदि।

२. कंखा - कांक्षा - मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से अन्य दर्शनों को ग्रहण करने की इच्छा - 'कंखा अन्नान्नदंसणगहो।'

३. विइगिच्छा - विचिकित्सा - धर्मकृत्यों के फल में संदेह करना। साधु के मलीन वस्त्रादि उपधि देख कर घृणा करना।

४. परपासंडपसंसा - यहाँ 'पासंड शब्द का अर्थ 'व्रत' से है। सर्वज्ञ प्रणीत अर्हत् दर्शन से बाहर रहे परदर्शनियों की स्तुति, गुण-कीर्तन आदि करना।'

५. परपासंडसंथव - परपाषण्डियों के साथ आलाप-संलाप, शयन, आसन, भोजन आदि परिचय करना परपाषंडसंस्तव कहलाता है।

अहिंसा व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं थूलगस्स पाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणवोच्छेए १।

कठिन शब्दार्थ - बंधे - बन्ध, वहे - वध, छविच्छेए - छविच्छेद, अइभारे - अतिभार, भत्तपाणवोच्छेए - भक्तपान व्यवच्छेद।

भावार्थ - तदन्तर (प्रथम अणुव्रत) स्थूल प्राणातिपातविरमण के पांच प्रधान अतिचार श्रावक को जानने योग्य हैं, किन्तु समाचरण योग्य नहीं। वे ये हैं - १. बंध २. वध ३. छविच्छेद ४. अतिभार और ५. भक्त-पान विच्छेद।

विवेचन - १. बंध - मनुष्य, पशु आदि को सांस लेने में, रक्त संचालन में, अवयव संकोच-विस्तार में, या आहार-पानी करने में बाधा पड़े, इस प्रकार के गाढ़े रस्सी आदि के बंधन से बांधना। तोता-मैना को पिंजरे में बंद करना, बंदी बनाना आदि इस अतिचार के अन्तर्गत है।

२. वध - अंग भग करना, मर्मान्तक प्रहार करना, हड्डी आदि तोड़ देना, ऐसी चोट जो तत्काल या कालान्तर में मृत्यु अथवा भयंकर दुःख का कारण बने।

३. छविच्छेद - शरीर की चमड़ी, नाक, कान, हाथ, पाँव आदि काटना, नासिका छेदन कर 'नाथ डालना' सींग-पूँछ आदि काटना, कान चीरना, बधिया करना आदि।

४. अतिभारोपण - पशु, ताँगा, छकड़ा, गाड़ी, हमाल, ठेला, हाथ-रिक्शा आदि पर उनकी सामर्थ्य से अधिक भार वहन करवाना 'अतिभार' है।

५. भक्त-पान विच्छेद - पशु अथवा मनुष्य आदि को अपराध वश अथवा अन्य कारणों से भोजन पानी समय पर न देना अथवा बिल्कुल बंद कर देना, भोजन करते हुए को काम में लगा कर अंतराय देना आदि 'भक्त-पान विच्छेद' है।

सत्य व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं थूलगस्स मुसावायवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - सहसाब्भक्खाणे, रहसाब्भक्खाणे, सदारमंतभेए, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे २।

कठिन शब्दार्थ - सहसाब्भक्खाणे - सहसा-अभ्याख्यान, रहसाब्भक्खाणे - रहस्य अभ्याख्यान, सदारमंतभेए - स्वदार-मंत्र-भेद, मोसोवएसे - मृषोपदेश, कूडलेहकरणे - कूटलेखकरण।

भावार्थ - तदनन्तर श्रावक के दूसरे व्रत 'स्थूल-मृषावाद-विरमण' के पांच अतिचार श्रावक को जानने योग्य हैं, परन्तु आचरण करने योग्य नहीं हैं। यथा - १. सहसाभ्याख्यान २. रहस्याभ्याख्यान ३. स्वदार-मंत्र-भेद ४. मृषोपदेश और ५. कूट-लेख करण।

विवेचन - सत्य-व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं -

१. सहसाभ्याख्यान - बिना विचारे किसी पर झूठा कलंक लगाना।

२. रहसाभ्याख्यान - एकान्त में बातचीत करने वाले को दोष देना अथवा किसी की गुप्त बात प्रकट करना।

३. स्वदार-मंत्र-भेद - अपनी स्त्री की (अथवा किसी विश्वस्त जन द्वारा कही गई) गुप्त बात प्रकट करना।

४. मृषोपदेश - प्रहार, रोग-निवारण आदि में सहायक मंत्र, औषधि, विष आदि के प्रयोग का उपदेश जीव-विराधना का कारण होने से इस प्रकार के वचन प्रयोग को 'मृषोपदेश' कहते हैं। यदि कोई यह सोचे कि 'मैं झूठ तो बोला ही नहीं' किन्तु ब्रह्म हिंसाकारी सलाह है। इसके परिहार के लिए मिथ्योपदेश को ज्ञानियों ने झूठ माना है। यह साक्षात् (परलोक पुनर्जन्म आदि विषयों में) मिथ्या उपदेश का विषय नहीं है, यदि वैसा होता तो अनाचार समझा जाता।

५. कूट-लेख करण - 'मेरे तो झूठ बोलने का त्याग है, लिखने का नहीं, ऐसा समझ कर कोई (असद्भूत-झूठा) लेखन करे, जाली-हस्ताक्षर करना, जाली दस्तावेज तैयार करना आदि तब तक अतिचार है, जब तक प्रमाद या अविवेक हो, विचार पूर्वक जानते हुए लिखना तो अनाचार है।

अस्तेय व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं थूलगस्स अदिण्णादाणवेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - तेणाहडे, तक्करप्पओगे, विरुद्धरज्जाइक्कमे, कूडतुलकूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे ३।

कठिन शब्दार्थ- तेणाहडे - स्तेनाहृत, तक्करप्पओगे - तस्कर प्रयोग, विरुद्धरज्जाइक्कमे-

विरुद्ध राज्यातिक्रम, कुडतुल्लकूडमाणे - कूटतुला कूटमान, तप्पडिरूवगववहारे - तत्प्रतिरूपक व्यवहार।

भावार्थ - तदनन्तर श्रावक के तीसरे व्रत - स्थूल अदत्तादान विरमण के पांच अतिचार जानने योग्य हैं, आचरने योग्य नहीं हैं यथा - स्तेनाहत, तस्करप्रयोग, विरुद्धराज्यातिक्रम, कूटतुलाकूटमान, तत्प्रतिरूपक व्यवहार।

विवेचन - अस्तेय व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं -

१. स्तेनाहत - चोर द्वारा अपहृत वस्तु लेना।
२. तस्करप्रयोग - चोरी करने का परामर्श देना।
३. विरुद्ध राज्यातिक्रम - राज्याज्ञा के विरुद्ध सीमा उल्लंघन, त्रिषिद्ध वस्तुओं का व्यापार, चुंगी आदि कर का उल्लंघन।
४. कूटतुलाकूटमान - खोटे तोल-माप रखना, कम देना, ज्यादा लेना आदि।
५. तत्प्रतिरूपक व्यवहार - अच्छी वस्तु के समान दिखने वाली बुरी वस्तु देना, सौदे या नमूने में बताए अनुसार माल नहीं देना, मिलावट करना आदि।

ये पांचों कृत्य लोभवश किए जाने पर 'अनाचार' की परिधि में चले जाते हैं। बिना लोभ के किसी की आज्ञा के अधीन होकर, उदासीन भाव से या वैसे अन्य कारणों से ही अतिचार रहते हैं।

ब्रह्मचर्य व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं सदारसंतोसिए पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अणंगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे ४।

कठिन शब्दार्थ - इत्तरियपरिग्गहियागमणे - इत्वरिक परिगृहीतागमन, अपरिग्गहियागमणे-अपरिगृहीतागमन, अणंगकीडा - अनंगक्रीडा, परविवाहकरणे - परविवाह करण, कामभोगतिव्वाभिलासे - कामभोगतीव्राभिलाष।

भावार्थ - तदनन्तर श्रावक के चौथे व्रत 'स्वदार-संतोष' के पांच अतिचार जानने योग्य हैं, सेवन करने योग्य नहीं हैं - १. इत्वरिका परिगृहीतागमन २. अपरिगृहीतागमन ३. अनंगक्रीडा ४. परविवाहकरण ५. कामभोग-तीव्राभिलाष।

विवेचन - चौथे ब्रह्मचर्य व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं -

१. इत्वरिका परिगृहीतागमन - विवाह हो जाने के बाद भी उग्र, शारीरिक विकास आदि नहीं होने के कारण, मासिक-धर्म में नहीं आने आदि अनेक कारणों से जो भोग-अवस्था को अप्राप्त है, ऐसी स्वस्त्री से गमन करना 'इत्वरिका परिगृहीतागमन' है।

२. अपरिगृहीतागमन - जिसके साथ सगाई तो हुई है, परन्तु विवाह नहीं होने से जो अब तक अपरिगृहीता है, ऐसी स्ववाग्दत्ता कन्या से गमन करना अपरिगृहीतागमन है।

३. अनंगक्रीड़ा - कामभोग के अंग योनि और मेहन है। इनके अतिरिक्त अन्य अंग काम के अंग नहीं माने गए हैं, उनसे क्रीड़ा करना 'अनंगक्रीड़ा' है।

४. परविवाहकरण - जिनकी सगाई, विवाह अपने जिम्मे नहीं हो, उनकी सगाई करने की प्रेरणा करना, सहयोग देना, विवाह करवाना आदि को परविवाहकरण में गिना गया है।

५. कामभोग तीव्राभिलाष - गौण रूप से पांचों इंद्रियविषयों और मुख्य रूप से मैथुन में अत्यंत गृद्धि - मूर्च्छा भाव रख कर उन्हीं अध्यवसायों से युक्त रह कर व्रत की उपेक्षा करना, भोग-साधनों को बढ़ाना, 'कामभोग तीव्राभिलाष' है।

'वेद जनित बाधा' को शान्त करने की भावना के अतिरिक्त शेष सभी कार्यों के लिए यह अतिचार है। यथा - बाजीकरण करना, कामवर्द्धक पौष्टिक भस्में, रसायनों, औषधियाँ आदि लेना, वासनावर्द्धक पठन, कामवर्द्धक चित्रादि अवलोकन, अन्योन्य आसन, सौन्दर्य प्रसाधक सामग्री का प्रयोग आदि।

अपरिग्रह व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं इच्छापरिमाणस्स समणोवासणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे, हिरण्णसुवण्णपमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे, धणधण्णपमाणाइक्कमे, कुवियपमाणाइक्कमे ५।

कठिन शब्दार्थ - खेत्तवत्थुपमाणाइक्कमे - क्षेत्र वास्तु-प्रमाणातिक्रम, हिरण्णसुवण्ण-पमाणाइक्कमे - हिरण्यसुवर्ण प्रमाणातिक्रम, दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे - द्विपद-चतुष्पद प्रमाणातिक्रम, धणधण्णपमाणाइक्कमे - धन-धान्य प्रमाणातिक्रम, कुवियपमाणाइक्कमे - कुप्य प्रमाणातिक्रम।

भावार्थ - तदनन्तर श्रमणोपासक को इच्छा परिमाण व्रत के पांच अतिचारों को जानना

चाहिये किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिये। वे इस प्रकार हैं - १. क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम- क्षेत्र वास्तु की मर्यादा का अतिक्रमण २. हिरण्य सुवर्ण प्रमाणातिक्रम - चांदी सोने की मर्यादा का अतिक्रमण ३. द्विपद-चतुष्पद प्रमाणातिक्रम - द्विपद - चतुष्पद की मर्यादा का अतिक्रमण ४. धन-धान्य प्रमाणातिक्रम - धन-धान्य की मर्यादा का अतिक्रमण ५. कुप्य प्रमाणातिक्रम - कुप्य की मर्यादा का अतिक्रमण।

विवेचन - इच्छा परिमाण व्रत के जो पांच अतिचार बतलाए गए हैं उनका सेवन न करना व्यक्ति की इच्छाओं के सीमाकरण की विशेष प्रेरणा देता है। ये पांच अतिचार हैं -

१. क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम - क्षेत्र अर्थात् खुली जमीन और वास्तु अर्थात् ढंकी जमीन। जो क्षेत्रवास्तु की मर्यादा की है उस का अतिक्रमण करना इस व्रत का प्रथम अतिचार है।

२. हिरण्य-सुवर्ण प्राणातिक्रम - हिरण्य-चांदी और सुवर्ण-सोना की मर्यादा का अतिक्रमण।

३. द्विपद-चतुष्पद प्रमाणातिक्रम - द्विपद - दो पैर वाले मनुष्य दास दासी तथा चतुष्पद - चार पैर वाले पशु-गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि की जो मर्यादा की है उसका लंघन करना। उन दिनों दास प्रथा का प्रचलन था इसलिए गाय बैल आदि पशुओं की तरह दास, दासी भी स्वामी की सम्पत्ति होते थे।

४. धन धान्य प्रमाणातिक्रम - धन - राजकीय मुद्रा जो विनिमय के लिए अधिकृत हो और धान्य - गेहूँ, चावल, जौ आदि की जो मर्यादा की है उसका उल्लंघन करना।

५. कुप्य प्रमाणातिक्रम - कुप्य का तात्पर्य है घर बिखरी का सामान, सोना चांदी के अलावा शेष धातुएं, फर्नीचर, पलंग, बिस्तर, मोटर, स्कूटर आदि की सीमा का उल्लंघन, इस व्रत का अतिचार है।

जानबूझ कर इन मर्यादाओं का अतिक्रमण करना अनाचार की श्रेणी में आता है।

दिशा व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं दिसिवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - उह्ददिसिपमाणाइक्कमे, अहोदिसिपमाणाइक्कमे, तिरियदिसि-पमाणाइक्कमे, खेत्तवुड्ढी, सइअंतरद्धा ६।

कठिन शब्दार्थ - उह्ददिसिपमाणाइक्कमे - ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रम, अहोदिसिपमा-

गाइक्कमे - अधोदिक् प्रमाणातिक्रम, तिरियदिसिपमाणाइक्कमे - तिर्यक् दिक् प्रमाणातिक्रम, खेतवुट्टी - क्षेत्रवृद्धि, सइअंतरद्धा - स्मृत्यन्तर्धान।

भावार्थ - तदनन्तर दिशाव्रत के पांच अतिचारों को जानना चाहिए किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिए, वे इस प्रकार हैं - १. ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रम २. अधोदिक् प्रमाणातिक्रम ३. तिर्यक् दिक् प्रमाणातिक्रम ४. क्षेत्र वृद्धि ५. स्मृत्यन्तर्धान।

विवेचन - छोटे व्रत के पांच अतिचारों का स्वरूप इस प्रकार है -

१. ऊर्ध्वदिक् प्रमाणातिक्रम - ऊर्ध्व (ऊंची) दिशा में जाने की मर्यादा का अतिक्रमण। ऊपरी मंजिल, पहाड़ आदि पर चढ़ना अथवा वायुयान आदि में सफर ऊँची दिशा में जाना माना जाता है।

२. अधोदिक् प्रमाणातिक्रम - अधो यानी नीची दिशा के मर्यादित क्षेत्र का अतिक्रमण। समभूमि से नीचे की मंजिल, कुआँ, खान, खदान आदि में जाना नीची दिशा में जाना माना गया है।

३. तिर्यक्दिक् प्रमाणातिक्रम - तिरछी दिशा - पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, अग्नि, वायव्य, नैऋत्य आदि चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं में जाने की मर्यादा का अतिक्रमण।

४. क्षेत्रवृद्धि - मर्यादित क्षेत्र को बढ़ाना। जितना क्षेत्र रखा, उससे आगे नहीं जाना व्रत है।

५. स्मृत्यन्तर्धान - किए हुए भूमि परिमाण की विस्मृति से आगे जाना - यह अतिचार है।

उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं उवभोगपरिभोगे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा - भोयणओ य कम्मओ य। तत्थ णं भोयणओ समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - सचित्ताहारे, सचित्तपडिबद्धाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पउलिओसहिभक्खणया, तुच्छोसहिभक्खणया। कम्मओ णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं ण समायरियव्वाइं, तंजहा - इंगालकम्मे, वण्णकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, णिल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया, सरदहतलावसोसणया, असईजणपोसणया ७।

कठिन शब्दार्थ - भोयणाओ - भोजन की अपेक्षा से, कम्मओ - कर्म की अपेक्षा से, सचित्ताहारे - सचित्त आहार, सचित्तपडिबद्धाहारे - सचित्त प्रतिबद्ध आहार, अप्पउलिओसहिभक्खणया - अपक्वओषधि भक्षणता, दुप्पउलिओसहि भक्खणया - दुष्पक्व औषधि भक्षणता, तुच्छोसहिभक्खणया - तुच्छ औषधि भक्षणता, पण्णरस कम्मादाणाइं - पन्द्रह कर्मादान, इंगालकम्मे - अंगार कर्म, वणकम्मे - वन कर्म, साडीकम्मे - शकट कर्म, भाडीकम्मे - भाटी कर्म, फोडीकम्मे - स्फोटन कर्म, दंतवाणिज्जे - दन्त वाणिज्य, लक्खवाणिज्जे - लाक्षा वाणिज्य, रसवाणिज्जे - रस वाणिज्य, विसवाणिज्जे - विष वाणिज्य, केसवाणिज्जे - केश वाणिज्य, विसवाणिज्जे - विष वाणिज्य, केसवाणिज्जे - केश वाणिज्य, जंतपीलणकम्मे - यंत्रपीडन कर्म, निल्लंछणकम्मे - निर्लाछन कर्म, दवग्गिदावणया - दवग्नि दापनता, सरदहत्तलायसोसणया - सर-हृद-तडाग शोषणता, असईजण पोसणया - असतीजन पोषणता।

भावार्थ - तदनन्तर उपभोग परिभोग दो प्रकार का कहा गया है। यथा - भोजन की अपेक्षा से तथा कर्म की अपेक्षा से। भोजन की अपेक्षा से श्रमणोपासक को पांच अतिचारों को जानना चाहिए उनका आचरण नहीं करना चाहिये। वे इस प्रकार हैं - १. सचित्त आहार २. सचित्त प्रतिबद्ध आहार ३. अपक्व औषधि भक्षणता ४. दुष्पक्व औषधि भक्षणता ५. तुच्छ औषधि भक्षणता।

कर्म की अपेक्षा से श्रमणोपासक को पन्द्रह कर्मादानों को जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं - १. अंगार कर्म २. वन कर्म ३. शकट कर्म ४. भाटी कर्म ५. स्फोटन कर्म ६. दन्त वाणिज्य ७. लाक्षावाणिज्य ८. रस वाणिज्य ९. विष वाणिज्य १०. केश वाणिज्य ११. यंत्रपीडन कर्म १२. निर्लाछन कर्म १३. दवाग्निदापनता १४. सरहृदतडाग शोषणता और १५. असती-जन-पोषणता।

विवेचन - उपभोग परिभोग परिमाण व्रत के भोजन विषयक पांच अतिचार और कर्म विषयक पन्द्रह अतिचार कहे गये हैं - इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

भोजन विषयक पांच अतिचार

१. सचित्त वस्तु का आहार - जिसने सचित्त का त्याग कर दिया है, वह अनाभोग से सचित्त का आहार कर ले अथवा जिसने मर्यादा की है, उसके उपरांत सचित्ताहार करे तो यह अतिचार लगता है।

२. सचित्त प्रतिबद्धाहार - सचित्त से जुड़े हुए, संघट्टित आहार का प्रयोग।
३. अपक्वौषधि-भक्षणता - अग्नि आदि द्वारा नहीं पकाई गई, अशस्त्रपरिणत, तत्काल पीसी, मर्दन की गई चटनी आदि का भोजन।
४. दुष्पक्वौषधि-भक्षणता - अधकच्चे भुट्टे, सीट्टे आदि खाना।
५. तुच्छौषधि-भक्षणता - फेंकने योग्य अंश अधिक और खाने योग्य कम हो, ऐसे तुच्छ आहार का सेवन। यथा - ईख, सीताफल आदि।

इन अतिचारों की कल्पना के पीछे यही भावना है कि श्रमणोपासक भोजन के विषय में जागरूक रहे, रस लोलुपता से सदैव दूर रहे। रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना अत्यंत कठिन है अतः साधक को अत्यंत सावधान रहना चाहिये।

कर्म विषयक पन्द्रह अतिचार

कर्मादान - कर्म+आदान, कर्म और आदान, इन दो शब्दों से 'कर्मादान' बना है। आदान का अर्थ है - ग्रहण करना। जिन प्रवृत्तियों के कारण ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का प्रबल बन्ध होता है। जिनमें बहुत हिंसा होती है उन्हें 'कर्मादान' कहते हैं। अतः श्रावक के लिए ये वर्जित हैं। ये कर्म संबंधी अतिचार हैं। श्रावक को इनके त्याग की स्थान-स्थान पर प्रेरणा दी गई है। श्रावक इन पन्द्रह कर्मादानों का सेवन न करे, न करवावे और करने वालों का अनुमोदन भी न करे। कर्मादानों का विवेचन इस प्रकार है -

१. अंगार-कर्म - कोयले बनाना, कुंभकार का धंधा, चूने के भट्टे, सीमेन्ट कारखाने, सुनार, लुहार, भडभूँजे, हलवाई, रंगरेज, धोबी आदि सभी के वे धंधे जिनमें अग्नि के आरम्भ की प्रधानता रहा करती है।

२. वन-कर्म - वनस्पति के दस भेद हैं - मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, प्रवाल (कोमल पत्ते रूप) पत्र, पुष्प, फल एवं बीज। इन सबके लिए जो आरम्भ होता है, उस वन विषयक कर्म को 'वन-कर्म' कहा जाता है। यथा - जड़ के लिए धतूरे आदि की खेती, चाय, कॉफी, मेंहदी, फलों के बाग, फूलों के बगीचे, रज के, सरसों, धान आदि की खेती। हरे वृक्ष कटवाना, सुखाना, बेचना या ठेके पर लेना यह सब वन-कर्म हैं। यानी कृषि का वनस्पतिजन्य एवं उपलक्षण से अन्य छह काय का आरम्भ वन-कर्म है।

अभिधान राजेन्द्र कोष भाग ६ पृ० ८०२ पर लिखा है कि -

‘वनविषयं कर्म वनकर्म। वनच्छेदनविक्रयरूपे। यच्छिन्नमच्छिन्नानाम् च तरूखण्डानां पत्राणां पुष्पाणां फलानां च विक्रयणं वृत्तिकृतेन। छिन्नाच्छिन्न पत्रपुष्पफल-कंदमूलतृणकाष्ठकं वा वंशादिविक्रयः।’

३. शकट-कर्म - सवारी या माल ढोने के सभी तरह के वाहन व उसके पुर्जे बनाने का कार्य ‘शकट कर्म’ है। यथा - रेल, मोटर, स्कूटर, साइकिल, ट्रक, ट्रेक्टर आदि बनाने के कारखाने। लुहार, सुनार आदि द्वारा गाड़ियाँ बनाना आदि।

४. भाटी-कर्म - बैल, घोड़े, ऊँच, मोटर आदि को भाड़े पर चलाना भाटी-कर्म है।

५. स्फोटक-कर्म - पृथ्वी, वनस्पति आदि फोड़ना फोड़ी-कर्म है। यथा - खान, कुआँ, बावड़ी, तालाब आदि खोदना, पत्थर निकालना, खेती के लिए जमीन की जुताई, धान का आटा या मूँग, उड़द, चने आदि की दाल बनाना, शालि से भूसा उतार कर चावल बनाना आदि कार्यों को मुख्य रूप से फोड़ी-कर्म में गिना गया है। यहाँ गंभीरता से समझने की बात यह है कि खेती की पूर्ववर्ती क्रियाएँ पृथ्वी पर हल योजना आदि तथा पश्चाद्वर्ती क्रियाएँ गेहूँ आदि का आटा या मूँग आदि की दाल बना कर देना या बेच कर आजीविका चलाना स्फोटक कर्म के अन्तर्गत हैं। जुताई के बाद निष्पत्ति की मध्यवर्ती क्रियाएँ वन-कर्म में मानी गई है। अतः खेती केवल स्फोटक कर्म ही नहीं, वन-कर्म भी है। यह बात पूर्वाचार्यों ने स्पष्ट बतलाई है।

६. दंत-वाणिज्य - मुख्य अर्थ में हाथी-दाँत का व्यापार, उपलक्षण से ऊँट, बकरी, भेड़ आदि की जट-ऊन, गाय-भैंसादि का चमड़ा, हड्डियाँ, नाखून आदि त्रस जीवों के अवयव का व्यापार ‘दंत-वाणिज्य’ में गिना गया है।

७. लाक्षा-वाणिज्य - लाख का व्यापार मुख्य अर्थ में लिया गया है। मेनशील, धातकी, नील, साबुन, सज्जी, सोड़ा, नमक, रंग आदि का व्यापार भी ‘अभिधान राजेन्द्र कोष’ भाग ६, पृ० ५९६-९७ पर लाक्षा-वाणिज्य में लिए गए हैं।

८. रस-वाणिज्य - ‘अभिधान राजेन्द्र’ भाग ६, पृ० ४९३ ‘मधुमद्यमांसभक्षणवसा-मज्जादुग्धदधिघृततेलादिविक्रये। शहद, शराब, मांस, चर्बी, मक्खन, दूध, दही, घी, तेल आदि का व्यापार करना रस-वाणिज्य में गिना गया है। कोई-कोई गुड़, शक्कर के व्यापार को भी इसमें मानते हैं।

९. विष-वाणिज्य - सोमल आदि भांति-भांति के जहर, बंदूक, कटार आदि अस्त्र-

शस्त्र, हरताल, प्राणनाशक इंजेक्शन, गोलियाँ, चूहे मारने की गोलियाँ, खेत में दिये जाने वाले रासायनिक खाद, पाउडर, छिड़कने की डी. डी. टी. आदि पाउडर तथा वे समस्त वस्तुएँ जिनसे प्राणान्त संभव है, पटाखे, बारूद आदि भी बेचना विष-वाणिज्य में गिना गया है। साथ ही कुदाली, हल, फावड़े, गेतियाँ, तगारियां, सेंबल, चूलिए आदि का व्यापार भी विष-वाणिज्य में गिना है। (अभि० भाग ६, पृ० १२५८)

१०. केश-वाणिज्य - दास-दासी का क्रय-विक्रय एवं गाय, भैंस, बकरी, भेड़, ऊँट, घोड़े आदि को खरीदने बेचने का धंधा केश-वाणिज्य में लिया गया है। (अभि० भाग ३, पृ० ६६८)

११. यंत्रपीलन-कर्म - मूँगफली, अरण्डी, तिल, सरसों, राई आदि का तेल निकालने की घाणियाँ, घाणे, गन्ने पेरने की घाणी, कुएँ से पानी निकालने के यंत्र आदि इसमें गिने जाते हैं। वैसे तो यंत्र (मशीन) द्वारा जीवों का जितना पीलन होता है, वे सभी छोटी-बड़ी मिलें, फैक्ट्रियाँ, आरा-मशीन, कारखानें सभी इस यंत्रपीलन-कर्म के ही भेद हैं।

१२. निर्लाञ्छन-कर्म - बकरी, भेड़ आदि के कान चीरना, घोड़े, बैल आदि को नपुंसक बनाना, नाक में नाथ डालना, ऊँट के नकेल डालना आदि कार्य। घोड़े के पाँव में खुड़ताल लगाना और डाम देना भी इसमें लिया जाता है।

१३. दवग्निदापनता - वन में सप्रयोजन या निष्प्रयोजन आग लगा कर जलाना। इससे त्रस और स्थावर प्राणियों का महासंहार होता है।

१४. सर-द्रह-तालाबशोषणता - चावल, चने आदि की खेती के लिए अथवा जलाशय को खाली करने के लिए तालाब, तलैया आदि का पानी बाहर निकाल देना, जिससे त्रस-स्थायर प्राणियों की घात होती है।

१५. असतिजनपोषणता - बाज, कुत्ते आदि पालना, सुरा-सुन्दरी वाले होटल चलना, गुण्डे पालना, फिल्मों अथवा सिनेमा-गृहों को आर्थिक-सहकार आदि, ये सभी कार्य जिनसे दुःशील एवं दुष्टों का पोषण हो।

अनर्थदण्ड विरमण के अतिचार

तथाणंतरं च णं अणट्टादण्डवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, उवभोग-परिभोगाइरित्ते ढ।

कठिन शब्दार्थ - कंदप्ये - कन्दर्प, कुक्कुड़ए - कौत्कुच्य, मोहरिए - मौखर्य, संजुत्ताहिगरणे - संयुक्ताधिकरण, उवभोगपरिभोगाडरित्ते - उपभोग परिभोगातिरेक।

भावार्थ - तदनन्तर श्रमणोपासक को अनर्थदण्ड विरमणव्रत के पांच अतिचारों को जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार है - १. कन्दर्प २. कौत्कुच्य ३. मौखर्य ४. संयुक्ताधिकरण और ५. उपभोग परिभोगातिरेक।

विवेचन - आठवें अनर्थदण्ड विरमण व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार समझने चाहिये -

१. कंदर्प - कामविकारवर्द्धक हास्यादि से ओतप्रोत वचन बोलना।

२. कौत्कुच्य - हाथ, आँख, मुँह आदि की ऐसी चेष्टाएं, जिनसे लोगों का मनोरंजन हो।

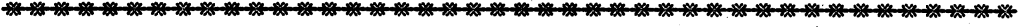
३. मौखर्य - अनर्गल, असंबद्ध, क्लेशवर्द्धक एवं बहुत बोलना आदि

४. संयुक्ताधिकरण - ऊखल, मूसल, हल, कुदाल, कुल्हाड़ी, फावड़े, गेंती आदि के भिन्न अवयवों को संयुक्त कर रखना (यदि ये वस्तुएं असंयुक्त और पृथक्-पृथक् रखी जायें, तो काम में नहीं आ सकतीं। अतः संयुक्त नहीं रखनी चाहिए, ताकि मना न करना पड़े)।

५. उपभोगपरिभोगातिरिक्त - बिना आवश्यकता के उपभोग-परिभोग की सामग्री का अतिरिक्त संचय।

अर्थ अर्थात् सकारण, सप्रयोजन। अत्यंत पारमार्थिक दृष्टि से तो प्रयोजन सिर्फ आत्म-कल्याण के लिए पाप त्याग ही है पर सांसारिक जीवों के लिए हिंसादि पापों को दो भागों में बांटा गया है - अपरिहार्य, आवश्यक, बिना किए नहीं चले, वे अर्थदण्ड हैं। परिहार्य, अनावश्यक, जिनके बिना भी काम चल सके, वे अनर्थ दण्ड है मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड - ये तीन दण्ड अर्थ व अनर्थ दोनों तरह से होते हैं। कान्दर्पिक वचन कहना 'वचन दण्ड' है। कौत्कुचिक अनर्थ 'कायदण्ड' है। मौखर्यता स्पष्टतः 'वचन दण्ड' है। संयुक्ताधिकरण और उपभोग परिभोग अतिरिक्त में तीनों अनर्थदण्डों के सम्मिलित होने का अनुमान है।

भगवान् ने सातवें उपभोग परिभोग में जो मर्यादा फरमाई वह विधि रूप है। यहाँ अतिरिक्त को अतिचार फरमाया है यह निषेध रूप है। मोक्ष मार्ग के अतिरिक्त पापों को प्रवर्ताने वाले सभी वचन मृषोपदेश में हैं। यहाँ के प्रथम व तृतीय अतिचारों में वचनों को फिर अमर्यादित फरमाया गया है। वस्तुतः सभी व्रत एक दूसरे से गूँथे हुए हैं। वे एक दूसरे को सहायता देने के लिए ही हैं।



सामायिक व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं सामाइयस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण
समायरियव्वा, तंजहा - मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे,
सामाइयस्स सइअकरणया, सामाइयस्स अणवट्टियस्स करणया ६।

कठिन शब्दार्थ - सामाइयस्स - समभाव की आय रूप सामायिक के, मणदुप्पणिहाणे-
मन दुष्प्रणिधान, वयदुप्पणिहाणे - वचन दुष्प्रणिधान, कायदुप्पणिहाणे - कायदुष्प्रणिधान,
सामाइयस्स सइ अकरणया - सामायिक स्मृति अकरणता, सामाइयस्स अणवट्टियस्स
करणया - सामायिक-अनवस्थित-करणता।

भावार्थ - तदनन्तर श्रावक को सामायिक व्रत के पांच अतिचारों को जानना चाहिये किन्तु
आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं - १. मन दुष्प्रणिधान २. वचन दुष्प्रणिधान
३. काय दुष्प्रणिधान ४. सामायिक स्मृति अकरणता और ५. सामायिक अनवस्थित करणता।

विवेचन - सामायिक का उद्देश्य जीवन में समभावों का विकास करना है। क्रोध, मान,
माया, लोभ जनित विषमता को मिटाना है। जहाँ सामायिक का यह उद्देश्य बाधित होता है वहाँ
सामायिक की द्रव्य साधना होती है। हमें भाव सामायिक की आराधना करने के लिए सामायिक
के इन अतिचारों से बचना होगा -

१. मनदुष्प्रणिधान - मनोयोग की दुष्प्रवृत्ति। मन के दस दोष लगाना।
२. वचनदुष्प्रणिधान - वचन योग की दुष्प्रवृत्ति। वचन के दस दोष लगाना।
३. कायदुष्प्रणिधान - काय योग की दुष्प्रवृत्ति। काया के बारह दोष लगाना।
४. सामायिक की स्मृति नहीं रखना - 'मैंने सामायिक कब ली थी' इस प्रकार
सामायिक के समय का ज्ञान नहीं रहना। सामायिक को भूल कर सावद्य-प्रवृत्तियाँ करने लंग जाना।
५. सामायिक का अनवस्थितकरण - अव्यवस्थित रीति से सामायिक करना और
सामायिक का काल-मान पूर्ण हुए बिना ही सामायिक पार लेना आदि।

सामायिक में मन का योग सावद्य चिंतन में जाने से मन दुष्प्रणिधान अतिचार लगता है।
हिंसा, असत्य, चौर्य एवं संरक्षण संबंधी विचार रौद्रध्यान के अन्तर्गत हैं तथा इन्द्रिय विषयों में
प्राप्ति का संरक्षण, अप्राप्ति की इच्छा आदि आर्तध्यान है। मन की गुप्ति, मन की समाधारणता,
एकाग्रमनसनिवेशन आदि के द्वारा मनदुष्प्रणिधान से बचा जा सकता है।

सामायिक में नहीं कहने योग्य वचन कहने से वचन दुष्प्रणिधान अतिचार लगता है। वैसे तो बिना सामायिक किए हुए श्रावक को भी वचन विवेक रखना चाहिए पर सामायिक लेने के बाद तो उसकी वचन गुप्ति और भाषा समिति होनी ही चाहिए। राग द्वेष बढ़ाने वाले, कषायों को उग्र करने वाले, नो-कषाय बढ़ाने वाले और कलहकारी वचनावलियां वचन-दुष्प्रणिधान में है।

वास्तव में तो सामायिक में नया ज्ञान सीखना चाहिए, शास्त्रों की स्वाध्याय तथा थोक ज्ञान का पारायण होना चाहिए। इसके अलावा ज्ञान बढ़ाने के लिए धार्मिक प्रश्नोत्तर करना - सुनना भी अच्छा ही है।

पांचों इंद्रियों सहित काया की प्रवृत्ति के सावद्य योग काय-दुष्प्रणिधान में शामिल है। अनुकूल शब्द, रूप, गंध, रस एवं स्पर्श में आसक्त होना, प्रतिकूल काम-गुणों से द्वेष करना, बिना पूजे रात्रि में चलना, मच्छर डांस आदि काट खाते हों तो बिना पूजे खाज खुजालना, दिन में बिना देखे चलना, बिना प्रयोजन इधर-उधर आना-जाना - ये सभी काय-दुष्प्रणिधान में गिने गये हैं। सामायिक में काया को कछुए की भांति गोपन करके स्थिर आसन से बैठना चाहिए। सामायिक में सांसारिक पत्र पत्रिकाएं पढ़ना, बाजार की ओर दृष्टि लगाकर आते जाते को देखना ये सभी काय-दुष्प्रणिधान के अंतर्गत हैं।

सामायिक की स्मृति ही नहीं रहे - मन कहीं जा रहा है, वचनों से अनर्गल प्रलाप चल रहा है, कायिक चंचलता-चपलता जारी है - ये सभी सामायिक को भूल जाने जैसे कार्य इस अतिचार में आते हैं। सामायिक में क्या करना, क्या नहीं करना - यह ध्यान ही न रहे, नहीं करने योग्य प्रवृत्तियाँ होती हों, करने योग्य प्रवृत्तियाँ नहीं होती हों-यह सामायिक की याद को भूलाने जैसे अतिचार के विषय हैं।

सामायिक करने वाले को द्रव्य-शुद्धि, क्षेत्र-शुद्धि, काल-शुद्धि और भाव-शुद्धि - इन चार प्रकार की शुद्धियों का ध्यान रखना चाहिये। पांचों अतिचार मन, वचन, काया के दुष्ट योगों को टालने के लिए है। सामायिक लेने का समय याद न रखना 'सइ अकरणया' है तथा समय पूर्व सामायिक पारना 'अणवट्टियस्स करणया' है अतः भाव शुद्धि की तरफ ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है।

देशावगासिक व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं देसावगासियस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण

समायरियव्वा, तंजहा - आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहिया पोगगलपक्खेवे १०।

कठिन शब्दार्थ - देसावगासिय - देश अवकाशिक-देश अर्थात् हिस्सा=खंड=सर्व का एक अंश। अवकाश अर्थात् छुट्टी। अणुव्रत एवं गुणव्रत रूप सर्व जो कि जीवन पर्यन्त के लिए होते हैं उनकी दैनिक मर्यादा रूप अंश को खुला रख कर शेष अधिकांश का आस्रव रोकना 'देशावकासिक' व्रत है, आणवणप्पओगे - आनयन प्रयोग, पेसवणप्पओगे - प्रेष्य प्रयोग, सद्दाणुवाए - शब्दानुपात, रूवाणुवाए - रूपानुपात, बहियापोगगलपक्खेवे - बहिःपुद्गलप्रक्षेप।

भावार्थ - तत्पश्चात् श्रमणोपासक को देशावकासिक व्रत के पांच अतिचारों को जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं - १. आनयन प्रयोग २. प्रेष्य प्रयोग ३. शब्दानुपात ४. रूपानुपात और ५. बहिःपुद्गल प्रक्षेप।

विवेचन - देसावगासियं - 'दिग्ब्रतगृहीतस्य दिक्परिणामस्य प्रतिदिनं संक्षेपकरणलक्षणे सर्व व्रतसंक्षेपकरण लक्षणे वा।' (अभि० भाग ४, पृ० २६३२)

अर्थ - छोटे व्रत दिशा-परिमाण को प्रतिदिन संक्षिप्त करना तथा सभी व्रतों के परिमाण को संक्षिप्त करना 'देशावकाशिक' कहलाता है।

देशावकासिक व्रत के पांच अतिचारों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है -

१. आनयन प्रयोग - दिशा मर्यादा करने से वह स्वयं तो मर्यादित भूमि से बाहर नहीं जा सकता, परन्तु दूसरों को भेज कर कोई वस्तु मंगवाना 'आनयन प्रयोग' है।

२. प्रेष्य प्रयोग - मर्यादित क्षेत्र के बाहर के क्षेत्र के कार्यों को संपादित करने हेतु सेवक, पारिवारिक व्यक्ति आदि को भेजना।

३. शब्दानुपात - मर्यादित क्षेत्र से बाहर का कार्य सामने आ जाने पर, ध्यान में आ जाने पर छींक कर, खांसी लेकर या और कोई शब्द कर पडौसी आदि से संकेत द्वारा कार्य करवाना।

४. रूपानुपात - मर्यादित क्षेत्र से बाहर का काम करवाने के लिए मुंह से कुछ नहीं बोल कर हाथ, अंगुली आदि से संकेत करना।

५. बहिःपुद्गल प्रक्षेप - मर्यादित क्षेत्र से बाहर का काम करवाने के लिए कंकर आदि फेंककर अपनी उपस्थिति बताना अथवा कार्य का संकेत करना।

लौकिक एषणा, आरम्भ आदि सीमित कर जीवन को उत्तरोत्तर आत्म-निरत बनाने में देशावकाशिक व्रत अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

पौषधोपवास व्रत के अतिचार

तयाणंतरं च णं पोसहोववासस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियसिज्जासंधारे, अप्पमज्जियदुप्पमज्जियसिज्जासंधारे, अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियउच्चारपासवणभूमी, अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउच्चारपासवणभूमी, पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया ११।

कठिन शब्दार्थ - पोसहोववास - पौषधोपवास-उपवास युक्त पौषध, अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहिय सिज्जा संधारे - अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित शय्या संस्तारक, अप्पमज्जियदुप्पमज्जिय सिज्जा संधारे - अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित शय्या संस्तारक, अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमी - अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित उच्चार प्रस्रवण भूमि, अप्पमज्जियदुप्पमज्जिय उच्चारपासवण भूमी - अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित उच्चार प्रस्रवण भूमि, पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया - पौषधोपवास सम्यक् अननुपालन।

भावार्थ - तदनन्तर श्रमणोपासक को पौषधोपवास व्रत के पांच अतिचारों को जानना चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं - १. अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित शय्या संस्तारक २. अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित शय्या संस्तारक ३. अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित उच्चार प्रस्रवण भूमि ४. अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित उच्चार प्रस्रवण भूमि ५. पौषधोपवास सम्यक् अननुपालन।

विवेचन - १. पौषध - 'पुष्टिं धर्मस्य दधातीति पौषधः' - धर्म को पुष्ट करने वाली क्रिया विशेष। २. उपवास - उपवास - 'यामाष्टकम् अभोजनम् उपवास स विज्ञेयः। उपावृतस्य दोषेभ्यः सम्यग्वासौ गुणैः सह उपवासः स विज्ञेयः सर्व भोगविवर्जितः' - सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक के लिए आहार का प्रतिषेध उपवास है। पापों व दोषों से दूर रह कर सम्यग् गुणों एवं धर्म के समीप रहना, सभी भोगों का वर्जन करना उपवास है। आत्मा के समीप वास करना उपवास है। ३. सिज्जा-शय्या - पौषध करने का स्थान। ४. संधार-संस्तार - दर्भादि की शय्या (बिछौना) जिस पर सोया जाय।

पौषधोपवास के पांच अतिचार इस प्रकार हैं -

१. अप्रतिलेखित दुष्प्रतिलेखित शय्या संस्तारक - बिना प्रतिलेखन किए, अविधि पूर्वक या अधूरा प्रतिलेखन किए हुए शय्या स्थान व संस्तारक - दरी आदि बिछौने का पौषध में उपयोग करने से यह अतिचार लगता है।

ध्यान पूर्वक देखना प्रतिलेखन है। बिना देखा हुआ अप्रतिलेखित है। बिना ध्यान के देखा गया अथवा अधूरा देखा गया दुष्प्रतिलेखित है।

२. अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित शय्या संस्तारक - पूंजनी आदि से पूंजना प्रमार्जन है। जिसको पूंजा नहीं गया है वह अप्रमार्जित है। जिसका प्रमार्जन विधि पूर्वक नहीं हुआ है वह 'दुष्प्रमार्जित' है। पौषध में शय्या व संस्तारक में पूंजणी, डांडिया आदि से नहीं पूंजने से तथा अविधिपूर्वक तथा अधूरा पूंजने से यह अतिचार लगता है।

३. अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित उच्चार प्रस्रवण भूमि - उच्चार अर्थात् बड़ी नीत-मल प्रस्रवण अर्थात् लघुनीत-मूत्र, भूमि अर्थात् खुली जमीन। जहाँ मल मूत्र की बाधा निवारण करनी हो उस खुले स्थान की प्रतिलेखना नहीं करने से, अविधिपूर्वक करने से, अधूरी करने से यह अतिचार लगता है।

४. अप्रमार्जित दुष्प्रमार्जित उच्चार प्रस्रवण भूमि - परठने के पूर्व प्रमार्जन करने से वहाँ रहे हुए जीवों की यतना होती है अतः बिना प्रमार्जन किए, अविधिपूर्वक प्रमार्जन किए तथा अधूरा क्षेत्र प्रमार्जन किए जाने पर यह अतिचार लगता है।

उपरोक्त चारों अतिचार प्रतिलेखन-प्रमार्जन से संबंधित है।

५. पौषधोपवास का सम्यक् अननुपालन - प्रतिलेखन और प्रमार्जन के अतिरिक्त पौषध के जो दोष होते हैं उन सबका संग्रह इस अतिचार में होता है। भगवान् ने पौषधोपवास में जिन स्वाध्याय, ध्यान, कायोत्सर्ग, निद्राजय, निंदाजय आदि सम्यक् अनुष्ठान करने की आज्ञा फरमाई है वे नहीं करने से सम्यक् अनुपालना नहीं होती है। पौषधोपवास अविधि से लेना, अविधि से पारना, अकारण ही इधर-उधर घूमना, अकारण सो जाना, सावद्य पत्र पत्रिकाएं पढ़ना, विकथा करना आदि निषिद्ध प्रवृत्तियों को करने से भी सम्यक् अननुपालन रूप अतिचार लगता है।

यथासंविभाग (अतिथिसंविभाग) व्रत के अतिचार

तथाणंतरं च णं अहासंविभागस्स समणोवासएणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण
समायरियव्वा, तंजहा - सच्चित्तणिक्खेवणया, सच्चित्तपिहणया, कालाइक्कमे,
परो(र)ववएसे, मच्छरिया १२।

कठिन शब्दार्थ - अहासंविभागस्स - यथासंविभाग (उचित रूप से अन्न, पान, वस्त्र
आदि का विभाजन - योग्य पात्र को इन स्वाधिकृत वस्तुओं में से एक भाग देना) के
सच्चित्तणिक्खेवणिया - सचित्त निक्षेपणता, सच्चित्तपिहणया - सचित्त पिधानता, कालाइक्कमे-
कालातिक्रम, परववएसे - परव्यपदेश, मच्छरियाए - मत्सरिता।

भावार्थ - तदनन्तर श्रमणोपासक को यथा संविभाग व्रत के पांच अतिचारों को जानना
चाहिए, उनका आचरण नहीं करना चाहिये। वे इस प्रकार हैं - १. सचित्त निक्षेपणता २. सचित्त
पिधानता ३. कालातिक्रम ४. परव्यपदेश तथा ५. मत्सरिता।

विवेचन - यथासंविभाग व्रत का प्रचलित नाम 'अतिथिसंविभाग व्रत' है। इसका अर्थ
है - अतिथि यानी जिनके आने की तिथि नियत नहीं है कि वे अमुक तिथि को आयेंगे - वे
साधु साध्वी यहाँ पर 'अतिहि' शब्द से ग्रहण किये गये हैं। संविभाग अर्थात् गृहस्थ अपने लिए
भोजन पानी बनाता है उसमें से कुछ अंश, कुछ हिस्सा, कुछ विभाग मुनियों-श्रमण निर्ग्रन्थ को
देना, यह अतिथि संविभाग है।

इस व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं -

१. सचित्त निक्षेपणता - अचित्त निर्दोष वस्तु को नहीं देने की बुद्धि से सचित्त पर रख देना।

२. सचित्त पिधानता - कुबुद्धि पूर्वक अचित्त वस्तु को सचित्त से ढक देना।

दोनों अतिचारों का अंतर इस प्रकार समझना - नमक, मिर्च आदि की मसालेदानी पर
रोटी का कटोरदान रखना, पानी के मटके पर धोवन की मटकी रख देना सचित्त निक्षेपणता
अतिचार है। कटोरदान पर मसालेदानी रखना या धोवन की बाल्टी पर कच्चे पानी का भरा
लोठा रख देना-यह सचित्त पिधानता अतिचार है। दोनों ही स्थितियों में प्रासुक एषणीय आहार
भी सचित्त संघट्टित होने से मुनियों के लिए अग्राह्य हो जाता है। यह मुख से भिक्षा नहीं देने की
बात न कह कर भिक्षा न देने का व्यवहार से धूर्तता पूर्ण उपक्रम है।

३. कालातिक्रम - काल या समय का अतिक्रम - उल्लंघन करना। गोचरी का समय

चुका कर शिष्टाचार के लिए बाद में दान देने की तैयारी दिखाना। ऐसा करने वाला व्यक्ति मन ही मन यह जानता है कि उसे भिक्षा या भोजन नहीं देना पड़ेगा और उसकी बात भी रह जायेगी, यों कुछ लगे बिना ही सत्कार हो जायगा।

४. परव्यपदेश - नहीं देने की बुद्धि से अपनी वस्तु को दूसरों की बताना। स्वयं सूझता है पर साधु संतों पर भक्ति बहुमान नहीं होने से नौकर चाकर आदि को बहराने के लिए कह देना भी परव्यपदेश अतिचार है।

५. मत्सरिता - ईर्ष्यावश दान देना अथवा दूसरे दाताओं पर ईर्ष्याभाव लाना आदि। जैसे कोई व्यक्ति देखता है, अमुक ने ऐसा दान दिया है तो उसके मन में आता है, मैं उसे कम थोड़ा ही हूँ, मैं भी दूँ? ऐसा करने में दान की भावना नहीं है, अहंकार की भावना है। दान देने में कंजूसी करना, क्रोध पूर्वक भिक्षा देना भी इसी अतिचार के अंतर्गत है।

संलेखना के अतिचार

(६)

तयाणंतरं च णं अपच्छिममारणंतियसंलेहणाङ्गूसणाराहणाए पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा, तंजहा - इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगासंसप्पओगे १३।

कठिन शब्दार्थ - अपच्छिम - अन्तिम या आखिरी, जिसके बाद इस जीवन में और कुछ करना बाकी न रह जाय, मारणांतिय - मारणांतिक-मरण पर्यन्त चलने वाली, संलेहणा-संलेखना-कषाय और शरीर को क्षीण करना, ङ्गूसणा - जोषणा - प्रीतिपूर्वक सेवन, आराहणा-आराधना-अनुसरण करना या जीवन में उतारना, इहलोगासंसप्पओगे - इहलोक आशंसा प्रयोग, परलोगासंसप्पओगे - परलोकाशंसा प्रयोग, जीविया संसप्पओगे - जीविताशंसा प्रयोग, मरणासंसप्पओगे - मरणाशंसा प्रयोग।

भावार्थ - तत्पश्चात् अपश्चिम मारणांतिक संलेखणा जोषणा आराधना के पांच अतिचारों को जानना चाहिये, उनका आचरण नहीं करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं - १. इहलोक आशंसा प्रयोग २. परलोक आशंसा प्रयोग ३. जीवित आशंसा प्रयोग ४. मरण आशंसा प्रयोग तथा ५. कामभोग आशंसा प्रयोग।

विवेचन - जैन दर्शन संलेखना के द्वारा साधक को मरने की कला सीखता है। संलेखना में साधक जीवन पर्यंत के लिए आहार त्याग तो करता ही है साथही लौकिक, पारलौकिक कामनाओं को भी छोड़ देता है। वह जीवन मृत्यु की कामना से भी ऊपर उठ जाता है, उसे न जीने की चाह रहती है और न मृत्यु से वह डरता है। वह यह भी नहीं सोचता है कि शीघ्र देह का अन्त हो जाय, आफत मिटे। वह तो सहज भाव से जब भी मौत आ जाती है शांति से उसका वरण करता है। आध्यात्मिक दृष्टि से यह पवित्र, उन्नत और प्रशस्त मनःस्थिति है इसलिए इसे 'पंडित मरण' कहा है। संलेखना व्रत के पांच अतिचार इस प्रकार हैं -

१. इहलोकाशंसा प्रयोग - आगामी मनुष्यभव में राजा-चक्रवर्ती आदि बनने की इच्छा करना।
२. परलोकाशंसा प्रयोग - देवादि में इन्द्र अहर्मिंद्र, लोकपाल आदि बनने की इच्छा करना।
३. जीविताशंसा प्रयोग - 'शरीर स्वस्थ है, लोगों में संधारे के समाचार से कीर्ति फैल रही है', अतः लम्बे काल-तक जीवित रहूँ, ऐसी इच्छा करना।
४. मरणाशंसा प्रयोग - बीमारी व कमजोरी ज्यादा होने से शीघ्र मरने की इच्छा करना।
५. कामभोगाशंसा प्रयोग - मेरे संयम तप के फलस्वरूप मुझे उत्तम दैविक और मानवीय भोगों की प्राप्ति हो, ऐसी इच्छा करना।

आनन्द जी का अभिग्रह

(७)

तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - णो खलु मे भंते! कप्पइ अज्जप्पभिइं अण्णउत्थिए वा अण्णउत्थियदेवयाणि वा अण्णउत्थिय परिग्गहियाणि वा॥ वंदित्तए वा णमंसित्तए वा, पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा,

॥ आनन्दजी की प्रतिज्ञा के इस पाठ में प्रक्षेप भी हुआ है। प्राचीन प्रतियों में न तो 'चेइयाइं' शब्द था और न 'अरिहंत चेइयाइं'। भगवान् महावीर प्रभु के प्रमुख उपासकों के चरित्र में मूर्तिपूजा का उल्लेख नहीं होना, उस पक्ष के लिए अत्यन्त खटकने वाली बात थी। इसलिए इस कमी को दूर करने के लिए किसी मत-प्रेमी ने पहले 'चेइयाइं' शब्द मिलाया। कालान्तर में किसी को यह भी अपर्याप्त लगा तो उसने अपनी ओर से एक शब्द

तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा, गण्णत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुणिग्गहेणं वित्तिक्कंतारेणं ।

और बढ़ा कर 'अरिहंत चेइयाइं' करा दिया। किन्तु यह प्रक्षेप भी व्यर्थ रहा। क्योंकि उससे भी उन उपासकों की साधना और आराधना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो तब होता कि उनके सम्यक्चक्रत या प्रतिमा आराधना में, मूर्ति के नियमित दर्शन करने, पूजन-महापूजन करने और तीर्थयात्रादि का उल्लेख होता। ऐसा तो कुछ भी नहीं है, फिर इस अड़ंगे से होना भी क्या है?

इस पाठ के विषय में जो खोज हुई है, उसका विवरण 'श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था बीकानेर' से प्रकाशित 'जैन सिद्धांत बोल संग्रह भाग ३' के परिशिष्ट से साभार उद्धृत करते हैं -

उपासकदशांग के आन्दाध्ययन में नीचे लिखा पाठ आया है - "नो खलु मे भंते कप्पइ अज्जपभिइं अन्नउत्थिए वा, अन्नउत्थियदेवयाणि वा, अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा" इत्यादि।

अर्थात् हे भगवन्! मुझे आज से लेकर अन्ययूथिक, अन्ययूथिक के देव अथवा अन्ययूथिक के द्वारा सम्मानित या गृहित को वन्दना नमस्कार करना नहीं कल्पता। इस जगह तीन प्रकार के पाठ उपलब्ध होते हैं -

(क) अन्नउत्थियपरिग्गहियाणि।

(ख) अन्न उत्थियपरिग्गहियाणि चेइयाइं।

(ग) अन्न उत्थियपरिग्गहियाणि अरिहंत चेइयाइं।

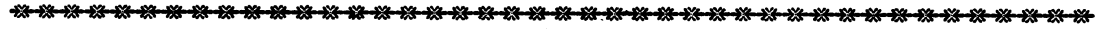
विवाद का विषय होने के कारण इस विषय में प्रति तथा पाठों का खुलासा नीचे लिखे अनुसार है -

(क) 'अन्न उत्थियपरिग्गहियाणि' यह पाठ बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता द्वारा ई० सन् १८९० में प्रकाशित अंग्रेजी अनुवाद सहित उपासकदशांग सूत्र में है। इसका अनुवाद और संशोधन डॉक्टर ए० एफ० रुडल्फ हार्नले पी० एच० डी० ट्र्यूबिंजन फेलो ऑफ कलकत्ता यूनिवर्सिटी, आनरेरी फाइलोलोजिकल सेक्रेटरी टू दी एसिआटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल ने किया है। उन्होंने टिप्पणी में पांच प्रतियों का उल्लेख किया है, जिनका नाम A. B. C. D. और E रक्खा है A. B और D में (ख) पाठ है C और E में (ग)।

हार्नले साहेब ने 'चेइयाइं' और 'अरिहंतचेइयाइं' दोनों प्रकार के पाठ को प्रक्षिप्त माना है। उनका कहना है - 'देवयाणि' और 'परिग्गहियाणि' पदों में सूत्रकार ने द्वितीया के बहुवचन में 'णि' प्रत्यय लगाया है। 'चेइयाइं' में 'इ' होने से मालूम पड़ता है कि यह शब्द बाद में किसी दूसरे का डाला हुआ है। हार्नले साहेब ने पांचों प्रतियों का परिचय इस प्रकार दिया है।

(A) यह प्रति इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी कलकत्ते में है। इसमें ४० पत्रे हैं, प्रत्येक पत्रे में १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ३८ अक्षर हैं। इस पर संवत् १५६४, सावन सुदी १४ का समय दिया हुआ है। प्रति प्रायः शुद्ध है।

(B) यह प्रति बंगाल एसियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में है। बीकानेर महाराजा के भण्डार में रखी हुई



कठिन शब्दार्थ - पंचाणुव्वइयं - पांच अणुव्रत, सत्तसिक्खावइयं - सात शिक्षाव्रत, दुवालसविहं - द्वादशविध, सावयधम्मं - श्रावक धर्म को, पडिवज्जइ - स्वीकार करता है, कप्पइ - कल्पता है, अज्झप्पभिइं - धार्मिक दृष्टि से, अण्णउत्थिए - अन्ययूथिक,

पुरानी प्रति की यह नकल है। यह नकल सोसाइटी ने गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया के बीच में पडने पर की थी। सोसाइटी जिस प्रति की नकल कराना चाहती थी, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित बीकानेर भण्डार की सूची में उसका १५३३ नम्बर है। सूची में उसका समय १११७ तथा उसके साथ उपासकदशा विवरण नाम की टीका का होना भी बताया गया है। सोसाइटी की प्रति पर फागुन सुदी ६ गुरुवार सं० १८२४ दिया हुआ है। इसमें कोई टीका भी नहीं है। केवल गुजराती टब्बा अर्थ है। उस प्रति का प्रथम और अंतिम पत्र बीच की पुस्तक के साथ मेल नहीं खाता है। अंतिम पृष्ठ टीका वाली प्रति का है। सूची में दिया गया विवरण इन पृष्ठों से मिलता है। इससे मालूम पड़ता है कि सोसाइटी के लिए किसी दूसरी प्रति की नकल हुई है। १११७ संवत् उर्स प्रति के लिखने का नहीं किन्तु टीका के बनाने का मालूम पड़ता है। यह प्रति बहुत सुन्दर लिखी हुई है। इसमें ८३ पन्ने हैं। प्रत्येक पन्ने में छह पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में २६ अक्षर हैं। साथ में टब्बा है।

(C) यह प्रति कलकत्ते में एक यती के पास है। इसमें ४१ पन्ने हैं। मूल पाठ बीच में लिखा हुआ है और संस्कृत टीका ऊपर तथा नीचे। इसमें संवत् १६१६ फागुन सुदी ४ दिया हुआ है। यह प्रति शुद्ध और किसी विद्वान् द्वारा लिखी हुई मालूम पड़ती है, अन्त में बताया गया है कि इसमें ८१२ श्लोक मूल के और १०१६ टीका के हैं।

(D) यह भी उन्ही यतीजी के पास है। इसमें ३३ पन्ने हैं। ६ पंक्ति और ४८ अक्षर हैं। इस पर मिगसर वदी ५, शुक्रवार संवत् १७४५ दिया हुआ है। इसमें टब्बा है। यह श्री रेनी नगर में लिखी गई है।

(E) यह प्रति मुर्शिदाबाद वाले राय धनपतिसिंहजी द्वारा प्रकाशित है।

इनके सिवाय श्री अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर (बीकानेर का प्राचीन पुस्तक भण्डार जो कि पुराने किले में है) में उपासकदशांग की दो प्रतियाँ हैं। उन दोनों में 'अन्नउत्थिपरिग्गहियाणि चेइयाइं' पाठ है। पुस्तकों का परिचय F और G के नाम से नीचे दिया जाता है।

(F) लाइब्रेरी पुस्तक नं० ६४६७ (उवासग सूत्र) पन्ने २४ एक पृष्ठ में १३ पंक्तियाँ एक पंक्ति में ४२ अक्षर, अहमदाबाद आंचल गच्छ श्री गुडापाशर्वनाथ की प्रति, पुस्तक में संवत् नहीं है। चौथे पत्र में नीचे लिखा पाठ है - 'अन्नउत्थियपरिग्गहियाइं वा चेइयाइं' पत्र में बाईं तरफ शुद्ध किया हुआ है - 'अन्नउत्थियाइं वा अन्नउत्थियदेवयाइं वा' पुस्तक अधिकतर अशुद्ध है। बाद में शुद्ध की गई है, श्लोक संख्या ६१२ दी है।

(G) लाइब्रेरी पुस्तक नं० ६४६४ (उपासकदशावृत्ति पंच पाठ सह) पत्र ३३, श्लोक ६००, टीका ग्रन्थाग्र ६०० प्रत्येक पृष्ठ पर १६ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ३२ अक्षर हैं। पत्र आठवें, पंक्ति पहली में नीचे लिखा पाठ है -

'अन्नउत्थियपरिग्गहियाइं वा चेइयाइं' यह पुस्तक पडिमात्रा में लिखी हुई है और अधिक प्राचीन मालूम पड़ती है। पुस्तक पर संवत् नहीं है।

अण्णउत्थियदेवयाणि - अन्ययूथिक देव, अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि - अन्ययूथिक परिगृहीत (स्वीकृत), अणालत्तेण - बोलाए बिना, आलवित्तए - आलाप करना, संलवित्तए - संलाप करना, दाउं - देना, अणुप्पदाउं - अनुप्रदान करना, रायाभिओगेणं - राजाभियोग से, गणाभिओगेणं - गणाभियोग से, बलाभिओगेणं - बलाभियोग से, देवयाभिओगेणं - देवाभियोग से, गुरुणिग्गहेणं - गुरु निग्रह से, वित्तिकंतारेणं - आजीविका के संकट ग्रस्त होने की स्थिति में।

भावार्थ - तत्पश्चात् आनंद गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार किया। स्वीकार कर भगवान् महावीर स्वामी को वंदना नमस्कार कर इस प्रकार कहा -

हे भगवन्! आज से मुझे अन्यतीर्थियों के साधुओं को, अन्यतीर्थिक देवों को एवं अन्यतीर्थि प्रगृहीत जैन साधुओं को वंदन-नमस्कार करना नहीं कल्पता है। उनसे बोलाए बिना आलाप-संलाप करना नहीं कल्पता है। उन्हें पूज्य मान कर अशन, पान, खादिम, स्वादिम देना, अनुप्रदान करना मेरे लिए कल्पनीय नहीं है। परन्तु राजा की आज्ञा से, संघ समूह के दबाव से, बलवान के भय से, देव के भय से, माता-पिता आदि ज्येष्ठजनों की आज्ञा से और अटवी में भटक जाने पर अथवा आजीविका के कारण कठिन परिस्थिति को पार करने के लिए किन्हीं मिथ्यादृष्टि देवादि को वंदनादि करनी पड़े तो आगार (छूट) है।

विवेचन - श्रावक के बारह व्रतों में पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षा व्रत हैं-
पांच अणुव्रत - अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच मूल व्रतों को अणुव्रत कहते हैं।

तीन गुणव्रत - अणुव्रतों के गुणात्मक विकास में सहायक होने अथवा साधक के चारित्र मूलक गुणों की वृद्धि करने के कारण इन्हें 'गुणव्रत' कहते हैं। दिशापरिणाम, उपभोग परिभोग परिमाण और अनर्थदण्ड विरमण व्रत - ये तीन गुणव्रत हैं।

चार शिक्षाव्रत - जिनका अभ्यास पुनः-पुनः किया जाता है और जो अभ्यास द्वारा आत्मा को शिक्षित-संस्कारित करते हैं, वे शिक्षाव्रत कहलाते हैं। सामायिक व्रत, देशावगासिक व्रत पौषध व्रत और अतिथिसंविभाग व्रत - ये चार शिक्षाव्रत हैं जो अणुव्रतों के अभ्यास के लिए और साधना में स्थिरता लाने के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

प्रस्तुत सूत्र में तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत - इस प्रकार सात शिक्षाव्रत का कथन किया गया है। गुणव्रत और शिक्षाव्रत ये दोनों ही अणुव्रतों के अभ्यास में सहायक बनते हैं अतः स्थूल दृष्टि से सात शिक्षाव्रत का कथन उचित ही है।

आनंद श्रावक ने व्रत ग्रहण के पश्चात् एक विशेष प्रकार का दृढ़ संकल्प लिया जो सम्यक्त्व की दृढ़ता एवं सुरक्षा के लिए उचित था।

आनंद श्रावक के प्रतिज्ञा सूत्र में प्रयुक्त 'अण्णउत्थियाणि' शब्द का अर्थ है - अन्यतीर्थिक साधु। यद्यपि इसमें सामान्य गृहस्थ का भी समावेश हो सकता है, परन्तु सामान्यतया उनका सम्पर्क मिथ्यात्व का कारण नहीं बनता, उत्तरा० अ० १० गाथा १८ में भी 'कुतित्थी' शब्द से 'अन्यदर्शनी साधुओं' का ही ग्रहण हुआ है। 'अण्णउत्थियदेवयाणि' का अर्थ है-अन्यतीर्थियों के देव। वे पुरुष जो अमुक धर्म के प्रवर्तक, संस्थापक अथवा आचार्य रूप हो। जैसे आनन्दजी के युग में - गोतमबुद्ध बौद्धधर्म के प्रवर्तक थे। मंखलिपुत्र गौशालक भी आजीवक मत के देव रूप थे। 'दिव्यावदानन' नामक बौद्ध ग्रन्थ में ऐसे छह व्यक्तियों का नामोल्लेख है - १. पूरण काश्यप २. मंखलिपुत्र गोशालक ३. संजय वेरट्टीपुत्र ४. अजित देश कम्बल ५. कुकुद कात्यायन और ६. निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र।

“तेन खलु समयेन राजगृहे नगरे षट् पूर्णाद्याः शास्त्रोऽसर्वज्ञाः सर्वज्ञमानिनः प्रतिवसन्तिस्व। तद्यथा-पूरणः काश्यपो मश्करी गोशालिपुत्रः संजयी वेरट्टीपुत्रो अजित केश कम्बलः कुकुदः कात्यायनो निर्ग्रन्थो ज्ञातपुत्रः।”

इस प्रकार के अन्यतीर्थिक देवों की वंदना-नमस्कार आदि नहीं करने का आनन्दजी ने अभिग्रह लिया था।

'अण्णउत्थियाणि परिग्गहियाणि' - यहाँ पाठ-भेद है और विवादजनक है, 'चेइयाइं' और 'अरिहंत चेइयाइं' दोनों पाठ प्रक्षिप्त है जिसका स्पष्टीकरण फुट नोट में किया जा चुका है। साथ ही टीकाकार का किया हुआ अर्थ तो अपने समय में पूर्णरूप से प्रसरी और जमी हुई मूर्तिपूजा से प्रभावित है।

और 'चेइय' - चैत्य शब्द का अर्थ मात्र प्रतिमा ही नहीं होता। प्रसिद्ध जैनाचार्य पूज्य श्री १००८ श्री जयमलजी म. सा. ने 'चेइय' शब्द के एक सौ बारह अर्थों की खोज की। 'जयध्वज' पृ० ५७३ से ५७६ तक वे देखे जा सकते हैं। वहाँ अन्त में लिखा है-

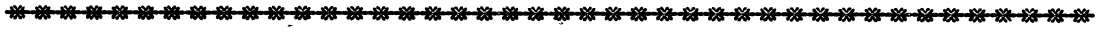
‘इति अलंकरणे दीर्घं ब्रह्माण्डे सुरेश्वर वार्तिके प्रोक्तं प्रतिमा चेइय शब्दे नाम ६० मो छे। चेइय ज्ञान नाम पाँचमो छे। चेइय शब्दे यति=साधु नाम सातुमं छे। पछे यथायोग्य ठामे जे नाम हुवे तो जाणवो। सर्व चैत्य शब्द ना आंक ५७ अने चेइय शब्दे ५५ सब ११२ लिखितं।’

“पू० भूधरजी तत्शिष्य ऋषि जयमल नागौर मझे सं०१८०० चेत सुदी १० दिने।”

आनन्दजी के अभिग्रह वर्णन में तथाकथित ‘चेड़याड़’ का प्रासंगिक अर्थ यह है कि -

“मैं अन्यतीर्थियों द्वारा प्रगृहीत साधुओं को वंदना-नमस्कार नहीं करूँगा।” यदि हम कुछ क्षणों के लिए मान लें कि अन्यतीर्थियों द्वारा प्रगृहीत अरिहंत प्रतिमा को वंदना-नमस्कार नहीं करने का नियम लिया, किन्तु वंदना-नमस्कार के बाद जो ‘बिना बोलाए नहीं बोलना’ तथा ‘आहार-पानी देने’ की बात है, उसकी संगति कैसे होगी? वंदना-नमस्कार तो प्रतिमा को भी किया जा सकता है, परन्तु बिना बोलाए आलाप-संलाप और चारों प्रकार के आहार देने का व्यवहार प्रतिमा से तो हो ही नहीं सकता। यह कैसे संगत होगा? पहले जो सलिंगी या साधर्मी साधु था, बाद में वह अन्यतीर्थियों में चला गया है, तो वह व्यापन्न एवं कुशील है। उसे वंदना-नमस्कार नहीं करने का नियम सम्यक्त्व की मूल भूमिका है। इसी उपासक दशा में आगे पाठ आया है कि सकडालपुत्र पहले गोशालक का श्रावक था, बाद में भगवान् के उपदेश से जैन श्रावक बना, फिर गोशालक ने उसे अपना बनाना चाहा। ज्ञाताधर्मकथांग, सूयगडांग, निरयावलिका पंचक, भगवती आदि में अनेकों वर्णन मिलते हैं, जहाँ स्वमत से परमत में तथा परमत से स्वमत में आने के उल्लेख हैं। अतः परमतगृहीत जैन साधुओं को ‘अण्ण-उत्थियपरिग्गहियाणि’ के अन्तर्गत मानना उचित लगता है।

कप्पइ मे समणे णिग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थपडिग्गहकम्बलपायपुंछणेणं पीढफलंगसिज्जासंथारएणं ओसहभेसज्जेण य पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए’ त्तिकट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, अभिगिण्हित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्टाइं आदियइ, आदिइत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ, णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ चेड़याओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव वाणियगामे णयरे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिवणंदं भारियं एवं वयासी - ‘एवं खलु देवाणुप्पिए! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे णिसंते, सेऽवि य धम्मे मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए, तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिए! समणं भगवं महावीरं वंदाहि जाव पज्जुवासाहि, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि’ ।



कठिन शब्दार्थ - फासुएणं - प्रासुक-अचित्त, एसणिज्जेणं - एषणीय-निर्दोष, वत्थ-पडिग्गह-कंबल पायपुंछणेणं - वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद प्रोज्छन-रजोहरण, पीढ-फलग-सिज्जा संथारएणं - पाट, फलक (बाजोट) शय्या-ठहरने का स्थान (उपाश्रय) संस्तारक-बिछाने के लिए घास आदि, ओसह-भेसज्जेण - औषध-भेषज, अभिग्गहं - अभिग्रह को, अभिगिण्हइ- धारण (स्वीकार) करता है, पसिणाइं - प्रश्न, पुच्छइ - पूछता है, अट्टाइं - अर्थ, आदियइ- धारण करता है, णिसंते - सुना है, इच्छिए - इच्छित-इष्ट, पडिच्छिए - प्रतीच्छित-अत्यंत इष्ट, अभिरुइए - अभिरुचित, पडिवज्जाहि - स्वीकार करो।

भावार्थ - श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पाट, बाजोट, ठहरने का स्थान और घास आदि का संस्तारक, औषध एवं भेषज, ये चौदह प्रकार की वस्तुएं देना मुझे कल्पता है। आनंद ने ऐसा अभिग्रह धारण कर भगवान् से प्रश्न पूछे, उनका अर्थ-समाधान प्राप्त किया। समाधान प्राप्त कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार वंदना की। वंदना कर भगवान् के पास से द्युतिपलाश चैत्य से निकले, निकल कर जहाँ वाणिज्यग्राम था, जहाँ अपना घर था वहाँ आया। आकर अपनी पत्नी शिवानंदा को इस प्रकार कहा - 'हे देवानुप्रिये! मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास से धर्म सुना है। वह धर्म मेरे लिए इष्ट, अत्यंत इष्ट और रुचिकर है। हे देवानुप्रिये! तुम भगवान् महावीर के पास जाओ, उन्हें वंदना करो यावत् पर्युपासना करो तथा पांच अणुव्रत और सात शिक्षा व्रत रूप बारह प्रकार का गृहस्थ (श्रावक) धर्म स्वीकार करो।'

शिवानंदा भी श्रमणोपासिका बनी

(८)

तए णं सा सिवाणंदा* भारिया आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणा हट्टतुट्टा कोडुंबियपुरिसे सदावेइ, सदावेत्ता एवं वयासी - 'खिप्पामेव लहुकरण जाव पज्जुवासइ। तए णं समणे भगवं महावीरे सिवाणंदाए † तीसे य महइ जाव धम्मं कहेइ। तए णं सा सिवाणंदा* समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं

* पाठान्तर - सिवणंदा,

* सिवणंदाए

सोच्चा णिसम्म हट्ट जाव गिहिधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

कठिन शब्दार्थ - खिप्पामेव - शीघ्र, लहुकरण - लघुकरण, धम्मियं - धार्मिक, जाणप्पवरं - यान प्रवर-श्रेष्ठ रथ।

भावार्थ - आनन्द श्रमणोपासक से भगवान् की धर्म देशना और व्रत धारण की बात सुन कर शिवानंदा अत्यंत प्रसन्न हुई। उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर कहा - 'श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त धार्मिक कार्यों में उपभोग में आने वाला यान प्रवर-श्रेष्ठ रथ उपस्थित करो।' धार्मिक रथ पर सवार होकर वह भगवान् की सेवा में पहुँची यावत् पर्युपासना करने लगी। तब भगवान् महावीर स्वामी ने शिवानन्दा को तथा उपस्थित जनपरिषद् को धर्मदेशना दी। तदनन्तर शिवानन्दा श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से धर्म सुनकर तथा हृदय में धारण करके अत्यंत प्रसन्न हुई यावत् श्रावक धर्म स्वीकार किया, स्वीकार कर वह उसी धार्मिक उत्तम रथ पर सवार हुई, सवार होकर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गयी।

आनन्द का भविष्य कथन

(६)

'भंते'त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - 'पहू णं भंते! आणंदे समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे जाव पव्वइत्तए?'

णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! आणंदे णं समणोवासए बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणिहिइ, पाउणित्ता जाव सोहम्मे कप्पे अरुणे विमाणे देवत्ताए उववज्जिहिइ। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता। तत्थ णं आणंदस्सइवि समणोवासगस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पणत्ता।

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ बहिया जाव विहरइ।

तए णं से आणंदे समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ। तए णं सा सिवाणंदा भारिया समणोवासिया जाया जाव पडिलाभेमाणी विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - पहु - समर्थ, समणोवासगपरियागं - श्रमणोपासक पर्याय का, पाउणिहिइ - पालन करेगा, सोहम्मे कप्पे - सौधर्म कल्प में (सौधर्म नामक देवलोक में) अरुणे विमाणे - अरुण विमान में, देवत्ताए - देव रूप से, उववज्जिहिइ - उत्पन्न होगा, चत्तारि पलिओवमाइं - चार पल्योपम की, ठिई - स्थिति, पणत्ता - कही गई है, पडिलाभेमाणे - प्रतिलाभित करते हुए।

भावार्थ - भगवान् गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार कर पूछा - हे भगवन्! क्या आनंद श्रमणोपासक आपके पास मुंडित एवं प्रव्रजित होने में समर्थ है?

भगवान् ने फरमाया - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं। आनन्द श्रमणोपासक बहुत वर्षों तक श्रावक पर्याय का पालन कर प्रथम देवलोक सौधर्म कल्प के अरुण नामक विमान में उत्पन्न होगा। वहाँ अनेक देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है। तदनुसार आनन्द की भी चार पल्योपम की देव स्थिति होगी।

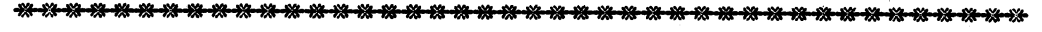
तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी एक दिन किसी समय विहार कर अन्यत्र (अन्यजनपदों में) चले गये।

आनन्द गाथापति जब आनंद श्रमणोपासक हो गये वे जीव अजीव आदि नव तत्त्वों के ज्ञाता यावत् साधु साध्वियों को प्रतिलाभित करते हुए काल यापन करने लगे। तब आनंद की पत्नी शिवानंदा भी श्रमणोपासिका हो गई यावत् प्रतिलाभित करती हुई धार्मिक जीवन जीने लगी।

आनन्द श्रावक का श्रेष्ठ संकल्प

(१०)

तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स उच्चावएहिं सीलव्वयगुणवेरमण-
पच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वीइक्कंताइं,
पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाल-
समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए
संकप्पे समुप्पज्जित्था - 'एवं खलु अहं वाणियगममे णयरे बहूणं राईसर जाव
सयस्सवि य णं कुडुम्बस्स जाव आधारे, तं एएणं विक्खवेणं अहं णो संचाएमि
समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, तं
सेयं खलु ममं कल्लं जाव जलंते विउलं असणं० जहा पूरणो जाव जेट्टपत्तं कडुम्बे



ठवेत्ता तं मित्त जाव जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता कोल्लाए सण्णिवेसे णायकुलंसि पोसहसालं पडिलेहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ता णं विहरित्ताए' ।

कठिन शब्दार्थ - शीलव्ययगुणवेरमणपच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं - शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण-विरति, प्रत्याख्यान-त्याग पौषधोपवास आदि से, धम्मजागरियं - धर्म जागरण, राईसर-राजा, ईश्वर, विक्खवेणं - व्याक्षेप-कार्य बहुलता, विक्षेप-रुकावट, ठवेत्ता - स्थापित कर, धम्मपण्णत्ति - धर्मप्रज्ञप्ति को ।

भावार्थ - तदनन्तर आनंद श्रमणोपासक को अनेक विध शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास आदि द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गए। जब पन्द्रहवां वर्ष आधा व्यतीत हो चुका था, एक दिन आधी रात के बाद धर्म जागरण करते हुए उनके मन में ऐसा चिंतन, आंतरिक मांग, मनोभाव या संकल्प उत्पन्न हुआ - मैं वाणिज्यग्राम नगर में बहुत से राजा, ईश्वर आदि के अनेक कार्यों में पूछने योग्य एवं सलाह लेने योग्य हूँ, अपने सारे कुटुम्ब का मैं आधार हूँ। इस व्याक्षेप-कार्य बहुलता या रुकावट के कारण मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्मप्रज्ञप्ति (धर्म शिक्षा के अनुरूप, आचार का सम्यक् पालन करने में) स्वीकार करने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूँ। इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं कल सूर्योदय होने पर पूरण गाथापति की भांति विपुल आहार पानी बना कर यावत् अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने स्थान पर नियुक्त कर उन मित्र आदि यावत् ज्येष्ठ पुत्र को पूछ कर कोल्लाक सन्निवेश में जो ज्ञातृकुल की पौषधशाला है उसका प्रतिलेखन कर भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार कर विचरण करूँ।

एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं विउलं०, तहेव जिमियभुत्तुरागए तं मित्त जाव विउलेणं पुप्फ ५ सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता तस्सेव मित्त जाव पुरओ जेट्ठपुत्तं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एव वयासी - 'एवं खलु पुत्ता! अहं वाणियगामे बहूणं राईसर जहा चिंतियं जाव विहरित्ताए, तं सेयं खलु मम इंदाणिं तुमं सयस्स कुडुम्बस्स आलम्बणं ४ ठवेत्ता जाव विहरित्ताए' । तए णं जेट्ठपुत्ते आणंदस्स समणोवासगस्स तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ ।

कठिन शब्दार्थ - संपेहेइ - संप्रेक्षण - सम्यक् चिंतन किया।

भावार्थ - इस प्रकार सम्यक् विचार कर प्रातःकाल होने पर विपुल अशन पान-खादिम स्वादिम तैयार करवा कर आनंद ने अपने मित्रों तथा स्वजन संबंधियों को भोजन कराया तत्पश्चात् उनका प्रचुर पुष्प, वस्त्र, सुगंधित पदार्थ, माला एवं आभूषणों से सत्कार किया, सम्मान किया। यों सत्कार सम्मान कर उनके समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा - 'हे पुत्र! मैं वाणिज्यग्राम नगर में मैं बहुत से राजेश्वर आदि लोगों द्वारा माननीय यावत् विचार विमर्श योग्य हूँ। अब यह श्रेयस्कर है कि तुम यह उत्तरदायित्व संभालो। अपने कुटुम्ब एवं दूसरों के लिए मेढिभूत, प्रमाणभूत एवं आधार भूत बनो।

तब आनंद श्रमणोपासक के ज्येष्ठ पुत्र ने 'जैसी आपकी आज्ञा' यों कहते हुए अत्यंत विनय पूर्वक अपने पिता का कथन स्वीकार किया।

प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर

तए णं से आणंदे समणोवासए तस्सेव मित्त जाव पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठवेइ, ठवेत्ता एवं वयासी - 'मा णं देवाणुप्पिया! तुब्भे अज्जप्पभिइं केइ मम बहूसु कज्जेसु जाव आपुच्छउ वा पडिपुच्छउ वा, ममं अट्टाए असणं वा ४ उवक्खडेउ वा उवकरेउ वा।

कठिन शब्दार्थ - अज्जप्पभिइं - आज से ही, आपुच्छउ - पूछे, पडिपुच्छउ - परामर्श करे, उवक्खडेउ - तैयार करें, उवकरेउ - मेरे पास लाएं।

भावार्थ - तब आनंद श्रमणोपासक ने अपने मित्र आदि ज्ञातिजनों के समक्ष अपने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में अपने स्थान पर स्थापित करके इस प्रकार कहा - हे देवानुप्रियो! आज से आप में से कोई भी मुझे बहुत से कार्यों यावत् परस्पर के व्यवहारों के संबंध में कुछ न पूछे और न ही परामर्श करें। मेरे लिए अशनादि तैयार न करें और न ही मेरे पास लाएं।

तए णं से आणंदे समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्तणाइं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता वाणियगामं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे जेणेव णायकुले जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारयं संथरइ, दब्भसंथारयं दुरूहइ,

दुरूहिता पोसहसालाए पोसहिए दब्धसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपजित्ता णं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - पमजइ - प्रमार्जन किया, उच्चारपासवण भूमिं - उच्चारप्रस्रवण की भूमि का, पडिलेहेइ - प्रतिलेखन किया, दब्धसंथारंगं - दर्भ संस्तारक को, दुरुहइ - आरूढ हुआ।

भावार्थ - तदनन्तर आनन्द श्रमणोपासक ने अपने ज्येष्ठ पुत्र और मित्र परिजन आदि की अनुमति लेकर घर से प्रस्थान किया और राजमार्ग से होते हुए कोल्लाक सन्निवेशस्थ पौषधशाला में आए, पौषधशाला का प्रमार्जन किया, बड़ी नीत-लघुनीत (शौच एवं लघुशंका) परठने योग्य स्थान की प्रतिलेखना की, दर्भ का संस्तारक (बिछौना) बिछाया और उस पर आरूढ (स्थित) होकर पौषधशाला में पौषध स्वीकार कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा उपदिष्ट धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार कर रहने लगे।

विवेचन - उपरोक्त सूत्रों में आनन्द श्रावक का आध्यात्मिक विकास क्रम प्रतीत होता है। अणुव्रत का पालन करने वाले श्रावक का लक्ष्य सर्वविरति-महाव्रत धारण करने का ही होता है। वह गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों को पूर्ण कर उन गृहस्थ के संबंधों का त्याग कर श्रमणभूत जीवन जीने को कटिबद्ध होता है। उसी प्रकार आनन्द श्रावक भी अपने ज्येष्ठ पुत्र को कौटुम्बिक उत्तरदायित्व सौंप कर स्वयं पौषधशाला में उपासक प्रतिमा की आराधना करने के लिए तैयार हो गये।

एक गृहस्थ भी साधना में किस प्रकार क्रमिक विकास कर सकता है इसका सुंदर चित्रण आनन्द के इस कथानक में हुआ है। स्वेच्छा से गृहस्थ जीवन स्वीकार किया तो उसके कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए भी प्रवृत्तियों के बीच निवृत्ति की भावना, भोग में भी त्याग की प्रबलतम भावना श्रावकों के जीवन में होनी चाहिये ऐसे परिणाम ही श्रावक की भूमिका को दृढ़तम बनाते हैं और ऐसे श्रावक ही गृहस्थ जीवन में भी आध्यात्मिक विकास करके अपने अंतिम लक्ष्य को सिद्ध कर सकते हैं।

पौषधशाला - उस जमाने में श्रावक गृहस्थ जीवन की आवश्यकतानुसार साधन-सामग्री की व्यवस्था करता, उसके साथ ही अपनी साधना के लिए अनुकूल स्थान की भी व्यवस्था करता था जिसे जैन पारिभाषिक शब्द में 'पौषधशाला' कहा जाता है। पौषधशाला में शय्या संस्तारक, परठने की भूमि आदि की भी व्यवस्था रहती थी।

वर्तमान के गृहस्थ साधकों के लिए आनन्द का जीवन दिशा सूचक है। अतः गृहस्थ को अपने घर में केवल भोग विलास योग्य वातावरण ही नहीं रखते हुए साधना योग्य स्वतंत्र स्थान रखने का कर्तव्य भी समझना चाहिये।

उपासक प्रतिमा

(११)

तए णं से आणंदे समणोवासए उवासगपडिमाओ उवसम्पज्जित्ता णं विहरइ। पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ। तए णं से आणंदे समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं चउत्थं पंचमं छट्ठं सत्तमं अट्ठमं णवमं दसमं एक्कारसमं जाव आराहेइ।

कठिन शब्दार्थ - उवासगपडिमाओ - उपासक प्रतिमाएं, अहासुत्तं - यथाश्रुत-शास्त्र के अनुसार, अहाकप्पं - यथाकल्प - प्रतिमा के आचार या मर्यादा के अनुसार, अहामग्गं - यथामार्ग-विधि या क्षायोपशमिक भाव के अनुसार, अहातच्चं - यथातत्त्व-सिद्धान्त के अनुरूप, तथ्यानुसार, सम्मं - सम्यक् रूप से, काएणं - काया से, फासेइ - स्पर्शना की, पालेइ - पालन किया, सोहेइ - शोधन किया-अतिचार रहित अनुसरण कर उसे शोधित किया अथवा गुरु भक्ति पूर्व अनुपालन द्वारा शोभित किया, तीरेइ - तीर्ण किया - आदि से अन्त तक अच्छी तरह पूर्ण किया, कित्तेइ - कीर्तित किया - सम्यक् परिपालन द्वारा अभिनन्दित किया, आराहेइ - आराधित किया, आराधना की।

भावार्थ - आनन्द श्रमणोपासक ने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं को ग्रहण किया। प्रथम प्रतिमा की सूत्रानुसार, कल्पानुसार, मार्गानुसार, तथ्यानुसार सम्यक् रूप से काया से स्पर्शना की, पालन किया, शोधन किया, तीर्ण किया, कीर्तन किया, आराधना की। प्रथम प्रतिमा की स्पर्शना यावत् आराधना के बाद दूसरी यावत् तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं प्रतिमा की आराधना की।

विवेचन - प्रतिमा का अर्थ है - 'अभिग्रह विशेष, नियम विशेष।' श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं कही गई हैं -

१. दर्शन प्रतिमा - इसमें श्रावक का सम्यग्-दर्शन विशेष शुद्ध होता है। निर्दोष - निरतिचार और आगार-रहित पालन किया जाता है। वह लौकिक देव और पर्वों की आराधना नहीं करता और निर्ग्रन्थ-प्रवचन को ही अर्थ-परमार्थ मान कर शेष को अनर्थ स्वीकार करता है।

२. व्रत-प्रतिमा - इसमें पाँच अणुव्रत व तीन गुणव्रतों का नियम पालन होता है। आगार और अतिचार कम तथा भाव-शुद्धि अधिक होती है।

३. सामायिक प्रतिमा - तीसरी प्रतिमा में सामायिक एवं देशावगासिक व्रत धारण किये ही जाते हैं। सामायिक व्रत अधिक समय और विशुद्ध किये जाते हैं।

४. पौषध प्रतिमा - इसमें अष्टमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या-पूर्णिमा को पौषध करना अनिवार्य होता है। वह पौषध में दिन में नींद नहीं ले सकता, प्रतिलेखन-प्रमार्जन, ईर्यापथिक प्रतिक्रमणादि में प्रमाद नहीं करता। यह प्रतिमा चार मास की है।

५. कायोत्सर्ग प्रतिमा - चौथी प्रतिमा वाला पौषध की रात्रि को कायोत्सर्ग न करे; तो भी कल्प्य है, परन्तु इसमें खड़े-खड़े या बैठे-बैठे या शक्ति हो तो सोए-सोए कायोत्सर्ग करना आवश्यक है। दूसरी विशिष्टता यह है कि इसके धारक का दिवा-ब्रह्मचारी होना आवश्यक है। रात्रि-मर्यादा भी होनी आवश्यक है। इसी कारण इस प्रतिमा का समवायांग में 'दिया बंध्यारी रत्ति परिमाणकडे' नाम दिया है। इस प्रतिमा की आराधना जघन्य एक, दो दिन तथा उत्कृष्ट पांच मास तक होती है। इसमें धोती की लाँग खुली रखनी होती है तथा रात्रि-भोजन का त्याग भी आवश्यक है।

६. ब्रह्मचर्य प्रतिमा - इसका धारक शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करता है। शेष पूर्व प्रतिमाओं के नियम तो अम्ली प्रतिमा में अनिवार्य हैं ही। यह उत्कृष्ट छह मासिकी है।

७. सचित्ताहार त्याग प्रतिमा - वैसे तो सचित्ताहार करना श्रावक के लिए उचित नहीं है, परन्तु प्रत्येक श्रावक सचित्त का त्यागी नहीं होता। इस प्रतिमा का धारक पूर्ण रूप से सचित्त, अर्द्ध-सचित्त या सचित्त प्रतिबद्ध का त्यागी होता है। यह उत्कृष्ट सात मास तक की जाती है।

८. आरम्भ त्याग प्रतिमा - इसका धारक स्वयं एक करण एक योग अथवा एक करण तीन योग आदि से आरम्भ करने का त्यागी होता है। आरम्भ करने-कराने वाले को स्वहस्तिकी व आज्ञापनी दोनों क्रियाएं लगती हैं, जबकि स्वयं आरम्भ नहीं करने वाले को 'स्वहस्तिकी' क्रिया नहीं लगती। इस प्रतिमा का उत्कृष्ट कालमान आठ मास है।

९. प्रेष्यारम्भ वर्जन प्रतिमा - इसका धारक आरम्भ करवाने का भी त्यागी होता है। कराने रूप आज्ञापनी क्रिया भी टल जाती है। सामान्य नयानुसार करने, कराने जैसा पाप मात्र अनुमोदना में नहीं होता, क्योंकि उस कार्य में अपना स्वामित्व नहीं होता। इसमें मात्र अनुमोदना

खुली रहती है। यह आधाकर्म आहारादि का त्यागी नहीं होता। इसका उत्कृष्ट कालमान नौ मास है।

१०. उद्दिष्ट भक्त-वर्जन प्रतिमा - इसका धारक अपने लिए बनाए गए आहारादि का सेवन भी नहीं करता। इसमें उस्तरे से या तो पूरा मस्तक मुण्डित होता है या चोटी के केश रख कर शेष मस्तक। यद्यपि इस प्रतिमा में अपनी ओर से किसी सावद्य विषय में स्वतः कुछ भी नहीं कहा जाता, पर एक बार या बार-बार पूछने पर ज्ञात विषय में 'जानता हूँ' तथा अज्ञात विषय में 'नहीं जानता', इस प्रकार की दो भाषाएं बोलना कल्पता है। यद्यपि वह विरक्त होता है, तथापि इस कथन से यत्किंचित अनुमोदन तो लगता ही है, क्योंकि जो सर्वथा अनुमोदन-रहित हो, उसे पूछने पर इन बातों के विषय में कहना भी वर्ज्य है। जैसे कि सर्वथा अनुमोदन-रहित साधु को एक मात्र मोक्षमार्ग के अतिरिक्त राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक आदि किसी भी विषय में एक शब्द का भी उच्चारण करना निषिद्ध है। इसका उत्कृष्ट कालमान दस मास का है।

११. श्रमणभूत प्रतिमा - इसमें उस्तरे से मस्तक मुण्डित होता है, शक्ति हो तो लोच भी कर सकता है। इसमें अनुमोदन का सर्वथा त्याग होता है। साधु-साध्वी तो जैनेतरों के यहाँ भी गोचरी जाते हैं, पर श्रमणभूत प्रतिमा वाला अपनी जाति वालों के यहाँ से ही आहार-पानी लेता है, क्योंकि 'ये मेरी ज्ञाति वाले हैं' - इस स्नेह-सम्बन्ध का अभाव नहीं हुआ। इस पर भी वह आहार-पानी लेने में साधु के समान विवेकी व विचक्षण होता है। घर में जाने से पूर्व दाल बनी हो, चावल बाद में बने, तो वह दाल ले सकता है, चावल नहीं। इसी प्रकार जो पूर्व निष्पन्न हो, वही वस्तु लेता है। इसमें वह तीन करण तीन योग से पाप का त्याग करता है। किसी के घर भिक्षार्थ जाने पर - 'मुझ उपासक प्रतिमा संपन्न को आहार दो' - ऐसा कहना कल्पता है। किसी के पूछने पर वह कह सकता है कि मैं 'प्रतिमा प्रतिपन्न श्रमणोपासक हूँ।' इस प्रतिमा का उत्कृष्ट कालमान ग्यारह मास है।

शंका - क्या प्रथम प्रतिमा के नियम ग्यारहवीं प्रतिमा में भी आवश्यक हैं?

समाधान - जी हाँ, पहले के सारे नियम अगली प्रतिमा के लिए भी अनिवार्य हैं।

श्री समवायांग सूत्र के ग्यारहवें समवाय में ग्यारह प्रतिमाओं के नाम बताए गए हैं। श्री दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र की छठी दशा में उपासक प्रतिमाओं का स्वरूप विस्तार से बताया गया है। जिज्ञासुओं को वहाँ देख लेना चाहिये।

आनन्दजी ने संथारा किया

(१२)

तए णं से आणंदे समणोवासए इमेणं एयारूवेणं उरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पगहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के जाव किसे धमणिसंतए जाए।

तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्ता जाव धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-एवं खलु अहं इमेणं जाव धमणिसंतए जाए, तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे सद्धाधिइसंवेगे, तं जाव ता मे अत्थि उट्ठाणे सद्धाधिइसंवेगे जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ ताव ता मे सेयं कल्लं जाव जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा- झूसणाझूसियस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं पाउ जाव अपच्छिममारणंतिय जाव कालं अणव-कंखमाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - तवोकम्मेणं - तप कर्म से, सुक्के - शुष्क, किसे - कृश, धमणिसंतएजाए - नाडियाँ दिखने लगीं, उट्ठाणे - उत्थान-धर्मोन्मुख उत्साह, कम्मे - कर्म-तदनुरूप प्रवृत्ति, बले - शारीरिक शक्ति दृढ़ता, वीरिए - वीर्य-आन्तरिक ओज, पुरिसक्कार परक्कमे - पुरुषाकार पराक्रम-पुरुषोचित पराक्रम या अन्तःशक्ति, सद्धा - श्रद्धा-धर्म के प्रति आस्था, धिई - धृति-सहिष्णुता, संवेगे - संवेग-मुमुक्षुभाव, धम्मायरिए- धर्माचार्य, धम्मोवएसए- धर्मोपदेशक, जिणे - जिन-रागद्वेष विजेता, सुहत्थी - सुहस्ती, भत्तपाण पडियाइक्खियस्स- खान-पान का प्रत्याख्यान-परित्याग, अणवकंखमाणस्स - कामना न करता हुआ।

भावार्थ - तदनन्तर आनंद श्रमणोपासक ग्यारह प्रतिमाओं के साथ-साथ उग्र, उदार और विपुल मात्रा में उत्कृष्ट तप कर्म करने के कारण शरीर से बहुत कृश, रक्त मांस से रहित एवं शुष्क हो गए। शरीर में इतनी कृशता या क्षीणता आ गई कि उस पर उभरी हुई नाडियाँ दिखने लगीं।

एक दिन आधी रात्रि के बाद धर्म जागरण करते हुए आनंद श्रमणोपासक के मन में इस प्रकार का संकल्प (विचार) उत्पन्न हुआ कि मेरे शरीर में इतनी कृशता आ गई है कि उस पर

उभरी हुई नाड़ियाँ दिखने लगी है। अतः जब तक मेरे शरीर में उत्थान, बल, वीर्य, पुरुषार्थ पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग हैं तथा मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गंधहस्ती के समान विचर रहे हैं तब तक मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं कल सूर्योदय होने पर अंतिम मारणांतिक संलेखना स्वीकार कर लूँ, आहार पानी का प्रत्याख्यान कर दूँ, मरण की कामना न करता हुआ आराधना रत हो जाऊँ।

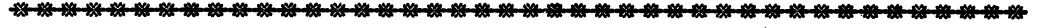
ऐसा विचार कर दूसरे दिन सबेरे अंतिम मारणांतिक संलेखना स्वीकार की तथा मृत्यु की चाहना न करते हुए वह आराधना में लीन हो गया।

आनन्द श्रावक को अवधिज्ञान

तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिणाणे समुप्पण्णे। पुरत्थिमेणं लवणसमुहे पंचजोयणसयाइं खेत्तं जाणइ पासइ, एवं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेण य, उत्तरेणं जाव चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं जाणइ पासइ, उड्ढं जाव सोहम्मं कप्पं जाणइ पासइ, अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं णरयं चउरासीइवाससहस्सट्ठिइयं जाणइ पासइ।

कठिन शब्दार्थ - सुभेणं - शुभ, अज्झवसाणेणं - अध्यवसायों-मनःसंकल्पों से, परिणामेणं - परिणामों - अन्तःपरिणति से, लेसाहिं - लेश्याओं, विसुज्झमाणीहिं - विशुद्ध होती हुई, तदावरणिज्जाणं - तदावरणीय (अवधिज्ञानावरणीय), कम्माणं - कर्मों के, खओवसमेणं - क्षयोपशम होने से, पंचजोयणसयाइं - पांच सौ योजन, खेत्तं - क्षेत्र को, वासहरपव्वयं - वर्षधर पर्वत को, सोहम्मं कप्पं - सौधर्म कल्प (प्रथम देवलोक), लोलुयच्चुयं-लोलुयच्चुय, चउरासीइवाससहस्सट्ठिइयं - चौरासी हजार वर्ष की स्थिति।

भावार्थ - तत्पश्चात् आनन्द श्रमणोपासक को अन्यदा किसी दिन शुभ अध्यवसायों से, शुभ मन-परिणामों से, लेश्याओं की विशुद्धि होने से तथा अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम होने से रूपी पदार्थों को विषय करने वाला अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। उससे वे पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में पाँच सौ-पाँच सौ योजन तक का लवणसमुद्र का क्षेत्र, उत्तर-दिशा में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक का क्षेत्र, ऊर्ध्व-दिशा में पहला देवलोक तथा अधो-दिशा में प्रथम नरक में चौरासी हजार की स्थिति वाले लोलुयच्चुय नरकावास तक का क्षेत्र जानने-देखने लगे।



विवेचन - अवधिज्ञान, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है जिस के द्वारा साधक द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव की एक मर्यादा या सीमा के साथ मूर्त-रूपी पदार्थों को जानता है। अवधिज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम जैसा मंद या तीव्र होता है तदनुसार अवधिज्ञान की व्यापकता होती है।

देवों को और नैरयिकों को जन्म से ही अवधिज्ञान होता है उसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहा जाता है। तप, व्रत प्रत्याख्यान आदि निर्जरामूलक अनुष्ठानों द्वारा अवधिज्ञानावरणीय कर्म पुद्गलों के क्षयोपशम से जो अवधिज्ञान होता है उसे गुणप्रत्यय अवधिज्ञान कहा जाता है। यह मनुष्यों और तिर्यचों को होता है।

प्रस्तुत सूत्र में आनन्द श्रमणोपासक को प्राप्त अवधिज्ञान की विस्तार से चर्चा की गयी है।

गौतम स्वामी का समागम

(१३)

तेणं कालेणं तेणं समणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए, परिसा णिग्गया जाव पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयमगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंसंठाणसंठिए वज्जरिसहणारायसंघयणे कणगपुलगणिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे घोरतवे महातवे उराले घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबम्भचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्त-विउलतेउलेसे छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - सत्तुस्सेहे - सात हाथ के ऊंचे, समचउरंस संठाणसंठिए - समचतुरस्र संस्थान संस्थित, कणगपुलगणिघसपम्हगोरे - कसौटी पर खचित स्वर्ण रेखा की आभा लिए हुए कमल के समान गौर वर्ण वाले, उग्गतवे - उग्र तपस्वी, दित्ततवे - दीप्ततपस्वी - कर्मों को भस्मसात् करने में अग्नि के समान प्रदीप्त तप करने वाले, तत्ततवे - तप्त तपस्वी - जिनकी देह पर तपश्चर्या की तीव्र झलक व्याप्त थी, उराले - उराल - प्रबल-साधना में सशक्त, घोरगुणे- घोर गुण - परम उत्तम-जिनको धारण करने में अद्भुत शक्ति चाहिए- ऐसे गुणों के धारक, घोरतवस्सी - घोर तपस्वी-प्रबल तपस्वी, घोरबंभचेरवासी - घोर ब्रह्मचर्यवासी - कठोर ब्रह्मचर्य के पालक, उच्छूढसरीरे - उत्क्षिप्त शरीर - दैहिक सार संभाल

या सजावट से रहित, संखित्त-विउलतेउलेस्से - संक्षिप्त-विपुल तेजोलेश्या वाले, छट्टं छट्टेणं - बेले-बेले, अणिक्वित्तेणं - लगातार (निरन्तर)।

भावार्थ - उस काल उस समय में (जब आनन्दजी का संथारा चल रहा था) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वाणिज्यग्राम नगर पधारे। परिषद् सेवा में गई। धर्मोपदेश सुन कर लौट गई। तब श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी के प्रधान शिष्य इंद्रभूतिजी (गौतम गौत्र के कारण 'गौतम' के नाम से अधिक प्रख्यात थे) सात हाथ ऊंचे, समचतुरस्रसंस्थान वाले, वज्रत्रक्षभनाराच संहनन वाले, कसौटी पर कसे शुद्ध होने और पद्मपराग के समान गौरवर्ण के थे। उनका तप उग्र, दीप्त (कायरों के लिए लोहे के तपे गोले के समान) तप्त, घोर, महान् और उदार था, हीन सत्त्व वाले उनके गुण सुन कर ही काँपते थे, अतः वे घोर गुणी थे। निरन्तर बेले-बेले का तप करने के कारण वे घोर तपस्वी थे। उनका ब्रह्मचर्य भी बहुत निग्रह प्रदान था। वे शरीर की विभूषा आदि नहीं करते थे, देह-मोहातीत थे। यद्यपि उन्हें विपुल तेजोलेश्या प्राप्त थी, परन्तु उसे वे शरीर में ही संक्षिप्त कर रखते थे, कभी प्रकट करने की इच्छा भी नहीं होती थी। वे निरन्तर बेले-बेले का तप करते हुए अपनी आत्मा को संयम-तप से भावित करते हुए विचरते थे।

तए णं से भगवं गोयमे छट्टक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बिइयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियं अचवलं असंभंते मुहपत्तिं पडिलेहेइ, पडिलेहिता भायणवत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहिता भायणवत्थाइं पमज्जइ, पमज्जिता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - 'इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए छट्टक्खमणस्स पारणगंसि वाणियगामे णयरे उच्चणीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खारियाए अडित्तए'। 'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।'

कठिन शब्दार्थ - पोरिसीए - पोरिसी (प्रहर) में, अतुरियं - अत्वरित-जल्दबाजी न करते हुए, अचवलं - अचपल - स्थिरता पूर्वक, असंभंते - असंभ्रान्त - अनाकुल भाव से-जागरुकता पूर्वक, मुहपत्तिं - मुख वस्त्रिका का, भायणवत्थाइं - पात्रों एवं वस्त्रों का, उच्चणीय मज्झिमाइं - उच्च (धनी) निम्न (निर्धन) मध्यम, घर समुदाणस्स - गृह समुदानी-क्रमागत - किसी भी घर को छोड़े बिना।

भावार्थ - बेले के पारणे के दिन भगवान् गौतम स्वामी ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया, तीसरे प्रहर में चपलता एवं त्वरा रहित, असंभ्रान्त रीति से मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की, पात्रों और वस्त्रों की प्रतिलेखना की, पात्रों का प्रमार्जन कर के ग्रहण किया और जहाँ भगवान् महावीर स्वामी विराज रहे थे, वहाँ आकर के वन्दना-नमस्कार कर बोले- 'हे भगवन्! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं वाणिज्यग्राम नगर में सामुदानिकी भिक्षाचर्या के लिए जाऊँ?' भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया- 'हे देवानुप्रिय! तुम्हें सुख हो, वैसा करो।'

तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसम्भंते जुगंतरपरिलोयणाए दिट्ठीए पुरओ ई(इ)रियं सोहेमाणे जेणेव वाणियगामे णयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वाणियगामे णयरे उच्चणीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडइ।

कठिन शब्दार्थ - जुगंतरपरिलोयणाए - युग परिमाण (चार हाथ प्रमाण मार्ग) परिलोकन करते हुए, ईरियं - ईर्या, सोहेमाणे - शोधन करते हुए, अडइ - घूमने लगे।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर गौतम स्वामी द्युतिपलाश उद्यान से निकल कर अत्वरित, अचपल एवं असंभ्रान्त गति से चार हाथ प्रमाण आगे का क्षेत्र देखते हुए ईर्या समिति पूर्वक वाणिज्य ग्राम नगर में सामुदानिकी भिक्षा के लिए भ्रमण करने लगे।

तए णं से भगवं गोयमे वाणियगामे णयरे जहा पण्णत्तीए तहा जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्तपाणं सम्मं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहित्ता वाणियगामाओ पडिणिग्गच्छइ पडिणिग्गच्छित्ता कोल्लायस्स सण्णिवेसस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे बहुजणसदं णिसामेइ। बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ ४ - 'एवं खलु देवाणुप्पिया! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे णामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिम जाव अणवकंखमाणे विहरइ'।

कठिन शब्दार्थ - पण्णत्तीए - व्याख्याप्रज्ञप्ति, अहापज्जत्तं - यथापर्याप्त-जितना जैसा अपेक्षित था उतना, बहुजणसदं - बहुत से लोगों के शब्दों को, अंतेवासी - अन्तेवासी-शिष्य।

भावार्थ - तब गौतम स्वामी ने व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र में वर्णित भिक्षाचर्या विधान के अनुरूप भिक्षा हेतु घूमते हुए यथापर्याप्त आहार पानी सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया और ग्रहण

कर जब वाणिज्यग्राम के कोल्लाक सन्निवेश के न अधिक दूर न अधिक निकट से चल रहे थे तो बहुत से लोगों को बात करते हुए सुना। वे आपस में यों कह रहे थे - हे देवानुप्रियो! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अंतेवासी आनंद नाम के श्रमणोपासक पौषधशाला में मृत्यु की चाहना न करते हुए अंतिम संलेखना स्वीकार कर विचर रहे हैं।

तए णं तस्स गोयमस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए ४ - 'तं गच्छामि णं आणंदं समणोवासयं पासामि' एवं संपेहेइ, संपेहिता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे जेणेव आणंदे समणोवासए जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ।

भावार्थ - अनेक लोगों से यह बात सुनकर गौतम स्वामी के मन में ऐसा भाव, चिंतन, विचार या संकल्प उठा - मैं आनंद श्रावक के पास जाऊं और उसे देखूं। ऐसा सोच कर वे जहाँ कोल्लाक सन्निवेश था जहाँ पौषधशाला थी, जहाँ श्रमणोपासक आनंद थे वहाँ गए।

तए णं से आणंदे समणोवासए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव हियए भगवं गोयमं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - 'एवं खलु भंते! अहं इमेणं उरालेणं जाव धमणिसंतए जाए, णो संचाएमि देवाणुप्पियस्स अंतियं पाउब्भवित्ता णं तिक्खुत्तो मुद्धानेणं पाए अभिवंदित्तए, तुब्भे णं भंते! इच्छाकारेणं अणभिओएणं इओ चेव एह, जा णं देवाणुप्पियाणं तिक्खुत्तो मुद्धानेणं पाएसु वंदामि णमंसामि' तए णं से भगवं गोयमे जेणेव आणंदे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ।

कठिन शब्दार्थ - तिक्खुत्तो - तीन बार, अभिवंदित्तए - वंदना करने में, इच्छाकारेणं- इच्छा पूर्वक, अणभिओएणं - अनभियोग से-बिना किसी दबाव के, पाएसु - चरणों में।

भावार्थ - आनंद श्रमणोपासक भगवान् गौतम स्वामी को आते हुए देख कर अत्यंत प्रसन्न हुए और उन्हें वंदन नमस्कार कर बोले - हे भगवन्! मैं घोर तपस्या से इतना कृश हो गया हूँ कि मेरे शरीर की नाड़ियाँ दिखने लगी है इसलिए देवानुप्रिय के पास आकर तीन बार मस्तक झुका कर चरणों में वंदना करने में असमर्थ हूँ अतः आप इच्छापूर्वक मेरे सन्निकट पधारने की कृपा करें तो मैं तीन बार मस्तक झुका कर आप देवानुप्रिय के चरणों में वंदना नमस्कार कर सकूँ। तब गौतम स्वामी जहाँ आनंद श्रमणोपासक थे वहाँ गये। उनके निकट पधारे।

आनंद श्रावक का अवधिज्ञान विषयक वार्तालाप

(१४)

तए णं से आणंदे समणोवासए भगवओ गोयमस्स तिकखुत्तो मुद्धानेणं पाएसु वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - 'अत्थि णं भंते! गिहिणो गिहिमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ?' हंता अत्थि। जइ णं भंते! गिहिणो जाव समुप्पज्जइ, एवं खलु भंते! ममवि गिहिणो गिहिमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पण्णे - पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंच जोयणसयाइं जाव लोलुयच्चुयं णरयं जाणामि पासामि।

कठिन शब्दार्थ - गिहिणो - गृहस्थ को, गिहिमज्झावसंतस्स - गृहस्थ अवस्था (घर) में रहते हुए।

भावार्थ - आनंद श्रावक ने तीन बार मस्तक झुका कर गौतम स्वामी के चरणों में वंदना नमस्कार किया। वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोला - हे भगवन्! क्या गृहस्थ अवस्था में रहते हुए एक गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है?

हाँ, हो सकता है।

तब आनंद ने कहा - हे भगवन्! मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है जिससे मैं यहाँ रहा हुआ पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में लवण समुद्र के ५००-५०० तक का क्षेत्र, उत्तरदिशा में चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत तक का क्षेत्र, ऊर्ध्व दिशा में प्रथम देवलोक तक तथा अधोलोक में लोलुयच्चुय नरकावास तक का क्षेत्र जानता देखता हूँ।

क्या सत्य का भी प्रायश्चित्त होता है?

तए णं से भगवं गोयमे आणंदं समणोवासयं एवं वयासी - 'अत्थि णं आणंदा! गिहिणो जाव समुप्पज्जइ, णो चेव णं एमहालए, तं णं तुमं आणंदा! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव तवोकम्मं पडिवज्जाहि'।

कठिन शब्दार्थ - ठाणस्स - स्थान की, आलोएहि - आलोचना करो, तवोकम्मं - तप कर्म, पडिवज्जाहि - स्वीकार करो।

भावार्थ - तब गौतम स्वामी ने आनंद श्रमणोपासक से कहा - हे आनंद! गृहस्थ को अधिज्ञान तो होता है परन्तु इतना विशाल नहीं हो सकता। अतः तुम इस स्थान की आलोचना कर प्रायश्चित्त ग्रहण करो, तदर्थ तपःकर्म स्वीकार करो।

तए णं से आणंदे समणोवासए भगवं गोयमं एवं वयासी - 'अत्थि णं भंते! जिणवयणे संताणं तच्चाणं तहियाणं सब्भूयाणं भावाणं आलोइज्जइ जाव पडिवज्जिइ?' णो इणट्ठे समट्ठे। 'जइ णं भंते! जिणवयणे संताणं जाव भावाणं णो आलोइज्जइ जाव तवोकम्मं णो पडिवज्जिइ तं णं भंते! तुब्भे चेव एयस्स ठाणस्स आलोएह जाव पडिवज्जह'।

कठिन शब्दार्थ - जिणवयणे - जिनशासन में, संताणं - सत्य, तच्चाणं - तत्त्वपूर्ण, तहियाणं - तथ्य-यथार्थ, सब्भूयाणं - सद्भूत, भावाणं - भावों का, आलोइज्जइ - आलोचना स्वीकार करनी होती है, पडिवज्जिइ - प्रतिक्रमण करना होता है।

भावार्थ - आनंद श्रमणोपासक ने भगवान् गौतम स्वामी से निवेदन किया - हे भगवन्! क्या जिनशासन में सत्य, तथ्य, सद्भूत भावों की भी आलोचना प्रायश्चित्त है?

गौतम स्वामी ने कहा - ऐसा नहीं होता।

आनंद ने कहा - हे भगवन्! जिनशासन में सत्य भावों के लिए आलोचना स्वीकार नहीं करनी होती तो हे भगवन्! आप इस मृषास्थान की आलोचना स्वीकार करें।

तए णं से भगवं गोयमे आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए विइगिच्छासमावण्णे आणंदस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव दूइपलासे चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिवज्जिइ, पडिवज्जिइ एणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - 'एवं खलु भंते! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए तं चेव सव्वं कहेइ जाव तए णं अहं संकिए कंखिए वित्तिगिच्छासमावण्णे आणंदस्स समणोवासगस्स अंतियाओ पडिणिक्खमामि, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इहं तेणेव हव्वमागए।

कठिन शब्दार्थ - संकिए - शंका, कंखिए - कांक्षा, विङ्गिच्छा - विचिकित्सा संशय, गमणागमणाए - गमनागमन का, ऐसणमणेसणं - एषणीय-अनेषणीय की, आलोएइ-आलोचना की, पडिदंसइ - दिखलाया।

भावार्थ - आनन्द श्रमणोपासक के इस प्रकार कहने पर भगवान् गौतम के मन में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न हुई। वे आनंद के पास से रवाना होकर द्युतिपलाश चैत्य में जहाँ भगवान् महावीर स्वामी थे वहाँ आए, आकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के न अधिक दूर और न अधिक निकट गमनागमन का प्रतिक्रमण किया, एषणीय अनेषणीय की आलोचना की। आलोचना कर आहार पानी दिखलाया और वंदना नमस्कार कर इस प्रकार कहा - हे भगवन्! मैं आप की आज्ञा ले कर भिक्षा के लिए गया यावत् आनंद श्रावक से हुआ वार्तालाप कहा। इस घटना के बाद मैं शंका, कांक्षा, विचिकित्सा युक्त होकर आनंद श्रावक के पास से चल कर यहां शीघ्र आया हूँ।

गौतम स्वामी की शंका का समाधान

तं णं भंते! किं आणंदेणं समणोवासणं तस्स ठाणस्स आलोएयव्वं जाव पडिवज्जेयव्वं उदाहु मए?’

‘गोयमाइ! समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी - ‘गोयमा! तुमं चेव णं तस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेहि’।

भावार्थ - हे भगवन्! उक्त स्थान-आचरण के लिए क्या श्रमणोपासक आनन्द को आलोचना करनी चाहिये या मुझे?

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहा - हे गौतम! आनन्द का कथन यथार्थ है। अतः तुम ही उस कथन की आलोचना कर प्रायश्चित्त करो तथा आनंद श्रमणोपासक से क्षमायाचना भी करो।

गणधर गौतम की क्षमायाचना

तए णं से भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स ‘तहत्ति’ एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिवज्जइ, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेइ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

भावार्थ - गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का कथन 'आप ठीक फरमाते हैं' यों कह कर विनय पूर्वक सुना। सुन कर उस स्थान-आचरण के लिए आलोचना स्वीकार की और श्रमणोपासक आनंद से अपने कथन के लिए क्षमायाचना की।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी किसी समय अन्य जनपदों में विहार कर गए।

विवेचन - यह उपासकदशांग सूत्र भगवान् सुधर्मा स्वामी की रचना है। उन्होंने इसमें गौतम स्वामी का यह प्रसंग क्यों दिया? इस प्रश्न के उत्तर में ज्ञानी फरमाते हैं कि तीर्थंकरों से तो कोई भूल होती ही नहीं है। उनके बाद गणधरों में गौतम स्वामी का अग्र स्थान था। भगवान् के प्रथम-प्रधान शिष्य द्वारा एक श्रावक से क्षमा-याचना करना साधारण बात नहीं है। इस दृष्टान्त से यह सिद्धि होती है कि चाहे कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो तथा अगला व्यक्ति कितना ही छोटा क्यों न हो, भूल को भूल मानना यही सम्यक्त्व की भूमिका एवं सिद्धि का प्रथम सोपान है। 'मैं बड़ा हूँ, छोटे के सामने मेरी नम्रता क्यों?' यह भावना विकास की अवरोधक है।

प्रश्न - क्या गौतम स्वामी चार ज्ञान चौदह पूर्वधर नहीं थे? यदि थे तो ऐसी कथन-स्खलना कैसे संभव है?

समाधान - आनन्दजी के क्षमा-याचना प्रसंग से पूर्व ही गौतम स्वामी चार ज्ञान एवं चौदह पूर्व धारक थे। दशवैकालिक सूत्र अ० ८ गाथा ५० में कहा गया है -

आचारपण्णतिघटं, द्विट्ठिवायमहिज्जागं।

वायविकञ्चलियं णच्चा, ण तं उवहसे मुणी॥

- "आचार-प्रज्ञप्ति के ज्ञाता और दृष्टिवाद के अध्येता भी बोलते समय प्रमादवश वचन से स्खलित हो जाये, तो उनके अशुद्ध वचन को जान कर साधु उन महापुरुषों का उपहास न करे।"

अतः गौतम स्वामी का उक्त कथन चार ज्ञान चौदह पूर्व में बाधक नहीं है। सत्य बोलने के भाव रखते हुए भी उपयोग नहीं पहुँचने से असत्य भाषण हो जाये तो शास्त्रकार उन्हें आराधक मानते हैं, विराधक नहीं।

गौतम स्वामी ने पारणा भी बाद में किया, पहले क्षमा-याचना की। आगमों के ये देदीप्यमान ज्वलंत उदाहरण 'भूल को भूल स्वीकार करने की' आदर्श प्रेरणा देते हैं।

समाधि मरण-देवलोक गमन

(१५)

तए णं से आणंदे समणोवासए बहूहिं सीलव्वएहिं जाव अप्पाणं भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरच्छिमेणं अरुणे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं आणंदस्सवि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - बहूहिं सीलव्वएहिं - बहुत से शीलव्रत आदि से, समणोवासग-परियागं - श्रमणोपासक पर्याय का, पाउणित्ता - पालन कर, समाहिपत्ते - समाधि पूर्वक, सोहम्मवडिंसगस्स - सौधर्मावतंसक के, देवत्ताए - देव रूप में।

भावार्थ - आनंद श्रमणोपासक ने शीलव्रत आदि बहुत-से धार्मिक अनुष्ठानों से आत्मा को भावित करते हुए बीस वर्ष तक श्रावक-पर्याय का पालन किया, उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं का सम्यक् पालन किया, मासिकी संलेखना से शरीर व कषायों को क्षीण कर साठ भक्त तक अनशन का त्याग कर (सम्पूर्ण जीवन में लगे) दोषों की आलोचना कर योग्य प्रायश्चित्त-प्रतिक्रमण किया तथा आत्म समाधि युक्त काल कर के प्रथम देवलोक 'सौधर्म कल्प' के सौधर्मावतंसक महाविमान के ईशानकोण में स्थित अरुण नामक विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ कई देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है, तदनुसार आनन्द देव की स्थिति भी चार पल्योपम की है।

विवेचन - श्रमणोपासक आनन्दजी की सत्वशीलता, निर्भीकता, स्पष्टता और सत्य प्रकट करने का साहस अनुकरणीय है। उन्हें जितना अवधिज्ञान हुआ, उतना गौतम स्वामी से निवेदन किया। अनुपयोगवश गौतम स्वामी ने उन्हें प्रायश्चित्त का फरमाया तो उन्होंने यह विचार नहीं किया कि 'ये भगवान् के प्रथम गणधर, प्रधान शिष्य तथा मुख्य अंतेवासी हैं। मैं इनका कहा मान कर प्रायश्चित्त ले लूँ। कदाचित् मेरी बात ठीक न हो। क्या ये झूठ कह सकते हैं?' उन्होंने

निर्भीकतापूर्वक स्पष्ट निवेदन किया कि 'जिनशासन की यह रीति-नीति नहीं रही। यहाँ सच्चे को सच्चा एवं निर्दोष को निर्दोष माना गया है। मैंने तो जैसा देखा, वैसा निवेदन किया है।'

उपसंहार

आणंदे णं भंते! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं
ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?
गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ॥ णिक्खेवो ॥

॥ पढमं अज्झयणं समत्तं ॥

कठिन शब्दार्थ - आउक्खएणं - आयुष्य के क्षय - आयुष्य कर्म के प्रदेशों के क्षय से भवक्खएणं - भव के क्षय - भव के निबंधन भूत, गति, जाति आदि नाम कर्म की प्रकृतियों के क्षय - से, ठिइक्खएणं - आयुर्कर्म की स्थिति के क्षय से, णिक्खेवो - निक्षेप।

भावार्थ - गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से पूछा - 'हे भगवन्! आनंद उस देवलोक से आयु, भव एवं स्थिति का क्षय होने पर देव शरीर का त्याग कर कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा?'

भगवान् ने फरमाया - 'हे गौतम! आनंद महाविदेह क्षेत्र में जन्म धारण कर सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखों का क्षय करेगा।'

निक्षेप - आर्य सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उपासकदशांग सूत्र के प्रथम अध्ययन का यह भाव फरमाया जो मैंने तुम्हें बतलाया है।

॥ प्रथम अध्ययन समाप्त ॥

विवेचन - गृहस्थावस्था में रहते हुए भी किस प्रकार प्रवृत्ति में निवृत्ति भाव धारण करना, किस प्रकार धर्म आराधना करते हुए आध्यात्मिक विकास करना, इसका सुंदर मार्गदर्शन आनंद श्रावक के इस प्रथम अध्ययन में है। आत्म विकास के इच्छुक प्रत्येक गृहस्थ को आनंद श्रावक की तरह जीवन के अंतिम भाग में घर धंधों से पूर्णतया निवृत्त होकर धर्म आराधना में ही लग जाना चाहिये और अपना आत्म-कल्याण करना चाहिये, यही प्रस्तुत अध्ययन का सार संक्षेप है।

॥ आनंद श्रावक नामक प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण ॥

बीयं अज्झयणं - द्वितीय अध्ययन

श्रमणोपासक कामदेव

(१६)

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?

भावार्थ - जम्बू स्वामी ने आर्य सुधर्मा स्वामी से पूछा - हे भगवन्! सिद्धि प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें अंग उपासकदशा के प्रथम अध्ययन में जो भाव फरमाए, वे मैंने आपके मुखारविंद से सुने। हे भगवन्! दूसरे अध्ययन में प्रभु ने क्या भाव फरमाए हैं?

कामदेव की संपदा

एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था। पुण्णभदे चेइए। जियसत्तू राया। कामदेवे गाहावइ। भद्दा भारिया। छ हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ, छ वुट्ठिपउत्ताओ, छ पवित्थरपउत्ताओ। छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं।

भावार्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी ने फरमाया - हे जंबू! इस अवसर्पिणीकाल के चौथे आरे में जब भगवान् महावीर स्वामी विचर रहे थे, उस समय चम्पा नाम की नगरी थी, पूर्णभद्र उद्यान था, जितशत्रु राजा राज्य करते थे, 'कामदेव' नामक गाथापति थे, जिनकी पत्नी का नाम 'भद्रा' था। कामदेव के पास छह करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं जितना धन निधान के रूप में सुरक्षित था, इतना ही व्यापार में तथा इतना ही घर-बिखरी के रूप में फैला हुआ था। गायों के छह वज्र थे। एक वज्र में दस हजार गायें होती हैं।

श्रावक धर्म की आराधना

समोसरणं। जहा आणंदो तहा णिग्गओ, तहेव सावयधम्मं पडिवज्जइ। सा

चेव वत्तव्वया जाव जेट्ठपुत्तं मित्तणाइं (आपुच्छइं) आपुच्छित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा आणंदो जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - धम्मपण्णत्तिं - धर्मप्रज्ञप्ति - निवृत्तिमय धर्म साधना, धर्मशिक्षा के अनुरूप उपासना।

भावार्थ - भगवान् महावीर स्वामी चम्पा पधारे। परिषद् धर्म सुनने के लिए गई। आनन्द के समान कामदेव भी गए, यावत् श्रावक व्रत ग्रहण किए। कालान्तर में ज्येष्ठ-पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर पौषधशाला में भगवान् द्वारा बताई गई धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार कर धर्म-साधना करने लगे।

देवकृत उपसर्ग - पिशाच रूप

(१७)

तए णं तस्स कामदेवस्स समणोवासगस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे मायी मिच्छद्दिट्ठी अंतियं पाउब्भूए। तए णं से देवे एगं महं पिसायरूवं विउव्वइ। तस्स णं देवस्स पिसायरूवस्स इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते।

कठिन शब्दार्थ - मायीमिच्छद्दिट्ठी - मायी मिथ्यादृष्टि, पाउब्भूए - प्रकट हुआ, पिसायरूवं - पिशाच रूप की, विउव्वइ - विकुर्वणा, वण्णावासे - वर्णन।

भावार्थ - तदनन्तर उस कामदेव श्रमणोपासक के पास मध्य रात्रि के समय एक मायी मिथ्यादृष्टि देव प्रकट हुआ। उसने एक विशाल पिशाच रूप की विकुर्वणा की। उस पिशाच का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है -

सीसं से गोकिलंजसंठाणसंठियं, सालिभसेल्लसरिसा से केसा कविलतेएणं दिप्पमाणा, महल्लउट्टियाकभल्लसंठाणसंठियं णिडालं मुगुंसपुंछं व तस्स भुमगाओ फुग्गफुग्गाओ विगयबीभच्छदंसणाओ, सीसघडिविणिग्गयाइं अच्छीणि विगयबीभच्छदंसणाइं। कण्णा जह सुप्पकत्तरं चेव विगयबीभच्छदंसणिज्जा, उरब्भपुडसण्णिभा से णासा, झुसिरा जमलचुल्लीसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स णासापुडया, घोडयपुंछं व तस्स मंसूइं कविलकविलाइं विगयबीभच्छदंसणाइं।

कठिन शब्दार्थ - सीसं - मस्तक, गोकिलंजसंठाणसंठियं - गोकिलंज संस्थान संस्थित-गाय को बांटा खिलाने के बड़े टोकरे को औंधा रखने पर जो आकार बनता है उनके समान, दिप्पमाणा - चमकीले, विगय - विकृत, बीभच्छ - वीभत्स-घृणोत्पादक, अच्छीणि - आंखें, कण्णा - कान, सुप्पकत्तरं - सूप के टुकड़ों के समान, घोडयपुंछं - घोड़े की पूँछ, मंसूइं - दाढ़ी मूँछ के बाल।

भावार्थ - उस पिशाच का मस्तक गोकिलंज-गाय आदि को बाँटा खिलाने के बड़े टोकरे को औंधा रखने पर जो आकार बनता है, उसके समान था। उसके केश चावल के तुस के वर्ण वाले (पिंगल वर्ण वाले) चमकीले थे। ललाट का आकार ऐसा था कि मानो बड़े घड़े का नीचे का हिस्सा हो। गिलहरी की पूँछ के समान परस्पर बिना मिली भयंकर भौंहें थीं। दोनों आँखें घड़े के मुख जैसी विशाल तथा डरावनी थीं। कानों का आकार सूप के टुकड़ों के समान था। भेड़ की नाक के समान या 'हुरभ्र' नामक वाद्य के समान चपटी नाक थी। नासिका के दोनों छिद्र बड़ी-बड़ी मिली हुई भट्टियों के समान लगते थे। दाढ़ी-मूँछ के बाल घोड़े की पूँछ के समान कठोर थे।

उट्टा उट्टस्स च्चव लंबा, फालसरिसा से दंता, जिब्भा जहा सुप्पकत्तरं च्चव विगयबीभच्छदंसणिज्जा, हलकुद्दालसंठिया से हणुया, गल्लकडिल्लं च तस्स खड्डं फुट्टं कविलं फरुसं महल्लं, मुडंगाकारोवमे से खंधे, पुरवरकवाडोवमे से वच्छे, कोट्टियासंठाणसंठिया दो वि तस्स बाहा, णिसापाहाणसंठाणसंठिया दोवि तस्स अग्गहत्था, णिसालोढसंठाणसंठियाओ हत्थेसु अंगुलीओ।

कठिन शब्दार्थ - उट्टा - होठ, उट्टस्स - ऊँट के, फालसरिसा - फावड़े के समान, हलकुद्दालसंठिया - हल की नोक की तरह आकार वाली, हणुया - टुड्डी, खड्डं - खड्डों जैसे, फुट्टं - फटे हुए, कविलं - भूरे रंग के, फरुसं - कठोर, महल्लं - विकराल, मुडंगाकारोवमे - मृदंग जैसे, पुरवरकवाडोवमे - नगर के फाटक के समान चौड़ी, वच्छे - वक्षस्थल, कोट्टियासंठाणसंठिया - कोष्ठिका (मिट्टी की कोठी) संस्थान संस्थित, णिसापाहाणसंठाणसंठिया - मूंग आदि दलने की चक्की के पाट जैसी, अग्गहत्था - अग्रहस्त-हथेलियां, णिसालोढसंठाणसंठियाओ - लोढ़ी के आकार वाली।

भावार्थ - ऊँट के समान लम्बे होठ थे। लोहे की कुश या फावड़े के समान लम्बे-लम्बे, दाँत थे। सूप के टुकड़े के समान भयंकर लम्बी जीभ थी (मुख के भीतर ऐसी लालिमा थी,

मनो हिंगुल की खान हो-पाठान्तर) हल की लकड़ी के समान बहुत टेढ़ी तथा लम्बी ठोड़ी थी, लोहे के कड़ाह के समान मध्य में खड़े वाले, कुत्ते के समान फटे हुए बड़े कर्कश गाल थे, स्कंध फूटे मृदंग के समान थे, नगर के द्वार (किंवाड़) जैसी विशाल छाती थी, धान्य भरने की मिट्टी की कोठी के समान विशाल भुजाएँ थीं। मूंग आदि पीसने की शिला के समान विशाल एवं स्थूल हाथ थे। लोढ़ी के समान हाथों की अंगुलियाँ थीं।

सिप्पिपुडगसंठिया से णक्खा, ण्हावियपसेवओ व्व उरंसि लंबंति दोऽवि तस्स थणया, पोट्टं अयकोट्टओ व्व वट्टं, पाणकलंदसरिसा से णाही, सिक्कगसंठाणसंठिया से णेत्ते, किण्णपुडसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स वसणा, जमलकोट्टियासंठाणसंठिया दोऽवि तस्स उरू।

कठिन शब्दार्थ - सिप्पिपुण्डगसंठिया - सीप पुट संस्थित, णक्खा - नाखून, ण्हावियपसेवओव्व उरंसि लंबंति - नाई की उस्तरा आदि राछ डालने की चमडी की थैली-रखानी की तरह छाती पर लटकते हुए, अयकोट्टओ - लोहे का कोष्ठक (कोठे) के समान, पाणकलंदसरिसा - मांड के बर्तन के समान गहरी, वसणा - वृषण (अण्डकोष), जमलकोट्टियासंठाणसंठिया - एक जैसी दो कोठियों के आकार की, उरू - जंचा।

भावार्थ - सीप-संपुट या किले के बुर्ज के समान तीखे और लम्बे नाखून थे। नाई के उस्तरा आदि रखने की चमड़े की थैली के समान छाती में लटकते लम्बे स्तन थे। लोहे की कोठी जैसा गोल पेट था, पानी की कुण्डी की भाँति गहरी नाभि थी, (भग्न कटि वाले विरूप तथा टेढ़े दोनों नितम्ब थे-पाठान्तर) छींके के समान लटकता पुरुषचिह्न था, चावल आदि भरने की गोणी के समान अण्डकोष थे, धान भरने की कोठी के समान लम्बी जंचाएँ थीं।

अज्जुणगुट्ठं व तस्स जाणूइं कुडिलकुडिलाइं विगयबीभच्छंदसणाइं, जंचाओ कक्खडीओ लोमेहिं उवचियाओ, अहरीसंठाणसंठिया दोऽवि तस्स पाया, अहरीलोढसंठाणसंठियाओ पाएसु अंगुलीओ, सिप्पिपुडसंठिया से णक्खा, लडहमडहजाणुए विगयभग्गभुग्गभुमए।

कठिन शब्दार्थ - अज्जुणगुट्ठं - अर्जुनवृक्ष विशेष के गुट्टे, अहरीसंठाणसंठिया - दाल पीसने की शिला समान, लडहमडहजाणुए - छोटे और बैडोल घुटने, विगयभग्गभुग्गभुमए - भौहें विकृत, भग्न (खण्डित) भुग्न (कुटिल या टेढ़ी)।

भावार्थ - अर्जुन वृक्ष की गाँठ के समान कुटिल एवं बहुत वीभत्स घुटने थे। घुटने के नीचे का भाग मांस-रहित तथा कठोर रोमावली वाला था। पाँव मसाला पीसने की शिला के समान थे। लोढ़ी के समान अंगुलियाँ थीं, सीप-संपुट के समान नाखून थे, गाड़ी के पिछले भाग में लटकते काष्ठ के समान छोटे तथा बेडोल घुटने थे, भृकुटी बड़ी भयावनी और कठोर थी (विकराल टेढ़ी, कृष्ण मेघ के समान काली भौहें थीं, लम्बे होठों से दाँत बाहर निकले हुए थे-पाठान्तर)।

अवदालिय-वयण-विवर-णिल्लालियगजीहे सरडकयमालियाए उंदुरमाला-परिणद्धसुकयचिंधे णउलकयकण्णपूरे सप्पकयवेगच्छे ।

भावार्थ - उसने अपना दरार जैसा मुँह फाड़ रखा था, जीभ बाहर निकाल रखी थी। वह गिरगिटों की माला पहने था। चूहों की माला भी उसने धारण कर रखी थी, जो उसकी पहचान थी। उसके कानों में कुण्डलों के स्थान पर नेवले लटक रहे थे। उसने अपनी देह पर साँपों को दुपट्टे की तरह लपेट रखा था।

अप्फोडंते अभिगज्जंते भीममुक्कट्टहासे णाणाविहपंचवण्णेहिं लोमेहिं उवचिए एगं महं णीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं असिं खुरधारं गहाय जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे समणोवासए तेणेव उवांगच्छइ, उवागच्छित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चण्डिक्किए मिसिमिसीयमाणे कामदेवं समणोवासं एवं वयासी -

कठिन शब्दार्थ - णीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं - नील कमल, भैंसे के सींग तथा अलसी के फूल जैसी नीली, आसुरत्ते - अत्यन्त क्रुद्ध, रुट्ठे - कुपित, चण्डिक्किए-विकराल होता हुआ, मिसिमिसीयमाणे - मिसमिसाहट करता हुआ।

भावार्थ - इस प्रकार भयंकर रूप बना कर भीम, उत्कृष्ट अट्टहास कर के करतल से स्फोटन करता हुआ, मेघ के समान गर्जना करता हुआ, पाँचों रंगों वाले लोमों सहित, नील कमल के समान, भैंसे के सींग के समान, अलसी के कुसुम तथा नील के समान प्रभा वाली तीक्ष्ण धार वाली तलवार हाथ में ग्रहण कर के जहाँ कामदेव श्रमणोपासक की पौषधशाला थी, वहाँ वह देव आया और भयंकर क्रोधाभिभूत हो कर मिसमिसाहट करता हुआ कहने लगा।

‘हं भो कामदेवा! समणोवासया! अप्पत्थियपत्थिया दुरंतपंतलक्खणा

हीणपुण्णचाउद्दसिया हिरिसिरिधिइकित्तिपरिवज्जिया धम्मकामया पुण्णकामया सग्गकामया मोक्खकामया धम्मकंखिया पुण्णकंखिया सग्गकंखिया मोक्खकंखिया धम्मपिवासिया पुण्णपिवासिया सग्गपिवासिया मोक्खपिवासिया णो खलु कप्पइ तव देवाणुप्पिया! जं सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं चालित्तए वा खोभित्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिच्चइत्तए वा, तं जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं जाव पोसहोववासाइं ण छड्डेसि ण भंजेसि तो ते अहं अज्ज इमेणं णीलुप्पल जाव असिणा खण्डाखण्डिं करेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया! अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि' ।

कठिन शब्दार्थ - अपत्थियपत्थिया - अप्रार्थित प्रार्थित - जिसे कोई नहीं चाहता उस मृत्यु को चाहने वाले, दुरंतपंतलक्खणा - दुःखद अंत तथा अशुभ लक्षण वाले, हीणपुण्णचाउद्दसिया - पुण्यं चतुर्दशी जिस दिन हीन थी उस अशुभ दिन, हिरि-सिरि-धिइ-कित्ति परिवज्जिया - लज्जा, शोभा, धृति तथा कीर्ति से परिवर्तित, धम्मकामया - धर्म की कामना रखने वाले, सग्गकामया - स्वर्ग की कामना रखने वाले, धम्मकंखिया - धर्म की इच्छा रखने वाले, मोक्खकंखिया - मोक्ष की इच्छा रखने वाले, पुण्णपिवासिया - पुण्य की पिपासा-उत्कण्ठा रखने वाले, चालित्तए - चलित होना, खोभित्तए - क्षोभित होना, खंडित्तए - खंडित करना, भंजित्तए - भंग करना, उज्झित्तए - उज्झित करना, परिच्चइत्तए - परित्याग करना, छड्डेसि - त्याग करोगे, भंजेसि - तोड़ोगे, असिणा - तलवार से, खंडाखंडिं-खण्ड खण्ड, अट्टदुहट्टवसट्टे - आर्त्तध्यान एवं विकट दुःख से पीड़ित होकर।

भावार्थ - अरे हे कामदेव श्रमणोपासक! जिसकी कोई चाहना नहीं करता, उस मृत्यु की चाहना करने वाले! दुष्ट एवं हीन लक्षणों वाले! हीन चतुर्दशी को जन्मे। लज्जा, लक्ष्मी, धैर्य और कीर्ति से रहित। धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करने की कामना-आकांक्षा वाले, तीव्र इच्छा युक्त पिपासु, हे देवानुप्रिय! तुझे धारण किए शीलव्रत, अणुव्रत, गुणव्रत तथा पौषधोपवास आदि श्रावक व्रतों से विचलित होना, क्षुभित होना, देश रूप से खण्डना करना, भंग करना, उपेक्षापूर्वक त्याग देना, पूर्णरूप से त्याग कर देना नहीं कल्पता है। परन्तु यदि आज तू इन व्रतों से विचलित नहीं होगा, यावत् परित्याग नहीं करेगा तो इस नीलकमल जैसी तीक्ष्ण तलवार से तेरे खण्ड-खण्ड कर दूंगा, जिससे तू आर्त्तध्यान युक्त होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त होगा।

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं पिसायरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए अतत्थे अणुव्विगे अक्खुभिए अचलिए असंभंते तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - अभीए - अभीत-भयभीत नहीं, अतत्थे - अत्रस्त, अणुव्विगे - अनुद्विग्न, अक्खुभिए - अक्षुभित, अचलिए - अविचलित, असंभंते - अनाकुल, तुसीणीए-शांत, धम्मज्झाणोवगए - धर्म ध्यान में उपगत-संलग्न।

भावार्थ - कामदेव श्रमणोपासक उस पिशाच रूपधारी देव के ये वचन सुन कर भयभीत नहीं हुए, त्रास को प्राप्त नहीं हुए, उद्विग्न नहीं हुए, क्षुभित नहीं हुए, शुभ परिणामों से चलित नहीं हुए और कायिक चेष्टाओं से भी संभ्रान्त नहीं हुए, किन्तु शान्तिपूर्वक धर्मध्यान करते रहे।

(१८)

तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ, पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी - 'हं भो कामदेवा! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया जइ णं तुमं अज्ज जाव ववरोविज्जसि।'

भावार्थ - पिशाच का रूप धारण किये हुए देव ने कामदेव श्रमणोपासक को निर्भय यावत् धर्मध्यान में निरत देखा तो दूसरी बार और तीसरी बार कहा कि हे अप्रार्थितप्रार्थी श्रमणोपासक कामदेव! यावत् तलवार से टुकड़े टुकड़े कर दूंगा जिससे हे देवानुप्रिय! तुम असमय ही प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

भावार्थ - श्रमणोपासक कामदेव उस देव द्वारा दूसरी बार, तीसरी बार यों कहे जाने पर भी निर्भय रहा, अपने धर्मध्यान में संलग्न रहा।

तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते (५) तिवलियं भिउडिं णिडाले साहट्टु कामदेवं समणोवासयं णीलुप्पल जाव असिणा खण्डाखण्डिं करेइ। तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ जाव अहियासेइ।

कठिन शब्दार्थ - तिवलियं - त्रिवलिक-तीन बल (सल), भिउडिं - भृकुटि, दुरहियासं-दुसह्य, अहियासेइ - सहन किया।

भावार्थ - पिशाच रूप देव ने कामदेव श्रावक को निर्भय भाव से धर्म ध्यान में रत देखा तो वह अत्यंत क्रुद्ध हुआ, उसके ललाट पर तीन सल बन गए, भृकुटि तन गई और अपने नील कमल के समान उस तीक्ष्ण धार वाले खड्ग से शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दिये। श्रमणोपासक कामदेव ने उस तीव्र तथा दुःसह वेदना को समभाव से सहन किया।

हस्ती रूप से घोर उपसर्ग

(१६)

तए णं से देवे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता जाहे णो संचाएइ कामदेवं समणोवासयं णिगंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे संते तंते परितंते सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं पिसायरूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं हत्थिरूवं विउव्वइ।

कठिन शब्दार्थ - संते - श्रान्त, तंते - क्लान्त, परितंते - खिन्न, सणियं - धीरे, पच्चोसक्कइ - हटता है, दिव्वं - दिव्य, विप्पजहइ - त्याग करता है, हत्थि रूवं - हस्ति रूप की, विउव्वइ - विकुर्वणा करता है।

भावार्थ - उस पिशाच रूपधारी देव ने कामदेव को भय रहित यावत् धर्मध्यान करते देखा। जब वह उन्हें निर्ग्रन्थ-प्रवचन से चलित, क्षुभित और विपरिणामित नहीं कर सका, तो वह लज्जा और ग्लानि से थक कर शनैः-शनैः पौषधशाला से बाहर निकला। उसने पिशाच रूप त्याग कर एक महान दिव्य हाथी का रूप बनाया।

सत्तंगपइट्ठियं सम्मं संठियं सुजायं पुरओ उदगं पिट्ठओ वराहं अयाकुच्छिं अलंबकुच्छिं पलंबलंबोदराधरकरं अब्भुग्गयमउलमल्लियाविमलधवलदंतं कंचणकोसीपविट्ठदंतं आणामियचावललियसंवल्लियग्गसोण्डं कुम्मपडिपुण्ण-

चलणं वीसङ्गकखं अल्लीणपमाणजुत्तपुच्छं मत्तं मेहमिव गुलगुल्लेंतं मणपवण-
जङ्गवेगं दिव्वं हत्थिरूवं विउव्विइ, विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे
समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी।

कठिन शब्दार्थ - सत्तंगपइट्टियं - सुपुष्ट सात अंगों (चार पैर, सूंड, जननेन्द्रिय, पूँछ) से प्रतिष्ठित, सम्मं संठियं - देह रचना सुगठित, सुजायं - सुंदर, पुरओ - आगे, उदगं - उदग्र-ऊँचा, पिट्टओ - पीछे, वराहं - सूअर, अयाकुच्छिं - बकरी की कुक्षि, पलंबलंबोदराधरकरं - नीचे का होठ और सुण्ड लम्बे, अब्भुगय मउल मल्लिया विमल धवलदंतं - मुँह से बाहर निकले हुए दांत बेले की अधखिली कली के समान उजले और सफेद, कंचणकोसीपविट्टदंतं - सोने की म्यान में प्रविष्ट दांत यानी सोने की खोल चढ़ी हुई, आणामिय-चाव-ललिय संवलियग-सोंडं - सूंड का अगला भाग खींचे हुए धनुष की तरह सुंदर रूप से मुड़ा हुआ, कुम्मपडिपुण्णचलणं - कछुए के समान प्रतिपूर्ण-परिपुष्ट पैर, वीसङ्गकखं - बीस नाखून, अल्लीणपमाणजुत्तपुच्छं - सुंदर तथा प्रमाणोपेत पूँछ, मत्तं - उन्मत्त, मेहमिव - बादल की तरह, गुलगुल्लेंतं - गर्जन करता हुआ, मणपवणजङ्गवेगं - मन और पवन के वेग को जीतने वाला।

भावार्थ - वह हाथी चार पांव, सूंड, पूँछ और लिंग ये सातों अंग भूमि का स्पर्श करते थे, इस प्रकार वह हाथी सप्तमांग प्रतिष्ठित था। अंगोपांग सुन्दर और प्रमाणोपेत थे, आगे की ओर मस्तक ऊँचा था, पृष्ठ भाग सूअर के समान पुष्ट था, उसकी कुक्षि बकरी के समान अलंब थी, गजानन के समान होठ लम्बे और लटक रहे थे, दाँत मल्लिका (नवीन विकसित बेला) के फूल के समान स्वच्छ श्वेत तथा स्वर्ण की चूड़ियों वाले थे, कुछ नमाए हुए धनुष के समान चपल सूंड का अग्रभाग था, कछुए के समान संकुचित चरण थे, बीसों नाखून थे, पूँछ भी प्रमाणोपेत थी, श्रावण के बादलों के समान गम्भीर गर्जना करता हुआ मन एवं पवन के समान शीघ्र-गति युक्त हाथी का रूप बना कर कामदेव श्रमणोपासक के समक्ष आया और कामदेव श्रमणोपासक से कहने लगा।

‘हं भो कामदेवा! समणोवासया! तहेव भणइ जाव ण भंजेसि, तो ते अज्ज अहं सोण्डाए गिण्हामि, गिण्हित्ता पोसहसालाओ णीणेमि, णीणेत्ता उइढं वेहासं उव्विहामि, उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छामि, पडिच्छित्ता

अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेमि, जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि'।

कठिन शब्दार्थ - वेहासं - आकाश में, उव्विहामि - उछालूंगा, तिक्खेहिं - तीक्ष्ण, दंतमुसलेहिं - मूसल जैसे दांतों से, पडिच्छामि - झेलूंगा, अहे धरणि तलंसि - नीचे पृथ्वी तल पर, पाएसु - पांवों द्वारा, लोलेमि - रोंदूंगा।

भावार्थ - हे कामदेव! यदि तू श्रावक-व्रतों का भंग नहीं करेगा, तो मैं तुझे सूँड से पकड़ कर पौषधशाला से बाहर ले जाऊँगा और आकाश में ऊँचा फेंक दूँगा तथा नीचे गिरते समय मेरे तीक्ष्ण दाँतों पर झेल कर नीचे भूमि पर गिरा दूँगा तथा तीन बार पाँवों तले कुचलूँगा। जिससे तू आर्त्तध्यान करता हुआ अकाल में मर जायेगा।

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं हत्थिरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ। तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी- हं भो कामदेवा! तहेव जाव सोऽवि विहरइ।

भावार्थ - हाथी का रूप धारण किये हुए देव द्वारा यों कहे जाने पर भी कामदेव श्रमणोपासक निर्भय भाव से धर्मोपासना में रत रहे। तब उस हाथी रूपधारी देव ने कामदेव श्रमणोपासक को निर्भीक रूप से धर्मध्यान में निरत देखा तो उसने कामदेव श्रावक को दूसरी बार तीसरी बार उपर्युक्त वचन कहे, पर श्रमणोपासक कामदेव पूर्ववत् निर्भयता पूर्वक धर्मध्यान में रत रहे।

तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्टे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे कामदेवं समणोवासयं सोण्डाए गिण्हइ, गिण्हित्ता उड्ढं वेहासं उव्विहइ, उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेइ। तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ।

कठिन शब्दार्थ - सोँडाए - सूण्ड से, उज्जलं - तीव्र।

भावार्थ - हस्तीरूपधारी उस देव ने जब कामदेव श्रमणोपासक को धर्मध्यान ध्याते

अविचल देखा तो देव ने कुपित हो कर कामदेव को सूंड से पकड़ा और पकड़ कर ऊँचा आकाश में उछाला और उछाल कर नीचे गिरते हुए को अपने तीक्ष्ण और मूसल जैसे दांतों से झेला और झेल कर नीचे धरती पर पटक कर तीन बार पांवों तले कुचला। इससे कामदेव को असह्य वेदना हुई परन्तु कामदेव ने इस वेदना को समभाव से सहन की।

सर्प रूप देव उपसर्ग

(२०)

तए णं से देवे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं जाहे णो संचाएइ जाव सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं हत्थिरूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एणं महं दिव्वं सप्परूवं विउव्वइ-उग्गविसं चण्डविसं घोरविसं महाकायं मसीमूसाकालगं णयण-विसरोसपुण्णं अंजणपुंजणिगरप्पगासं रत्तच्छं लोहियलोयणं जमलजुयलचंचलजीहं धरणीयलवेणिभूयं उक्कडफुडकुडिलजडिलकक्कसवियडफडाडोवकरणदच्छं लोहागरधम्ममाणधमधमेंतघोसं अणागलियतिव्वचंडरोसं सप्परूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला जेणेव कामदेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी।

कठिन शब्दार्थ - उग्गविसं - उग्र विष, चण्डविसं - चण्डविष, घोरविसं - घोरविष, महाकाय - विशाल आकार का, मसीमूसाकालगं - स्याही और मूस-धातु गलाने के पात्र-जैसा काला, णयणविसरोसपुण्णं - विष और क्रोध से भरे नेत्र, अंजणपुंजणिगरप्पवासं - काजल के ढेर जैसा, लोहियलोयणं - लाल आंखें, जमलजुयलचंचलजीहं - चंचल और लपलपाती दोनों जीभें, धरणीयलवेणिभूयं - धरती की वेणी-चोटी जैसा, उक्कड-फुड-कुडिल-जडिल-कक्कस-वियड-फडाडोवकरणदच्छं - उत्कट (उग्र) स्फुट (देदीप्यमान) कुटिल, जटिल, कर्कश विकट फन फैलाए हुए, लोहागरधम्ममाणधमधमेंतघोसं - लुहार की धौंकनी की तरह धमधमायमान शब्द करता हुआ, अणागलियतिव्वचंडरोसं - प्रचण्ड क्रोध रोके नहीं रुकता।

भावार्थ - हाथी के रूप से जब देव कामदेव को धर्म से न डिगा सका, तो शनैः-शनैः

पौषधशाला से बाहर निकला और हस्ती का रूप त्याग कर एक महान् दिव्य सर्प रूप की विकुर्वणा की। वह सर्प उग्र विष वाला, अल्प समय में ही शरीर में व्याप्त हो जाय ऐसे चण्ड (रौद्र) विष वाला, शीघ्र ही मृत्यु का हेतु होने से घोर विषैला, बड़े आकार वाला, स्याही एवं मूस (धातु गलाने का पात्र) के समान काला, दृष्टि पड़ते ही प्राणी भस्म हो जाय ऐसा दृष्टिविष, जिसकी आँखें रोष से भरी थीं, काजल के ढेर के समान प्रभा वाला, जिसकी आँखें लालिमायुक्त क्रोध वाली थीं, दोनों जीभें चंचल तथा लपलपाती थीं, अत्यन्त लम्बा तथा कृष्णवर्ण वाला होने से धरती की वेणी (काली चोटी) के समान दृष्टिगत होता था, अन्य का पराभव करने में उत्कट, चाह एवं स्वभाव से अत्यन्त कुटिल, जटिल, निष्ठुर, फण का घटाटोप करने में दक्ष, लुहार की धौंकनी के समान धमाधमायमान शब्द करता हुआ, फुत्कार करता हुआ, जिसका तीव्र कोप रोका जाना संभव नहीं, ऐसा भयंकर सर्प रूप बना कर कामदेव श्रमणोपासक के निकट आया और यों कहने लगा।

‘हं भो कामदेवा! समणोवासया! जाव ण भंजेसि तो ते अज्जेव अहं सरसरस्स कायं दुरुहामि, दुरुहिता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेमि वेढेत्ता तिक्खाहिं विसपरिगयाहिं दाढाहिं उरंसि चेव णिकुट्टेमि, जहा णं तुमं अट्टुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि’।

कठिन शब्दार्थ - भंजेसि - भंग करेगा, सरसरस्स - सर्राट करता हुआ, दुरुहामि - चढ़ता हूँ, पच्छिमभायेणं - पिछले भाग-पूँछ से, गीवं - गले को, वेढेइ - लपेट लगाता हूँ, विसपरिगयाहिं दाढाहिं - जहरीले दांतों से, णिकुट्टेमि - डंक मारूंगा-डसूंगा।

भावार्थ - हे कामदेव! यदि तू श्रावक-व्रतों का भंग नहीं करेगा, तो मैं अभी सरसराहट करता हुआ तेरे शरीर पर चढ़ जाऊँगा, पूँछ से तेरी गर्दन पर तीन आँटे लगा कर लिपट जाऊँगा तथा तीक्ष्ण विषैली दाढ़ाओं से तेरे हृदय पर डसूँगा, जिससे तू आर्तध्यान करता हुआ अकाल में ही मर जायेगा।

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं देवेणं सप्परूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ, सोऽवि दोच्चंपि तच्चंपि भणइ, कामदेवोऽवि जाव विहरइ।

तए णं से देवे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते ४ कामदेवस्स समणोवासयस्स सरसरस्स कायं दुरुहइ, दुरुहिता



पच्छिमभाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेइ, वेढेत्ता तिक्खाहिं विसपरिगयाहिं दाढाहिं उरंसि चेव णिकुट्टेइ। तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ।

भावार्थ - सर्परूपधारी उस देव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी कामदेव श्रावक निर्भीक रहे तो देव ने दूसरी तीसरी बार उपरोक्त वचन कहे पर कामदेव पूर्ववत् उपासना में रत रहे।

सर्परूपधारी देव ने जब श्रमणोपासक कामदेव को निर्भय देखा तो वह अत्यन्त कुपित हुआ और सरसराहट करता हुआ कामदेव के शरीर पर चढ़ गया। चढ़ कर पिछले भाग से उसके गले में तीन दृढ़ आंटे (लपेट) लगाये, लपेट लगा कर अपने तीखे विषपूर्ण दांतों से उसकी छाती (हृदय) पर डंक मारा-डसा, जिससे कामदेव को अत्यंत भयंकर वेदना हुई। कामदेव श्रावक ने उस तीव्र वेदना को समभावों के साथ सहन किया।

देव का पराभव

(२१)

तए णं से देवे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता जाहे णो संचाएइ कामदेवं समणोवासयं णिगंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे संते तंते परितंते सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं सप्परूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ।

भावार्थ - (यक्ष, हाथी और सर्प रूप तीन प्रकार से उपसर्ग देने के बाद भी) जब सर्प रूपधारी देव ने कामदेव श्रमणोपासक को निर्भय यावत् धर्मध्यान में लीन देखा और निर्ग्रथ-प्रवचन से लेश-मात्र भी चलित न कर सका, क्षुभित नहीं कर सका, विपरिणामित नहीं कर सका, तब थक कर त्रास को प्राप्त हुआ और क्लान्त होकर शनैः-शनैः पौषधशाला से बाहर निकला। उसने सर्प का रूप त्याग कर देवरूप की विकुर्वणा की।

हारविराइयवच्छं जाव दस दिसाओ उज्जोवेमाणं पभासेमाणं पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता कामदेवस्स समणोवासयस्स पोसहसालं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे

सखिखणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिए कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी-

कठिन शब्दार्थ - हारविराड्यवच्छं - वक्षस्थल पर हार सुशोभित, उज्जोवेमाणं - उद्योतित - प्रकाश युक्त करते हुए, पभासेमाणं - प्रभासित - प्रभा या शोभायुक्त करते हुए, पासाईयं- प्रासादित-प्रसाद या आह्लाद युक्त, दरिसणिज्जं - दर्शनीय, अभिरूवे - अभिरूप - मनोज्ञ-मन को अपने में रमा लेने वाला, पडिरूवे - प्रतिरूप - मन में बस जाने वाला, अंतलिक्खपडिवण्णे - आकाश में अवस्थित, सखिखणियाइं - छोटी-छोटी घंटिकाओं से युक्त, परिहिए - धारण किये हुए।

भावार्थ - उस देव का वक्षस्थल मालाओं से सुशोभित था, आभूषणों तथा शरीर की कांति से दशों-दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं, वह देव दर्शनीय, बार-बार दर्शनीय और रूप कांति में अनुपम था। ऐसी विकुर्वणा करके वह कामदेव श्रमणोपासक की पौषधशाला में आया। अंतरिक्ष में घुंघरु सहित श्रेष्ठ पाँचों रंगों के प्रधान वस्त्र धारण किए हुए उस देव ने कामदेव से इस प्रकार कहा।

इन्द्र से प्रशंसित

‘हं भो कामदेवा! समणोवासया! धण्णेसि णं तुमं देवाणुप्पिया! स(म्)पुण्णे कयत्थे कयलक्खणे, सुलद्धे णं तव देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले, जस्स णं तव णिगंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।

कठिन शब्दार्थ - धण्णेसि - धन्य हो, सपुण्णे - पुण्यशाली, कयत्थे - कृत-कृत्य, कयलक्खणे - कृत लक्षण - शुभ लक्षण वाले, जम्मजीवियफले - जन्म और जीवन का सुफल, पडिवत्ती - प्रतिपत्ति - विश्वास आस्था, लद्धा - लब्ध, पत्ता - प्राप्त, अभिसमण्णागया- अभिसमन्वागत-स्वायत्त।

भावार्थ - हे कामदेव श्रमणोपासक! आप धन्य हैं, हे देवानुप्रिय! आप पुण्यशाली हैं, कृतार्थ हैं, आपके शारीरिक लक्षण शुभ हैं, मनुष्य-जन्म और जीवन प्राप्त कर आपने सफल किया है, आप महान् पुण्यात्मा हैं। आपको निर्ग्रन्थ-प्रवचन में पूर्ण दृढ़ता, निष्ठा, श्रद्धा एवं रुचि मिली, प्राप्त हुई, भली प्रकार स्थित हुई है।

एवं खलु देवाणुप्पिया! सक्के देविंदे देवराया जाव सक्कंसि सीहासणंसि चउरासीईए सामाणियसाहस्सीणं जाव अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य मज्झगए एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ।

कठिन शब्दार्थ - सक्के - शक्र-शक्तिशाली, देविंदे - देवेन्द्र - देवों के परम ईश्वर-स्वामी, देवराया - देवराज, आइक्खइ - आख्यात किया, भासइ - भाषित, पण्णवेइ - प्रज्ञप्त, परूवेइ - प्ररूपित।

भावार्थ - हे देवानुप्रिय! एक बार सौधर्म देवलोक के अधिपति शक्रेन्द्र महाराज सौधर्मावतंसक विमान की सुधर्मा-सभा में चौरासी हजार सामानिक देवों, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों, आठ अग्रमहिषियों आदि तथा अन्य देवी-देवताओं के मध्य अपने सिंहासन पर विराज रहे थे। उन सब के समक्ष शक्रेन्द्र ने यह प्ररूपणा की कि -

एवं खलु देवाणुप्पिया! जंबुद्वीवे दीवे भारहे वासे चंपाए णयरीए कामदेवे समणोवासए पोसहसालाए पोसहियबम्भचारी जाव दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, णो खलु से सक्का केणइ देवेण वा दाणवेण वा जाव गंधव्वेण वा णिगंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा।

कठिन शब्दार्थ - सक्का - समर्थ, दाणवेण - दानव द्वारा; गंधव्वेण - गंधर्व द्वारा।

भावार्थ - हे देवो! जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में चम्पा नामक नगरी है। वहाँ कामदेव श्रमणोपासक पौषधशाला में रहा हुआ, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा फरमाई गई धर्म-प्रज्ञप्ति का यथावत् पालन करता हुआ धर्मध्यान कर रहा है। किसी भी देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गंधर्व में यह सामर्थ्य नहीं कि वह कामदेव श्रमणोपासक को निर्ग्रथ-प्रवचन से चलित कर सके, क्षुभित कर सके, विपरिणामित कर सके।

तए णं अहं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णे एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे, अरोएमाणे इहं हव्वमागए, तं अहो णं देवाणुप्पिया! इइढी जुई जसो बलं वीरियं पुरिसक्कार परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं दिट्ठा णं देवाणुप्पिया! इइढी जाव अभिसमण्णागया, तं खामेमि णं देवाणुप्पिया! खमंतु मज्झ देवाणुप्पिया! खंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया! णाइं भुज्जो करणयाए त्तिकट्टु पायवडिए पंजलिउडे

एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो खामेइ, खामेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।
तए णं से कामदेवे समणोवासए णिरुवसगं त्तिकट्टु पडिमं पारेइ।

कठिन शब्दार्थ - असह्यमाणे - श्रद्धा नहीं करता हुआ, हव्वमागए - शीघ्र आया, खामेमि - खमाता हूँ, खमंतु - क्षमा करे, पायवडिए - पैरों में पड़ कर, पंजलिउडे - हाथ जोड़ कर, णिरुवसगं - उपसर्ग रहित, पडिमं - प्रतिमा को।

भावार्थ - तब मैंने शक्रेन्द्र के वचनों पर श्रद्धा, प्रतीति, रुचि नहीं की। उनके वचन को मिथ्या सिद्ध करने के लिए तथा आपको धर्म से डिगाने के लिए मैं यहाँ आया और आपको अनेक उपसर्ग दिए, किन्तु आप धर्म से तनिक भी डिगे नहीं। धन्य है आपकी ऋद्धि, बल, वीर्य, द्युति, यश और पुरुषार्थ-पराक्रम को। आपकी निर्ग्रन्थ-प्रवचन में दृढ़ता और निष्ठा मैंने देखी। हे देवानुप्रिय! आपको मैंने जो उपसर्ग दिये, उस अपराध को क्षमा कीजिए। आप क्षमा करने योग्य हैं, मैं क्षमाप्रार्थी हूँ इत्यादि वचनों से क्षमा मांगते हुए उस देव ने, हाथ जोड़कर कामदेव के पैरों में पड़ कर बार-बार क्षमा याचना की और जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया। 'अब मैं निरुपसर्ग हो गया हूँ' - ऐसा विचार कर कामदेवजी ने प्रतिमा पाली।

(२२)

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। तए णं से कामदेवे समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे 'एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं सेयं खलु मम समणं भगवं महावीरं वंदित्ता णमंसित्ता तओ पडिणियत्तस्स पोसहं पारित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता सुद्धप्पावेसाइं वत्थाइं जाव अप्पमहग्घ जाव मणुस्सवगुरापारिक्खित्ते सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता चम्पं णयरिं मज्झंमज्जेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए जहा संखो जाव पज्जुवासइ। तए णं समणे भगवं महावीरे कामदेवस्स समणोवासयस्स तीसे य जाव धम्मकहा समत्ता ।

कठिन शब्दार्थ - सुद्धप्पावेसाइं - शुद्ध तथा सभा योग्य मांगलिक वस्त्र, मणुस्सवगुरापारिक्खित्ते - पुरुष समूह से घिरा हुआ।

भावार्थ - उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी चंपानगरी पधारे।

कामदेव श्रमणोपासक को भगवान् के पधारने का समाचार मिला, तो उन्होंने विचार किया कि भगवान् के समीप जा कर वंदना-नमस्कार एवं पर्युपासना करके फिर पौषध पालना मेरे लिए उचित है। ऐसा विचार कर समवसरण में जाने योग्य शुद्ध वस्त्र पहने तथा अनेक मनुष्यों के समूह से घिरा हुआ अपने घर से निकला। राजमार्ग से होते हुए जहाँ पूर्णभद्र उद्यान था, वहाँ आया और (भगवती श. १२ उ. १ वर्णित) शंख श्रावक की भाँति पर्युपासना करने लगा। भगवान् ने कामदेव और उस विशाल जनसभा को धर्म-कथा फरमाई।

भगवान् द्वारा कामदेव की प्रशंसा

(२३)

कामदेवा इ! समणे भगवं महावीरं कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी - से णूणं कामदेवा! तुब्भं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतिए पाउब्भूए, तए णं से देवे एगं महं दिव्वं पिसायरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता आसुरुत्ते रूढे कुविए चंडिकिए मिसिमिसीयमाणे एगं महं णीलुप्पल-जाव असिं गहाय तुमं एवं वयासी - हं भो कामदेवा! जाव जीवियाओ ववरोविज्जसि, तं तुमं तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरसि, एवं वण्णगरहिया तिण्णिवि उवसग्गा तहेव पडिउच्चारयेव्वा जाव देवो पडिगओ। से णूणं कामदेवा! अट्ठे समट्ठे? हंता, अत्थि।

कठिन शब्दार्थ - आसुरुत्ते - अत्यंत क्रुद्ध, जीवियाओ - जीवन से, ववरोविज्जसि-पृथक् कर दिये जाओगे, अभीए - निर्भय भाव से, वण्णगरहिया - वर्णन रहित, उवसग्गा - उपसर्ग, पडिउच्चारयेव्वा - कह देने चाहिये।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कामदेव श्रमणोपासक को संबोधित कर फरमाया - 'हे कामदेव! कल मध्य रात्रि के समय एक देव तुम्हारे सामने प्रकट हुआ था। उस देव ने विकराल पिशाच रूप धारण किया। वैसा कर अत्यंत क्रोधित हो उसने तलवार निकाल कर तुमसे कहा - हे कामदेव! यदि तुमने शील आदि अपने व्रत भग्न नहीं किए तो मैं तुम्हें जीवन से रहित कर दूँगा। उस देव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर तुमने उस उपसर्ग को समभाव से सहन किया।

इस प्रकार तीनों उपसर्ग विस्तृत वर्णन रहित देव के वापस लौट जाने तक पूर्वोक्त रूप से यहां कह लेने चाहिये।

भगवान् महावीर स्वामी ने कहा - 'हे कामदेव! इत्यादि वृत्तान्त क्या सत्य है?'

कामदेव ने कहा - 'हाँ भगवान्! सत्य है।'

'अज्जो! इ समणे भगवं महावीरे बहवे समणे णिगंथे य णिगंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी - जइ ताव अज्जो! समणोवासगा गिहिणो गिहिमज्झावसंता दिव्व-माणुस्स-तिरिक्खजोणिए उवसग्गे सम्मं सहंति जाव अहियासेंति, सक्का पुणाइं अज्जो! समणेहिं णिगंथेहिं दुवालसंगं गणिपिट्ठं अहिज्जमाणेहिं दिव्व-माणुस्स-तिरिक्खजोणिए सम्मं सहित्तए जाव अहियासित्तए।

कठिन शब्दार्थ - अज्जो - आयो, आमंतेत्ता - आमंत्रित कर, गिहिणो - गृही, गिहमज्झावसंता - घर में रहते हुए, दिव्वमाणुस्सतिरिक्खजोणिए - दैविक, मानवीय और तिर्यच संबंधी - देवकृत, मनुष्यकृत और तिर्यचकृत, सम्मं सहंति - भलीभांति सहन करते हैं, दुवालसंगं-गणिपिट्ठं- द्वादशांग रूप गणिपिटक का - आचार आदि बारह अंगों का, अहिज्जमाणेहिं - अध्ययन करने वाले।

भावार्थ - भगवान् महावीर स्वामी ने बहुत से साधु-साध्वियों को आमंत्रित कर फरमाया- 'हे आयो! गृहस्थ अवस्था में रह कर श्रावक-धर्म का पालन करते हुए भी जब दैविक, मानवीय और तिर्यच संबंधी उपसर्गों को श्रमणोपासक सम्यक् प्रकार से सहन करते हैं, परन्तु धर्म से विचलित नहीं होते, तो साधु-साध्वियों का तो कहना ही क्या? वे तो द्वादशांगी रूप गणिपिटक के धारक होते हैं। अतः उन्हें तो दैविक, मानवीय और तिर्यच संबंधी उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करना ही चाहिए।'

तओ ते बहवे समणा णिगंथा य णिगंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणंति।

तए णं से कामदेवे समणोवासए हइ जाव समणं भगवं महावीरं पसिणाइं पुच्छइ, अट्टमादियइ, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ चम्पाओ पडिणिक्खमइ,
पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - पसिणाइं - प्रश्न, पुच्छइ - पूछे, अट्टमादियइ - अर्थ-समाधान प्राप्त किया, जणवयविहारं - जनपदों में विहार।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का यह कथन बहुत से साधु साध्वियों ने 'ऐसा ही है भगवन्!' यों कह कर विनयपूर्वक स्वीकार किया।

श्रमणोपासक कामदेव अत्यंत प्रसन्न हुआ उसने भगवान् से अनेक प्रश्न पूछ कर उनका समाधान प्राप्त किया। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार वंदन नमस्कार कर जिस दिशा से आया था उसी दिशा में लौट गया।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भी किसी समय चम्पा से विहार कर अन्य जनपदों में विचरने लगे।

विवेचन - शक्रेन्द्र द्वारा प्रशंसा की जाने पर एक देव द्वारा पिशाच, हाथी एवं सर्प के रूप बना कर उपसर्ग दिए जाने का वर्णन बड़ा ही रोमांचकारी है। कैसे श्रावक थे भगवान् के? कितनी निर्भीकता, कितनी कष्ट-सहिष्णुता! ! उनके आदर्श निर्भय जीवन से जितनी शिक्षा ली जाये उतनी कम है।

कष्टों को समभाव से सहा सो तो ठीक, पर साक्षात् तीर्थंकर देव द्वारा साधु-साध्वियों के मध्य 'महान् प्रशंसा' किए जाने पर भी उन्हें गर्व नहीं हुआ। वह बात भी कम नहीं है। मान-सम्मान को पचा लेने की ऐसी अद्भुत क्षमता विरलों में ही होती है।

कामदेव श्रावक ने सविधि पौषध पाल कर वस्त्र-परिवर्तन किए। पौषध-सभा में जाने योग्य विशिष्ट वस्त्र नहीं थे।

शंका - "मूलपाठ में तो बिना पौषध पाले ही समवसरण में गये ऐसा वर्णन है, फिर 'आप सविधि पौषध' पालने की बात कैसे कह रहे हैं?"

समाधान - उन्होंने उपवास रूप पौषध नहीं पाला था। पारणा तो भगवान् के पास से लौटने के बाद किया था। यही आशय समझना चाहिए।

स्वर्ग गमन

(२४)

तए णं से कामदेवे समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ तए णं से कामदेवे समणोवासए बहूहिं (सीलव्वएहिं) जाव भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता एक्कारस उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासेत्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मं कप्पे सोहम्मवडिसयस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरत्थिमेणं अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, कामदेवस्सऽवि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

भावार्थ - कामदेव श्रमणोपासक ने श्रावक की पहली प्रतिमा यावत् ग्यारहवीं प्रतिमा की आराधना की। उपवास, बेला, तेला, अंठाई, अर्द्ध-मासखमण, मासखमण आदि से आत्मा को भावित की। बीस वर्ष तक श्रावक-पर्याय का पालन किया और एकमासिकी संलेखना से साठ भक्त का छेदन किया तथा दोषों की आलोचना-प्रतिक्रमण कर के समाधियुक्त काल कर के प्रथम देवलोक 'सौधर्म कल्प' के सौधर्मावतंसक महाविमान के उत्तरपूर्व-दिशा-भाग में 'अरुणाभ' नामक विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ अनेक देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है, तदनुसार कामदेव भी चार पल्योपम की स्थिति वाले देव हुए।

भविष्य कथन

से णं भंते! कामदेवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ (जाव सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ)
॥ णिक्खेवो ॥

॥ बीयं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ - गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से पूछा - हे भगवन्! कामदेव उस देवलोक से आयु, भव एवं स्थिति के क्षय होने से देव शरीर का त्याग कर कहां जायेंगे? कहां उत्पन्न होंगे?

भगवान् ने फरमाया - हे गौतम! वहां से वे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध, बुद्ध तथा मुक्त होंगे।

विवेचन - प्रस्तुत अध्ययन में अनेक पाठों का संकोच हुआ है। वहां सारा वर्णन आनंदजी के समान जानना चाहिये।

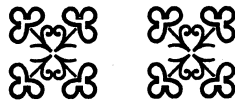
अध्ययन के उपसंहार के रूप में 'णिकखेवो' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द से निम्न पाठ का ग्रहण हुआ है -

“एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं बिइयस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्तिबेमि।”

अर्थ - आर्य सुधर्मा स्वामी ने कहा - हे जंबू! सिद्धि प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उपासकदशांग सूत्र के द्वितीय अध्ययन का यही भाव-अर्थ फरमाया, जो मैंने तुम्हें कहा है।

उपसंहार - दृढ़ धर्म श्रद्धा व्यक्ति को महान् बनाती है। धर्म व्यक्ति को प्रतिकूलताओं में सहन करने की क्षमता और समझ प्रदान करता है। दृढ़ श्रद्धावान् व्यक्ति ही विकट से विकट परिस्थिति में स्थिर और स्वस्थ रह सकता है। इस प्रकार धर्म श्रद्धा इहलोक और परलोक की दृष्टि से लाभ का कारण है, आध्यात्मिक विकास का प्रथम सोपान है। धर्म श्रद्धा जीवन जीने की अनोखी कला सिखाती है, यह कामदेव के प्रस्तुत कथानक से समझा जा सकता है।

॥ द्वितीय अध्ययन समाप्त ॥



तइयं अज्झयणं - तृतीय अध्ययन

श्रमणोपासक चुलनीपिता

(२५)

उक्खेवो तइयस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी णामं णयरी (होत्था), कोट्टए चेइए, जियसत्तू राया। तत्थ णं वाणारसीए णयरीए चुलणीपिया णामं गाहावई परिवसइ, अइढे जाव अपरिभूए। सामा भारिया। अट्ट हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ, अट्ट वुट्ठिपउत्ताओ अट्ट पवित्थरपउत्ताओ, अट्ट-वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं, जहा आणंदो राईसर जाव सव्वकज्जवट्ठावए यावि होत्था। सामी समोसइढे, परिसा णिग्गया, चुलणीपियावि जहा आणंदो तहा णिग्गओ, तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ। गोयमपुच्छा तहेव सेसं जहा कामदेवस्स जाव पोसहसालाए पोसहिए बम्भयारी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - उक्खेवो - उत्क्षेप, गोयमपुच्छा - गौतमपृच्छा।

भावार्थ - तृतीय अध्ययन का प्रारंभ-भगवान् सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं - हे जंबू! उस काल उस समय जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचर रहे थे, वाणारसी नामक नगरी थी। वहाँ कोष्ठक नाम का उद्यान था। जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस वाणारसी नगरी में 'चुलनीपिता' नामक गाथापति रहता था, जो ऋद्धिसम्पन्न यावत् अपराभूत था। उसके आठ करोड़ का धन निधान के रूप में, आठ करोड़ व्यापार में तथा आठ करोड़ की घर बिखरी थी। दस हजार गायों के एक वज्र के हिसाब से आठ वज्र थे। उसकी पत्नी का नाम 'श्यामा' था। भगवान् वहाँ पधारे। परिषद् आई। चुलनीपिता ने भी धर्म सुन कर आनन्दजी की भाँति श्रावक-व्रत अंगीकार किया। कालान्तर में कामदेव की भाँति चुलनीपिता पौषधशाला में ब्रह्मचर्ययुक्त पौषध करता हुआ श्रमण-भगवान् महावीर स्वामी द्वारा फरमाई गई धर्म-प्रज्ञप्ति को स्वीकार कर आत्मा को भावित करने लगा।

देवकृत उपसर्ग - पुत्र वध की धमकी

(२६)

तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए। तए णं से देवे एगं (महं) णीलुप्पल जाव असिं गहाय चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी-हं भो चुलणीपिया! समणोवासया! जहा कामदेवो जाव ण भंजसि तो ते अहं अज्ज जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेमि, णीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाण-भरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिण्ण य आयंचामि, जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

कठिन शब्दार्थ - णीणेमि - निकालूंगा, अग्गओ - आगे, घाएमि - मार डालूंगा, मंससोल्ले - मांस खण्ड, आदाणभरियंसि - तैल से भरी हुई, कडाहयंसि - कढाही में, अद्दहेमि - उबालूंगा-तलूंगा, सोणिण्ण - रक्त से, आयंचामि - सिंचूंगा, अट्टदुहट्टवसट्टे - आर्त्तध्यान एवं विकट दुःख से पीडित हो कर।

भावार्थ - अर्द्धरात्रि के समय उसके समीप (कामदेव की भाँति) एक देव आया तथा नीलकमल के समान खड्ग धारण कर बोला यावत् “यदि तू व्रत-भंग नहीं करेगा, तो मैं आज तेरे सबसे बड़े पुत्र को तेरे घर से ला कर तेरे समक्ष मारूंगा तथा उसके मांस के तीन खण्ड कर के उबलते हुए तेल के कड़ाह में तलूंगा और उस मांस एवं रक्त का तेरे शरीर पर सिंचन करूँगा, जिससे तू आर्त्तध्यान के वश हो, अकाल मृत्यु को प्राप्त करेगा।”

धर्म दृढ़ता

(२७)

तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

भावार्थ - उस देव द्वारा यों कहे जाने पर भी चुलनीपिता श्रमणोपासक डरे नहीं और धर्म में स्थिरचित्त रहे।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी - हं भो चुलणीपिया! समणोवासया! तं चेव भणइ, सो जाव विहरइ।

भावार्थ - जब देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय देखा तो दो - तीन बार उपर्युक्त वचन कहे। पर चुलनीपिता पूर्ववत् निर्भीकता के साथ धर्मध्यान में स्थित रहा।

ज्येष्ठ पुत्र का वध

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे चुलणीपियस्स समणोवासयस्स जेट्ठं पुत्तं गिहाओ णीणेइ, णीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता चुलणीपियस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिण य आयंचइ।

भावार्थ - देव ने चुलनीपिता को जब इस प्रकार निर्भय देखा तो वह अत्यंत क्रोधित हुआ और चुलनीपिता के सबसे बड़े पुत्र को घर से लाया और उसके सामने उसे मार डाला, मार कर उसके तीन टुकड़े करके उबलते हुए तेल की कड़ाई में डाल कर मांस खण्डों को तला और उस असह्य उष्ण रक्तमांस से चुलनीपिता के शरीर का सिंचन किया।

तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तं उज्जलं जाव अहियासेइ।

भावार्थ - चुलनीपिता ने उस तीव्र वेदना को यावत् शांतिपूर्वक सहन किया।

मंझले एवं छोटे पुत्र का वध

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता दोच्चंपि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी - हं भो चुलणीपिया! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया! जाव ण भंजसि तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेमि, णीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता जहा जेट्ठं पुत्तं तहेव भणइ, तहेव करेइ। एवं तच्चंपि कणीयसं जाव अहियासेइ।

कठिन शब्दार्थ - मज्झिमं - मध्यम (मंझले), कणीयसं - कनिष्ठ।

भावार्थ - देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को जब इस प्रकार निर्भिक देखा तो उसने दूसरी-तीसरी बार कहा - मौत को चाहने वाले चुलनीपिता! यदि तुम अपने व्रत को नहीं तोड़ोगे तो मैं तुम्हारे मंझले पुत्र को घर से उठा लाऊंगा और तुम्हारे बड़े बेटे की तरह तुम्हारे सामने उसको मार डालूंगा। इस पर भी चुलनीपिता जब अविचल रहा तो देव ने वैसा ही किया। तीसरी बार मैं छोटे पुत्र को मार डालने की धमकी दी। चुलनीपिता निर्भिक रहा तो देव ने उस छोटे लड़के को भी मार कर यावत् उबलते हुए रक्त मांस से उसके देह का सिंचन किया। चुलनीपिता ने यह तीव्र वेदना समभाव पूर्वक सहन की।

मातृवध की धमकी

(२८)

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता चउत्थं-पि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी - “हं भो चुलणीपिया! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया ४ जइ णं तुमं जाव ण भंजसि तओ अहं अज्ज जा इमा तव माया भद्दा सत्थवाही देवयगुरुजणणी दुक्करदुक्करकारिया तं ते साओ गिहाओ णीणेमि, णीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिण्ण य आयंचामि जहा णं तुमं अट्टदुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।”

कठिन शब्दार्थ - देवयगुरुजणणी - देव और गुरु सदृश पूजनीय, दुक्करदुक्करकारिया- अत्यंत दुष्कर कार्य करने वाली।

भावार्थ - चुलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय देख कर चौथी बार देव ने कहा - हे मृत्यु को चाहना वाले चुलनीपिता! यदि तू धर्मच्युत न होगा तो मैं तेरी माता भद्रा सार्थवाही जो तेरे लिये देव गुरु के समान पूजनीय तथा दुष्कर कार्य करने वाली है, को घर से यहां ले आऊंगा और यहां लाकर तेरे सामने उसे मार कर उबलते हुए तेल की कड़ाई में तल कर मांस खण्डों से तेरे शरीर को सिंचूंगा जिससे तू आर्तध्यान एवं विकट दुःख से पीड़ित होकर अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त करेगा

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में माता की देव तुल्य पूजनीयता एवं सम्मानीयता प्रकट करने के

लिए “देवयगुरुजणणी” विशेषण दिया है जो कि माता के प्रति रहे सम्मान, आदर और श्रद्धा का द्योतक है। संतति पर माता पिता का महान् उपकार होता है उन्हें धर्म मार्ग पर आगे बढ़ा कर ही उपकार का बदला चुकाया जा सकता है अन्यथा मां बाप के ऋण से कभी उन्मत्त नहीं बना जा सकता है। न केवल जैन धर्म में अपितु अन्य सभी परंपराओं में माता का असाधारण महत्त्व स्वीकार किया गया है। इसीलिये कहा जाता है -

“जन्नी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गटिद्यत्सी”

अर्थात् माता और मातृभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर माना है।

तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ। तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता चुलणीपियं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी - हं भो चुलणीपिया! समणोवासया! तहेव जाव ववरोविज्जसि।

भावार्थ - उस देव द्वारा इस प्रकार धमकी दिये जाने पर भी चुलनीपिता श्रमणोपासक निर्भयता से धर्मध्यान में लीन रहा।

जब उस देव ने चुलनीपिता को निर्भिक देखा तो दूसरी बार, तीसरी बार पुनः उसी प्रकार कहा - हे श्रमणोपासक चुलनीपिता! यावत् असमय में ही तुम प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

चुलनीपिता का क्षोभ

तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५-अहो णं इमे पुरिसे अणारिए अणारियबुद्धी अणारियाइं पावाइं कम्माइं समायरइ, जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेइ, णीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता जहा कयं तहा चिंतेइ जाव गायं आयंचइ, जेणं ममं मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ जाव सोणिणण य आयंचइ, जेणं ममं कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ तहेव जाव आयंचइ, जाडवि य णं इमा ममं माया भद्दा सत्थवाही देवयगुरुजणणी दुक्करदुक्करकारिया तंपि य णं इच्छइ साओ गिहाओ णीणेत्ता मम अग्गओ घाएत्तए, तं सेय खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए।

कठिन शब्दार्थ - अणारिण - अनार्य, अणारियबुद्धी - अनार्य बुद्धि वाला, समायरइ-
आचरण करता है।

भावार्थ - जब उस देव ने दूसरी तीसरी बार इस प्रकार कहा तब चुलनीपिता श्रमणोपासक के मन में विचार आया कि - अहो! यह पुरुष निश्चय ही अनार्य, अनार्य बुद्धि वाला, नीचतापूर्ण पाप कार्य करने वाला है। जिसने मेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाकर मेरे आगे मार डाला और उसके रक्तमांस को मेरे शरीर पर छीटा। इसी प्रकार जो मेरे मध्यम (मंझले) पुत्र और छोटे पुत्र को घर से लाया और मार डाला। अब यह देव और गुरु सदृश पूजनीय, अत्यंत दुष्कर कार्य करने वाली मेरी माता भद्रा सार्थवाही को भी घर से लाकर मेरे सामने मारना चाहता है। इसलिये यही श्रेष्ठ है कि मैं इस पुरुष को पकड़ लूं।

चुलनीपिता देव पर झपटता है

त्तिकट्टु उट्टा(द्धा)इए, सेऽवि य आगासे उप्पइए, तेणं च खंभे आसाइए,
महया-महया सद्देणं कोलाहले कए।

कठिन शब्दार्थ - उद्धाइए - उद्यत हुए, आगासे - आकाश में, उप्पइए - उड़ा, आसाइए - हाथ में आया, खंभे - खम्भा, कोलाहले - कोलाहल, सद्देणं - शब्दों से।

भावार्थ - ऐसा विचार कर चुलनीपिता श्रमणोपासक उस देव को पकड़ने के लिए दौड़ा तो वह देव आकाश में उड़ गया और उसके हाथों में खम्भा आ गया। वह जोर जोर से कोलाहल (शोर) करने लगा।

विवेचन - कामदेव अध्ययन में देव ने पिशाच रूप बनाया था, यहाँ सम्भवतः पुरुष का रूप बना कर उपरोक्त उपसर्ग किए, इसी कारण चुलनीपिता ने उसे देवकृत उपसर्ग न समझ कर पुरुषकृत माना। पुरुष वैसा कर भी सकता था, इसी कारण वे पकड़ने को उद्यत हुए। यदि उन्हें देव का ज्ञान होता, तो वे अब भी पूर्ववत् दृढ़ रहते, ऐसा अनुमान होता है।

माता की जिज्ञासा

तए णं सा भद्दा सत्थवाही तं कोलाहलसहं सोच्चा णिसम्म जेणेव चुलणीपिया
समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चुलणीपियं समणोवासयं एवं
वयासी - किण्णं पुत्ता! तुमं महया-महया सद्देणं कोलाहले कए?

भावार्थ - भद्रा सार्थवाही ने जब कोलाहल सुना तो वह जहां चुलनीपिता श्रमणोपासक

था वहां आई और आकर चुलनीपिता से बोली - हे पुत्र! तुम इस प्रकार जोर-जोर से शोर क्यों कर रहे हो?

चुलनीपिता का समाधान

तए णं से चुलणीपिया समणोवासए अम्मयं भदं सत्थवाहिं एवं वयासी - एवं खलु अम्मो! ण जाणामि, केवि पुरिसे आसुरत्ते ५ एगं महं णीलुप्पल-जाव असिं गहाय ममं एवं वयासी - हं भो चुलणीपिया! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया ४ जइ णं तुमं जाव ववरोविज्जसि।

भावार्थ - तब चुलनीपिता श्रमणोपासक ने अपनी माता भद्रा सार्थवाही से इस प्रकार कहा - “हे माता! न जाने कौन व्यक्ति नीलकमल के समान प्रभा वाला खंडूग ले कर मेरे पास आया और कुपित होकर कहने लगा कि - ‘हे चुलनीपिता! यदि तुम व्रत भंग नहीं कोरगे तो यावत् अकाल में ही प्राणों से हाथ धो बैठोगे।’

(तए णं) अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरामि।

भावार्थ - उस पुरुष द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी मैं निर्भयता पूर्वक धर्मध्यान में लीन रहा। तए णं से पुरिसे ममं अभीयं जाव विहरमाणं पासइ, पासित्ता ममं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी - हं भो चुलणीपिया! समणोवासया! तहेव जाय गायं आयंचइ। तए णं अहं तं उज्जलं जाव अहियासेमि। एवं तहेव उच्चारेयव्वं सव्वं जाव कणीयसं जाव आयंचइ, अहं तं उज्जलं जाव अहियासेमि। तए णं से पुरिसे ममं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता ममं चउत्थंपि एवं वयासी - हं भो चुलणीपिया! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया जाव ण भंजसि तो ते अज्ज जा इमा माया देवयगुरु जाव ववरोविज्जसि। तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरामि। तए णं से पुरिसे दोच्चंपि तच्चंपि ममं एवं वयासी-हं भो चुलणीपिया! समणोवासया! अज्ज जाव ववरोविज्जसि। तए णं तेणं पुरिसेणं दोच्चंपि तच्चंपि ममं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ५ - अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जाव समायरइ, जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ तहेव जाव कणीयसं जाव आयंचइ, तुब्भेऽवि य णं इच्छइ साओ गिहाओ णीणेत्ता

मम अग्गओ घाएत्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्तिकट्टु उद्धाइए, सेऽवि य आगासे उप्पइए, मएऽवि य खम्भे आसाइए, महया महया सदेणं कोलाहले कए।

भावार्थ - उस पुरुष से दूसरी बार, तीसरी बार मुझे पुनः कहा - हे चुलनीपिता श्रमणोपासक! आज तुम अकाल में मारे जाओगे।

उस पुरुष द्वारा दूसरी बार, तीसरी बार यों कहे जाने पर मेरे मन में ऐसा विचार आया - “अरे! यह पुरुष नीच यावत् पाप कर्म करने वाला है इसने मेरे बड़े पुत्र, मंझले पुत्र और छोटे पुत्र को घर से लाकर मार दिया और अब तुमको भी घर से ला कर मेरे सामने मार डालना चाहता है इसलिये श्रेष्ठ यही है कि मैं इस पुरुष को पकड़ लूं। इस प्रकार सोच कर ज्योंही मैं उसे पकड़ने के लिये उठा त्योंही वह आकाश में उड़ गया। उसे पकड़ने के लिये फैलाये गये मेरे हाथों में यह खम्भा आ गया। इसलिये मैंने यह कोलाहल किया है।”

व्रत भंग हुआ प्रायश्चित्त लो

(२६)

तए णं सा भद्दा सत्थवाही चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी - णो खलु केइ पुरिसे तव जाव कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेइ, णीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, एस णं केइ पुरिसे तव उवसगं करेइ, एस णं तुमे विदरिसणे दिट्ठे, तं णं तुमं इयाणिं भग्गव्वए भग्गणियमे भग्गपोसहे विहरसि, तं णं तुमं पुत्ता! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि।

कठिन शब्दार्थ - विदरिसणे - भयंकर दृश्य, दिट्ठे - देखा, भग्गव्वए - भग्न व्रत, भग्गणियमे - भग्न नियम, भग्गपोसहे - भग्न पौषध, आलोएहि - आलोचना करो, पडिवज्जाहि - स्वीकार करो।

भावार्थ - तब भद्रा सार्थवाही ने चुलनीपिता श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा - हे पुत्र! ऐसा कोई पुरुष नहीं था यावत् तुम्हारे छोटे पुत्र को घर से लाकर मारा है। यह तो तुम्हारे लिए कोई उपसर्ग था। इसलिए तुमने यह भयंकर दृश्य देखा है और तुम्हारा व्रत, नियम तथा पौषध भग्न हुआ है-खंडित हुआ है। इसलिए हे पुत्र! इस दोष स्थान की आलोचना कर तप-प्रायश्चित्त स्वीकार करो।

विवेचन - चुलनीपिता से उसकी माता ने कहा कि तुमने भयंकर स्वरूप देखा है, जिससे

तुम भग्नव्रत हुए हो। स्थूल प्राणातिपात विरमण को तुमने भाव से भंग किया है। भयंकर स्वरूप को क्रोधपूर्वक मारने दौड़े, जिससे व्रत का भंग हुआ, क्योंकि अपराधी को भी मारना व्रत का विषय नहीं है। इसलिए 'भग्ननियम' क्रोध के उदय से उत्तरगुण का भंग हुआ एवं 'भग्नपौषध'-अव्यापार पौषध व्रत का भी भंग हुआ, इसलिए उसकी आलोचना करो और गुरु के आगे पापों को निवेदन करके उसका प्रायश्चित्त करो, आत्मसाक्षी से उस पाप की निंदा करो, अतिचार रूप मल को साफ कर के व्रत को शुद्ध करो, फिर दोष न लगे, ऐसी सावधानी रखो। यथार्थ तपकर्म रूप प्रायश्चित्त लो।

साधु के समान गृहस्थ भी यथायोग्य प्रायश्चित्त का पात्र है। यह बात इस सूत्र-पाठ से स्पष्ट हो जाती है। उपरोक्त खुलासा श्रीमद् अभयदेव सूरि ने टीका में किया है।

तए णं से चुलणीपिया समणोवासए अम्मगाए भद्दाए सत्थवाहीए तहत्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव पडिवज्जइ ।

भावार्थ - तदनन्तर चुलनीपिता श्रमणोपासक ने अपनी पूज्या मातुश्री के वचनों को 'आप ठीक कहती हैं' यों कह कर विनयपूर्वक सुना और सुन कर उस स्थान की आलोचना की यावत् तप कर्म रूप प्रायश्चित्त स्वीकार किया।

प्रतिमा आराधन

(३०)

तए णं से चुलणीपिया समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं जहा आणंदो जाव एक्कारसवि ।

भावार्थ - कालान्तर में चुलनीपिता श्रमणोपासक ने प्रथम उपासक प्रतिमा अंगीकार की यावत् आनंदजी की भांति ग्यारह ही प्रतिमाओं का घोर तप सहित शुद्ध आराधन किया।

भविष्य कथन

तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं उरालेणं जहा कामदेवो जाव सोहम्मं कप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तरपुरत्थिमेणं अरुणप्पभे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ५ ॥ णिक्खेवो ॥

॥ तइयं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ - तदनन्तर चुलनीपिता श्रमणोपासक ने कामदेव श्रावक की तरह बीस वर्ष की श्रावक पर्याय का पालन किया यावत् सौधर्म देवलोक में सौधर्मावतंसक महाविमान के ईशान कोण में स्थित अरुणप्रभ विमान में देव रूप से उत्पन्न हुए। वहां उनकी स्थिति चार पत्योपम की है। गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी से पूछा - हे भगवन्! चुलनीपिता देव, देवभव का क्षय करके कहां उत्पन्न होगा?

भगवान् ने फरमाया - हे गौतम! वहां से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा।

विवेचन - चुलनीपिता दृढ़ श्रद्धावान् था। श्रद्धा को अंत तक अखंड रखी परंतु माता की ममता के कारण देव के प्रति समभाव नहीं रहा। पौषधभाव में स्वलना हुई। चुलनीपिता श्रावक ने जहां एक तरफ अपने शरीर पर होने वाली दारुण वेदना को स्वीकार किया तो दूसरी तरफ माता पर आने वाली आपत्ति की कल्पना से अधीर हो गये। माता के प्रति उनकी जो कर्तव्यनिष्ठा थी, वह गुण रूप थी। परंतु ऐहिक कर्तव्यनिष्ठा में पारलौकिक आध्यात्मिक साधना रूप पौषध की सीमा का उल्लंघन कर उपसर्गदाता को पकड़ने आदि की प्रवृत्ति और संकल्प रूप प्रतिकार कृत्य करने को तत्पर हो गये, यही उनकी स्वलना हुई, यही उनका दोष हुआ। माता के निर्देश से चुलनीपिता ने प्रायश्चित्त किया और पुनः आत्मभाव में लीन हुए।

मातृश्री ने कहा - 'पुत्र! यह तुम्हारी परीक्षा हेतु देवकृत उपसर्ग था। हमारा तो किसी का कुछ नहीं बिगड़ा है पर मातृमोह एवं मातृ-श्रद्धा के कारण तुम्हारा पौषधव्रत खण्डित हो गया है। अतः तुरन्त प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध बनो।' ऐसी विकट परिस्थितियों में भी चुलनीपिता व्रत खण्डन के दोषी माने गये एवं उन्होंने प्रायश्चित्त लेकर अपने आप को व्रत खण्डन के पाप से मुक्त कर अपना शुद्धिकरण किया। साधना एवं व्रत पालन में स्वलना, कैसी भी विकट स्थिति या परिस्थिति में हो, उसे क्षम्य नहीं माना गया है। ऊंचे से ऊंचे मातृ-श्रद्धा के कर्तव्य का भाव भी व्रतस्वलना के पाप से मुक्त करने में समर्थ नहीं होता। भावों एवं परिस्थितियों के अनुसार प्रायश्चित्त का दण्ड जरूर भावों की उच्चता तथा नीचता एवं परिस्थिति को ध्यान में रख कर हल्का भारी किया जा सकता है पर स्वलना-स्वलना है, उसका दण्ड स्वरूप प्रायश्चित्त शुद्धिकरण हेतु नितान्त आवश्यक है।

॥ तीसरा अध्ययन समाप्त ॥

चउत्थं अज्झयणं - चौथा अध्ययन

श्रमणोपासक सुरादेव

(३१)

उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी णामं णयरी। कोट्टए चेइए। जियसत्तू राया। सुरादेवे गाहावई, अट्ठे (जाव अपरिभूए)। छ हिरण्णकोडीओ जाव छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। धण्णा भारिया। सामी समोसढे। जहा आणंदो तहेव पडिवज्जइ गिहिधम्मं। जहा कामदेवो जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

भावार्थ - चौथे अध्ययन का उत्थान-भगवान् सुधर्मास्वामी फरमाते हैं - हे जंबू! उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विचर रहे थे, तब वाणारसी नामक नगरी थी, कोष्ठक उद्यान था, जितशत्रु राजा राज्य करते थे, वहाँ 'सुरादेव' नामक गाथापति रहते थे। उनके छह करोड़ का धन निधान में, छह करोड़ व्यापार में तथा छह करोड़ की घर-बिखरी थी। दस हजार गायों के एक वज्र के हिसाब से छह वज्र थे। धन्ना नामक पत्नी थी। उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वाणारसी पधारे। आनन्द की भाँति सुरादेव ने भी धर्म सुन कर श्रावक-धर्म स्वीकार किया और कामदेव की भाँति पौषधयुक्त होकर भगवान् की धर्म-प्रज्ञप्ति का पालन करने लगे।

(३२)

तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। से देवे एणं महं णीलुप्पल जाव असिं गहाय सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी-हं भो सुरादेवा समणोवासया! अपत्थियपत्थिया ४ जइ णं तुमं सीलाइं जाव ण भंजसि तो ते जेइं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेमि, णीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच मंस सोल्लए करेमि, करेत्ता

आंदाणभरियंसि कडाहयंसि अदहेमि, अदहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिण्ण य आयंचामि, जहा णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।

एवं मज्झिमयं, कणीयसं, एक्केक्के पंच सोल्लया, तहेव करेइ, जहा चुलणीपियस्स, णवरं एक्केक्के पंच सोल्लया।

भावार्थ - मध्य रात्रि के समय सुरादेव श्रमणोपासक के समीप एक देव प्रकट हुआ। उसने नीली तेज धार वाली यावत् तलवार ग्रहण कर सुरादेव श्रावक से कहा - मृत्यु को चाहने वाले श्रमणोपासक सुरादेव! यदि तुम आज शीलव्रत आदि का भंग नहीं करते हो तो मैं तुम्हारे बड़े बेटे को घर से उठा लाऊंगा और लाकर तुम्हारे सामने मार डालूंगा। मार कर उसके पांच मांस खण्ड करूंगा, उबलते तेल में तल कर उसके मांस और रक्त से तुम्हारे शरीर को सिंचूंगा, जिससे तुम अकाल में ही प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

इसी प्रकार उसने मंझले और छोटे लड़के को भी मार डालने, उनको पांच पांच मांस खण्डों में काट डालने की धमकी दी। सुरादेव के निर्भय रहने पर जिस प्रकार चुलनीपिता के साथ देव ने किया वैसा ही उसने किया, उसके पुत्रों को मार डाला। विशेषता यह कि वहां देव ने तीन-तीन मांस खंड किये यहां देव ने पांच-पांच मांस खंड किए।

रोगों की धमकी

तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं चउत्थं पि एवं वयासी-हं भो सुरादेवा! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया ४ जाव ण परिच्चय(भंज)सि तो ते अज्ज सरीरंसि जमगसमगमेव सोलस रोगायंके पक्खिवामि, तंजहा-सासे, कासे जरे, दाहे, कुच्छिसूले, भगंदरे, अरिसए, अजीरए, दिट्ठिसूले, मुद्धसूले, अकारिए अच्छिवेयणा, कणमवेयणा, कडुए, उदरे कोढे, जहा णं तुमं अट्टुहट्ट जाव ववरोविज्जसि।

कठिन शब्दार्थ - परिच्चयसि - त्याग करोगे, जमगसमगमेव - एक साथ ही, रोगायंके-भयानक रोग, पक्खिवामि - प्रक्षेप करता हूं। सासे - श्वास-दमा, कासे - कास-खांसी, जरे- ज्वर बुखार, दाहे - दाह - देह में जलन, कुच्छिसूले - कुक्षि-शूल - पेट में तीव्र पीड़ा, भगंदरे - भगंदर-गुदा पर फोड़ा, अरिसए - अर्श-बवासीर, अजीरए - अजीर्ण-बदहजमी, दिट्ठीसूले - दृष्टिशूल-नेत्र में शूल चुभने जैसी तेज पीड़ा, मुद्धसूले - मस्तक पीड़ा,

अकारिए- अकारक - भोजन में अरुचि या भूख न लगना, अच्छिवेयणा - आंख दुःखना, कण्णवेयणा - कान की वेदना, कडुए - कण्डू-खुजली, उदरे - उदर रोग-जलोदर आदि पेट की बीमारी, कोढे - कुष्ठ-कोढ।

भावार्थ - तब उस देव ने सुरादेव श्रमणोपासक को चौथी बार भी इस प्रकार कहा - हे मृत्यु को चाहने वाले सुरादेव श्रमणोपासक! यावत् तुम अपने व्रतों का त्याग नहीं करोगे तो मैं आज ही एक साथ तुम्हारे शरीर में इन सोलह महारोगों का प्रक्षेप करता हूँ - १. श्वास २. खांसी ३. ज्वर ४. दाह ५. कुक्षि शूल ६. भगंदर ७. बवासीर ८. अजीर्ण ९. दृष्टिशूल १०. मस्तकशूल ११. अकारक १२. आंख की वेदना १३. कान की वेदना १४. खाज १५. उदर रोग और १६. कोढ, जिससे तू आर्तध्यान तथा विकट दुःख से पीड़ित होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त होगा।

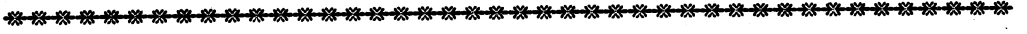
तए णं से सुरादेवे समणोवासए जाव विहरइ। एवं देवो दोच्चंपि तच्चंपि भणइ जाव ववरोविज्जसि।

भावार्थ - उस देव द्वारा यों कहे जाने पर भी श्रमणोपासक सुरादेव धर्मध्यान में रत रहा तो उस देव ने दूसरी तीसरी बार पुनः उसी प्रकार कहा यावत् तुम असमय में ही जीवन से हाथ धो बैठोगे।

(३३)

तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जाव समायरइ, जेणं ममं जेट्ट पुत्तं जाव कणीयसं जाव आयंचइ, जेऽवि य इमे सोलस रोगायंका तेऽवि य इच्छइ मम सरीरगंसि पक्खित्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्तिकट्टु उद्धाइए। सेऽवि य आगासे उप्पइए, तेण य खंभे आसाइए, महया-महया सदेणं कोलाहले कए।

भावार्थ - उस देव द्वारा दूसरी बार, तीसरी बार इस प्रकार कहे जाने पर सुरादेव श्रमणोपासक विचार करने लगा - यह कोई अनार्य (अधम) पुरुष है जिसने मेरे ज्येष्ठ पुत्र आदि को यावत् मार कर मेरे शरीर को सींचा है और मेरे शरीर में सोलह भयानक रोग उत्पन्न कर देना चाहता है अतः मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि मैं इस पुरुष को पकड़ लूँ। ऐसा विचार कर सुरादेव आवेशपूर्वक उसे पकड़ने को झपटा तो वह देव आकाश में उड़ गया और उसके हाथों में पौषधशाला का खम्भा आ गया। वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा।



(३४)

तए णं सा धण्णा भारिया कोलाहलं सोच्चा णिसम्म जेणेव सुरादेवे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी-किण्णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं महया-महया सद्देणं कोलाहले कए?

भावार्थ - तब वह सुरादेव की पत्नी धन्या कोलाहल को सुन कर जहां सुरादेव था वहां आई, आकर पति से इस प्रकार कहा - हे देवानुप्रिय! आपने जोर जोर से कोलाहल क्यों किया?

तए णं से सुरादेवे समणोवासए धण्णं भारियं एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिए! केऽवि पुरिसे तहेव कहेइ जहा चुलणीपिया। धण्णाऽवि पडिभणइ-जाव कणीयसं, णो खलु देवाणुप्पिया! तुब्भं केऽवि पुरिसे सरीरंसि जमगसमगं सोलस रोगायंके पक्खिवइ, एसणं केऽवि पुरिसे तुब्भं उवसगं करेइ, सेसं जहा चुलणीपियस्स तहा भणइ। एवं सेसं जहा चुलणीपियस्स णिरवसेसं जाव सोहम्मे कप्पे अरुणकंते विमाणे उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ५ ॥ णिक्खेवो ॥

॥ चउत्थं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ - तदनन्तर सुरादेव श्रमणोपासक ने अपनी पत्नी धन्या से सारी घटना कही तो धन्या बोली - हे देवानुप्रिय! न तो किसी ने तुम्हारे तीनों पुत्रों को मारा है और न किसी ने सोलह रोगों का प्रक्षेप किया है। यह तो किसी पुरुष ने आपको उपसर्ग दिया है। शेष सारा वर्णन चुलनीपिता के समान जानना चाहिये। यथा - प्रायश्चित्त लेने, शुद्धिकरण, प्रतिमा आराधन, तपस्या, बीस वर्ष की श्रावक पर्याय, मासिक संलेखना यावत् प्रथम देवलोक के अरुणकांत विमान में उत्पत्ति, चार पत्योपम की स्थिति और वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होंगे।

निक्षेप - आर्य सुधर्मास्वामी ने जंबूस्वामी से कहा - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीरस्वामी ने उपासकदशा के चौथे अध्ययन का यही अर्थ-भाव कहा था, जो मैंने तुम्हें बतलाया है।

॥ चतुर्थ अध्ययन समाप्त ॥

पंचमं अज्झयणं - पांचवां अध्ययन

श्रमणोपासक चुल्लशतक

(३५)

उक्खेवो पंचमस्स। एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया णामं णयरी। संखवणे उज्जाणे। जियसत्तू राया। चुल्लसयए गाहावई (परिवसइ), अट्टे जाव छ हिरण्णकोडीओ जाव छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। बहुला भारिया। सामी समोसढे। जहा आणंदो तथा (धम्मं सोच्चा) गिहिधम्मं पडिवज्जइ, सेसं जहा कामदेवो जाव धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

भावार्थ - पांचवें अध्ययन का प्रारंभ। हे जंबू! उस काल उस समय में जब भगवान् महावीर स्वामी विचर रहे थे, आलभिका नामक नगरी के बाहर शंखवन नामक उद्यान था, जितशत्रु राजा राज्य करता था। 'चुल्लशतक' नामक ऋद्धिसम्पन्न गाथापति रहता था। उसके छह करोड़ का धन निधान में, छह करोड़ का व्यापार में, छह करोड़ की घर-बिखरी व दस हजार गायों का एक वज्र, ऐसे छह वज्र थे। भगवान् आलभिका नगरी पधारे। चुल्लशतक ने धर्म सुन कर आनन्दजी की भाँति श्रावकव्रत धारण किए। कामदेव की भाँति पौषधयुक्त होकर भगवान् द्वारा बताई गई धर्म-विधि अनुसार पालन करने लगा।

(३६)

तए णं तस्स चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एणे देवे अंतियं जाव असिं गहाय एवं वयासी-हं भो चुल्लसयगा समणोवासया! जाव ण भंजसि तो ते अज्ज जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ णीणेमि, एवं जहा चुल्लणीपियं, णवरं एक्केक्के सत्त मंससोल्लया जाव कणीयसं जाव आयंचामि।

भावार्थ - आधी रात के समय एक देव चुल्लशतक के समक्ष प्रकट हुआ यावत् तलवार लेकर इस प्रकार बोला - हे चुल्लशतक श्रमणोपासक! यदि तूने श्रावक व्रतों का परित्याग नहीं किया तो आज तेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा यावत् चुलनीपिता के साथ जैसा हुआ था

वैसा ही घटित हुआ। देव ने बड़े, मंझले तथा छोटे - तीनों पुत्रों को क्रमशः मारा, मांस खण्ड किए, तेल में भून कर चुल्लशतक के शरीर पर छिड़का। इतनी विशेषता है कि वहां देव ने पांच-पांच मांस खण्ड किए थे, यहां देव ने सात-सात मांस खण्ड किए।

धन नाश की धमकी

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए जाव विहरइ। तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं चउत्थंपि एवं वयासी-हं भो चुल्लसयगा! समणोवासया! जाव ण भंजसि तो ते अज्ज जाओ इमाओ छ हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ, छ वुट्ठिपउत्ताओ, छ पवित्थरपउत्ताओ ताओ साओ गिहाओ णीणेमि, णीणेत्ता आलभियाए णयरीए सिंघाडग जाव पहेसु सव्वओ सर्मता विप्पइरामि, जहा णं तुमं अट्टुहट्टवसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।

कठिन शब्दार्थ - सिंघाडग - श्रृंगाटक-तिकोने स्थानों, विप्पइरामि - बिखेर दूंगा।

भावार्थ - तब भी चुल्लशतक श्रमणोपासक निर्भीकता पूर्वक धर्मध्यान में लीन रहा।

तदनन् देव ने चुल्लशतक श्रावक को चौथी बार इस प्रकार कहा - 'हे चुल्लशतक श्रमणोपासक! यावत् तुम अपने व्रतों को भंग नहीं करोगे तो मैं तुम्हारी सम्पत्ति जो छह करोड़ (स्वर्ण मुद्राएं) निधान के रूप में, छह करोड़ की व्यापार में और छह करोड़ की घर बिखरी में है उसे मैं ले आऊंगा और लाकर आलभिका नगरी के तिकोने स्थानों यावत् सारे मार्गों में-सब तरफ चारों ओर बिखेर दूंगा, जिससे तू आर्त्तध्यान करता हुआ अकाल मृत्यु से मर जायेगा।'

(३७)

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ। तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता दोच्चंपि तच्चंपि तहेव भणइ जाव ववरोविज्जसि।

भावार्थ - उस देव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी श्रमणोपासक चुल्लशतक निर्भय भाव से धर्मध्यान में रत रहा।

जब देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को इस प्रकार निर्भीक देखा तो उसने दूसरी बार, तीसरी बार पुनः वैसा ही कहा यावत् प्राणों से हाथ धो बैठोगे।

तए णं तस्स चुल्लसयगस्स तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्तस्स समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए ५ अहो णं इमे पुरिसे अणारिए जहा चुलणीपिया तथा चिंतेइ जाव कणीयसं जाव आयंचइ, जाओऽवि य णं इमाओ ममं छ हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ छ वुट्ठिपउत्ताओ छ पवित्थरपउत्ताओ ताओऽवि य णं इच्छइ ममं साओ गिहाओ णीणेत्ता आलभियाए णयरीए सिंघाडग-जाव विप्पइरित्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्तिकट्टु उद्धाइए जहा सुरादेवो तहेव भारिया पुच्छइ तहेव कहेइ।

भावार्थ - उस देव के दूसरी तीसरी बार इस प्रकार कहे जाने पर चुल्लशतक श्रमणोपासक ने विचार किया - अरे यह कोई अनार्य पुरुष है यावत् इसने मेरे तीनों पुत्रों को मार कर यावत् उनके सात-सात टुकड़े कर उनके मांस और रक्त से मुझे सींचा है और अब यह मेरी खजाने में रखी छह करोड़, व्यापार में लगी छह करोड़ और घर बिखरी में लगी छह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं को निकाल कर आलभिया नगरी श्रृंगाटक आदि यावत् चारों ओर बिखेरना चाहता है अतः मेरे लिये यही श्रेयस्कर (श्रेष्ठ) है कि मैं इस पुरुष को पकड़ लूं। ऐसा सोचकर उसे पकड़ने के लिए दौड़ा तो यावत् सुरादेव की तरह उसके हाथों में खंभा आया। उसका कोलाहल सुनकर बहुला भार्या आई, कोलाहल का कारण पूछा। सुरादेव की पत्नी की तरह चुल्लशतक ने भी अपनी पत्नी को सारी बात बतलाई यावत् आलोचना प्रायश्चित्त से विशुद्धि की।

सेसं जहा चुलणीपियस्स जाव सोहम्मे कप्पे अरुणसिद्धे विमाणे उववण्णे, चत्तारि पलिओवमाइं ठिई। सेसं तहेव जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ (५)
॥ णिकखेवो ॥

॥ पंचमं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ - शेष सारा वर्णन चुलनीपिता के समान समझना चाहिये यावत् सौधर्मकल्प में अरुणसिद्ध विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहां उसकी स्थिति चार पल्योपम की कही गई है। वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म ले कर सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त होंगे।

निक्षेप - आर्य सुधर्मा स्वामी ने जम्बूस्वामी से कहा - हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उपासकदशा सूत्र के पांचवें अध्ययन का यही भाव कहा, जो मैंने तुम्हें बतलाया है।

॥ पांचवां अध्ययन समाप्त ॥

छठं अज्झयणं - छठा अध्ययन

श्रमणोपासक कुण्डकौलिक

(३८)

छट्ठस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं कंपिल्लपुरे णयरे। सहसंबवणे उज्जाणे। जियसत्तू राया। कुण्डकोलिए गाहावई। पूसा भारिया। छ हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ, छ वुट्ठिपउत्ताओ, छ पवित्थरपउत्ताओ, छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। सामी समोसढे। जहा कामदेवो तहा सावयधम्मं पडिवज्जइ। सच्चेव वत्तव्वया जाव पडिलाभेमाणे विहरइ।

भावार्थ - छठे अध्ययन का प्रारम्भ। सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं - हे जंबू! भगवान् महावीरस्वामी की विद्यमानता में, कम्पिलपुर नामक नगर था। सहस्राग्र वन नामक उद्यान था। जितशत्रु राजा राज्य करता था। वहाँ 'कुण्डकौलिक' नामक गाथापति रहता था। उसकी पत्नी का नाम पूषा था। छह करोड़ स्वर्ण मुद्राएं भण्डार में, छह करोड़ व्यापार में लगा हुआ था और छह करोड़ की घर-बिखरी थी। भगवान् का कम्पिलपुर पधारना हुआ। कामदेवजी की भांति कुण्डकौलिक ने भी बारह प्रकार का श्रावक-धर्म स्वीकार किया, यावत् साधु-साध्वियों को प्रासुक-एषणीय आहार-पानी बहराते हुए रहने लगे।

अशोकव्याटिका में साधना रत्त

(३९)

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए अण्णया कयाइ पुव्वावरण्हकाल-समयंसि जेणेव असोगवणिया जेणेव पुढविसिलापट्टए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णाममुद्दगं च उत्तरिज्जगं च पुढवीसिलापट्टए ठवेइ, ठवेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - पुष्पावरणहकालसमयंसि - दोपहर के समय, असोगवणिया - अशोक वाटिका, पुढविसिलापट्टए - पृथ्वीशिलापट्टक, णाममुद्दगं - नामांकित अंगूठी, उत्तरिज्जगं- उत्तरीय वस्त्र-दुपट्टा।

भावार्थ - एक दिन दोपहर के समय कुण्डकौलिक श्रमणोपासक अशोकवाटिका में जहां पृथ्वीशिलापट्टक था वहां गया, वहां जाकर उसने अपनी नामांकित मुद्रिका व उत्तरीय वस्त्र उतार कर पृथ्वीशिलापट्टक पर रखा और रखकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा बताई गई धर्म विधि का चिंतन करने लगा।

विवेचन - यद्यपि यहाँ 'सामायिक करने का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, तथापि मुद्रिका व उत्तरीय (नाभि से ऊपर ओढ़ने का वस्त्र) उतारने का कारण सामायिक क्री क्रिया सम्भव है।' अतः उपरोक्त उल्लेख से जाना जा सकता है कि सामायिक में सांसारिक कपड़े नहीं पहनने की परम्परा कितनी प्राचीन है।

नियतिवाद पर देव से चर्चा

(४०)

तए णं तस्स कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे णाममुद्दगं च उत्तरिज्जगं (उत्तरिज्जं) च पुढविसिलापट्टयाओ गेण्हइ, गेण्हित्ता सखिंखिणिं० अंतलिक्खपडिवण्णे कुण्डकोलियं समणोवासयं एवं वयासी-हं भो कुण्डकोलिया समणोवासया! सुंदरी णं देवाणुप्पिया! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती, णत्थि उट्टाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा, णियया सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती, अत्थि उट्टाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा, अणियया सव्वभावा।

कठिन शब्दार्थ - सखिंखिणिं० - वस्त्रों में लगी छोटी छोटी घंटियों (घुंघरूओं) की झनझनाहट के साथ, अंतलिक्खपडिवण्णे - अंतरिक्ष-आकाश में रहा हुआ, सुंदरी - सुंदर-

अच्छा, धम्मपण्णत्ती - धर्मप्रज्ञप्ति, उट्टाणे - उत्थान - साध्य के अनुरूप ऊर्ध्वगामी प्रयत्न, कम्मे - कर्म, बले - बल - दैहिक शक्ति, वीरिए - वीर्य - आंतरिक शक्ति, पुरिसक्कार- पुरुषकार - पौरुष का अभिमान, परक्कमे - पराक्रम - पौरुष के अभिमान के अनुरूप उत्साह एवं ओजपूर्ण उपक्रम, सव्वभावा - सभी भाव - होने वाले कार्य, णियया- नियत - निश्चित, अणियया- अनियत।

भावार्थ - धर्मप्रज्ञप्ति की आराधना करते हुए कुण्डकौलिक के पास एक देव आया। उसने कुण्डकौलिक की मुद्रिका और उत्तरीय वस्त्र उठा लिये तथा घुंघरुओं सहित वस्त्रों से युक्त अंतरिक्ष में रहा हुआ कहने लगा - “अहो कुण्डकौलिक! मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मविधि अच्छी है, क्योंकि उसमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम आदि कुछ भी नहीं है। सभी भावों को नियत माना गया है। परन्तु श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की धर्मप्रज्ञप्ति अच्छी नहीं है, क्योंकि उसमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम आदि माने गए हैं। सभी भावों को अनियत माना गया है।

विवेचन - काल, स्वभाव, कर्म, नियति एवं पुरुषार्थ - ये पाँचों समवाय अनुकूल होने पर ही कार्य-सिद्धि होती है, तथापि केवल एक की अपेक्षा कर शेष की उपेक्षा करने वाले असत्यभाषण करते हैं। जैसे - १. ‘काल’ को ही सर्वेसर्वा मानने वालों का कथन है कि - काल ही भूतों (जीवों) को बनाता है, नष्ट करता है, जब सारा जगत् सोता है तब भी काल जाग्रत रहता है। काल-मर्यादा का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। यथा -

कालः सृजति भूतानि, कालः संहस्ते प्रजाः।

कालः सुप्तोसु जागर्ति, कालो हि दुरतिक्रमः॥

(२) स्वभाववादी का कथन है -

कण्टकस्य तीक्ष्णत्वं, मयूरस्य विचित्रता।

वर्णश्च ताम्रचूडानाम्, स्वभावेन भवन्तिहि॥

काँटे की तीक्ष्णता, मयूर पंखों की विचित्रता, मुर्गे के पंखों का रंग, ये सब स्वभाव से ही होते हैं। बिना स्वभाव के आम से नारंगी नहीं बन सकती।

(३) कर्मवाद का कथन है कि अपने-अपने कर्म का फल सब को मिलता है। केवल कर्म ही सर्वेसर्वा है।

(४) पुरुषार्थवाद का मन्तव्य है कि पुरुषार्थ के आगे शेष सारे समवाय व्यर्थ है। जो भी होता है, पुरुषार्थ से होता है।

(५) नियतिवाद का अभिमत है -

*प्राप्तव्यो नियतिबालाश्रयेण योऽर्थः? योऽवश्यं भवति नृणां शुभाऽशुभो वा।
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने, नाभव्यं भवति न भाविनोऽस्ति नाशः॥*

अर्थ - वही होता है जो नियति के बल से प्राप्त होने योग्य है। चाहे वह शुभ हो या अशुभ। प्राणी चाहे कितना ही प्रयत्न करे, जो होने वाला है, वह अवश्य होता है और जो नहीं होना है, वह कदापि नहीं होता है।

उपरोक्त पाँचों समवाय मिल कर ही सत्य है। नियतिवादी कहता है कि पुरुषार्थ से यदि प्राप्ति हो जाती है, तो सभी को क्यों नहीं होती, जो पुरुषार्थ करते हैं। इधर पुरुषार्थवादी नियतिवादियों का खोखलापन बताते हुए कहते हैं कि यदि नियति से ही प्राप्त होने का है, तो पुरुषार्थ क्यों करते हो? क्यों हाथ-पैर हिलाते हो? रोटी का मुँह में जाना भवितव्यता है, तो अपने-आप पहुँच जायेगी।

देव ने कुण्डकौलिक के समक्ष नियतिवाद का पक्ष प्रस्तुत किया कि यह बात अच्छी है। न तो कोई परलोक है, न पुनर्जन्म। जब वीर्य नहीं हो बल नहीं, कर्म नहीं, बिना कर्म के कैसा सुख और कैसा दुःख? जो भी होता है, भवितव्यता से होता है।

कुण्डकौलिक का प्रश्न

(४१)

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए तं देवं एवं वयासी-जइ णं देवाणुप्पिया!
सुंदरी गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती-णत्थि उट्टाणे इ वा जाव णियया
सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती-अत्थि उट्टाणे
इ वा जाव अणियया सव्वभावा, तुमे णं देवाणुप्पिया! इमा एयारूवा दिव्वा
देविट्ठी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे किण्णा लद्धे, किण्णा पत्ते, किण्णा
अभिसमण्णागए, किं उट्टाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं, उदाहु अणुट्टाणेणं
अकम्मेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं?

कठिन शब्दार्थ - दिव्वा - दिव्य, देविह्नी - देव ऋद्धि, देवजुई - देव द्युति, देवाणुभावे-
देवानुभाग-प्रभाव, किणा - कैसे, लद्धे - उपलब्ध, पत्ते - संप्राप्त, अभिसमण्णागए -
अभिसमन्वागत-स्वायत्त, उदाहु - अथवा, अणुट्टाणेणं - अनुत्थान से, अपुरिसक्कारपरक्कमेणं-
अपौरुषाकारपराक्रम से।

भावार्थ - तब कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ने उस देव से कहा - “हे देव! आपने कहा कि
‘मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति अच्छी है। उसमें उत्थान आदि की नास्ति यावत् सभी भाव
अनियत हैं और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की धर्मप्रज्ञप्ति अच्छी नहीं है, क्योंकि उसमें
उत्थान आदि का अस्तित्व यावत् सभी भाव अनियत बताए गए हैं। सो हे देव! तुम्हें इस प्रकार की
यह जो दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति तथा दिव्य देवानुभाग प्राप्त हुआ है, वह उत्थान यावत्
पुरुषकारपराक्रम से प्राप्त हुआ है या अनुत्थान, अकर्म यावत् अपुरुषकारपराक्रम से?”

देव का उत्तर

तए णं से देवे कुण्डकोलियं समणोवासयं एवं वयासी-एवं खलु
देवाणुप्पिया! मए इमेयारूवा दिव्वा देविह्नी ३ अणुट्टाणेणं जाव अपुरिसक्कार-
परक्कमेणं लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।

भावार्थ - उस देव ने कुण्डकौलिक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा - “हे देवानुप्रिय! मुझे
यह दिव्य ऋद्धि, द्युति, देवानुभाग अनुत्थान से यावत् अपुरुषकार-पराक्रम से प्राप्त हुआ है।”

देव पराजित हो गया

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए तं देवं एवं वयासी-जइ णं देवा०!
तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविह्नी ३ अणुट्टाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं
लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया, जेसि णं जीवाणं णत्थि उट्टाणे इ वा जाव परक्कमे
इ वा, ते किं ण देवा? अह णं देवा०! तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविह्नी ३
उट्टाणेणं जाव परक्कमेणं लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया, तो जं वदसि - सुंदरी
णं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती, णत्थि उट्टाणे इ वा जाव णियया

सव्वभावा, मंगुली णं सममस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती-अत्थि उट्ठाणे
इ वा जाव अणियया सव्वभावा, तं ते मिच्छा।

कठिन शब्दार्थ - वदसि - कहते हो, मिच्छा - मिथ्या।

भावार्थ - तब कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ने उस देव से कहा - “हे देव! यदि तुमने अनुत्थान यावत् अपुरुषकार-पराक्रम से ही दिव्य देव-ऋद्धि, द्युति और देवानुभाग प्राप्त कर लिया, तो जो जीव अनुत्थान यावत् अपुरुषकार-पराक्रम वाले हैं, वे देव क्यों नहीं बने? अतः हे देव! तुमने जो यह देव-ऋद्धि प्राप्त की है, वह उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम से प्राप्त की है, तब भी तुम यह कहते हो कि ‘मंखलिपुत्र गोशालक की धर्म-प्रज्ञप्ति अच्छी है जो सभी भावों को नियत बताती है तथा भगवान् महावीर स्वामी की धर्म-प्रज्ञप्ति अच्छी नहीं है, जो सभी भावों को अनियत बताती है।’ तुम्हारा यह कथन मिथ्या है।”

विवेचन - यदि देवभव के योग्य पुरुषार्थ के बिना ही कोई देव बन सकता हो, तो सभी जीव देव ही क्यों नहीं हो गए? अतः देव का यह कथन असत्य है कि ‘मैं बिना उत्थानादि के ही देव बन गया हूँ’।

तए णं से देवे कुण्डकोलिएणं समणोवासएणं एवं कुत्ते समाणे संकिए जाव
कलुससमावण्णे णो संचाएइ कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स किंचि
पामोक्खमाइक्खित्तए, णाममुद्दयं च उत्तरिज्जयं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवेत्ता
जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

कठिन शब्दार्थ - संकिए - शंकित-शंका युक्त, कलुससमावण्णे - कालुष्य युक्त-
ग्लानि युक्त या हतप्रभ, पामोक्खमाइक्खित्तए - प्रत्युत्तर नहीं दे सका, जामेव - जिस,
दिसिं - दिशा से, पाउब्भूए - आया, तामेव - उसी, पडिगए - लौट गया।

भावार्थ - कुण्डकौलिक का उपरोक्त कथन सुन कर देव शंकित हो गया, यावत् उसका
चित्त भ्रमित हो गया। अतः वह कुण्डकौलिक को कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दे सका, वरन् स्वयं
निरुत्तर पराजित हो गया। नामांकित अंगूठी तथा उत्तरीय वस्त्र को पृथ्वीशिलापट्टक पर रख कर
जहाँ से आया था, वहीं चला गया।

कुण्डकौलिक तुम धन्य हो

तेणं कालेणं तेणं समणं सामी समोसढे । तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धडे हट्ट (तुट्टे) जहा कामदेवो तथा णिगच्छइ जाव पज्जुवासइ । धम्मकहा ।

भावार्थ - उस काल और उस समय भगवान् महावीर स्वामी कम्पिलपुर पधारे । भगवान् के पधारने का वृत्तांत जान कर कुण्डकौलिक बहुत हर्षित हुए यावत् कामदेव की भाँति पर्युपासना करने लगे । भगवान् ने धर्मदेशना फरमाई ।

(४२)

‘कुण्डकोलियाइ!’ से समणे भगवं महावीरे कुण्डकोलियं समणोवासयं एवं वयासी-से णूणं कुण्डकोलिया! कल्लं तुब्भं पुब्बावरणहकालसमयंसि असोगवणियाए एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था । तए णं से देवे णाममुद्दयं च तहेव जाव पडिगए । से णूणं कुण्डकोलिया! अट्टे समट्टे? हंता अत्थि । तं धण्णे सि णं तुमं कुण्डकोलिया! जहा कामदेवो ।

भावार्थ - कुण्डकौलिक को संबोधित कर भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया - “हे कुण्डकौलिक! कल दोषहर के समय अशोकवाटिका में तुम्हारे समीप एक देव आया और उसने तुम्हारे उत्तरीय व नामांकित मुद्रिका उठाई यावत् प्रश्नोत्तरों का वर्णन यावत् लौट गया । हे कुण्डकौलिक! क्या यह बात सत्य है?” कुण्डकौलिक ने उत्तर दिया - “हाँ भगवन्! सत्य है।” तब भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया - “हे कुण्डकौलिक! तुम धन्य हो” यावत् कामदेव के समान सारा वर्णन जानना चाहिये ।

‘अज्जोइ’! समणे भगवं महावीरे समणे णिगंथे य णिगंथीओ य आमंतित्ता एवं वयासी-जइ ताव अज्जो! गिहिणो गिहिमज्जावसंता णं अण्णउत्थिए अट्टेहि य हेऊहि य पसिणेहि य कारणेहि य वागरणेहि य णिप्पट्टपसिणवागरणे करंति,

सक्का पुणाइं अज्जो! समणेहिं णिगंग्थेहिं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्जमाणेहिं
अण्णउत्थिया अट्टेहि य जाव णिप्पट्टपसिणवागरणा करित्तए।

कठिन शब्दार्थ - अज्जोइ - हे आर्यो, अण्णउत्थिए - अन्यमतानुयायियों को, अट्टेहि-
अर्थ से, हेऊहि - हेतु से, पसिणेहि - प्रश्न से, कारणेहि - कारण से, वागरणेहि -
आख्यान से, णिप्पट्टपसिणवागरणा - प्रश्नोत्तरों से निरुत्तर।

भावार्थ - तत्पश्चात् भगवान् महावीर स्वामी ने साधु-साध्वियों को आमंत्रित कर फरमाया-
“हे आर्यो! गृहस्थावस्था में रहे हुए श्रावक भी अन्यतीर्थियों को अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण,
आख्यान आदि तथा प्रश्नोत्तरों से निरुत्तर कर देते हैं, तो द्वादशांग के अध्येता गणिपिटकधर
साधु-साध्वी का तो कहना ही क्या? उन्हें तो अवश्य ही अन्यतीर्थियों को निरुत्तर करना चाहिए।

तए णं समणा णिगंग्था य णिगंग्थीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स
तहत्ति एयमट्टं विणएणं पडिसुणेंति। तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए समणं
भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता
अट्टमादियइ, अट्टमादित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। सामी
बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के उपरोक्त कथन को उन साधु साध्वियों ने
“ऐसा ही है भगवन्!” - यों कह कर विनयपूर्वक स्वीकार किया। श्रमणोपासक कुण्डकौलिक ने
श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार किया, प्रश्न पूछे, समाधान प्राप्त किया तथा
जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर लौट गया। भगवान् महावीर स्वामी अन्य जनपदों
में विहार कर गए।

(४३)

तए णं तस्स कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स बहूहिं सील जाव
भावेमाणस्स चोहस्स संवच्छराइं वीडक्कंताइं, पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा
वट्टमाणस्स अण्णया कयाइ जहा कामदेवो तहा जेट्टपुत्तं ठवेत्ता तहा पोसहसालाए
जाव धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - संवच्छराडं - वर्ष, वीडकंताडं - व्यतीत हो गए, जेट्टपुत्तं - ज्येष्ठ पुत्र को।

भावार्थ - तब कुण्डकौलिक श्रमणोपासक बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत यावत् पौषधोपवास तथा तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए रहने लगे। श्रावक पर्याय के चौदह वर्ष व्यतीत हो गये। पन्द्रहवें वर्ष के किसी दिन कामदेव श्रावक की तरह अपने ज्येष्ठ पुत्र को अपने स्थान पर नियुक्त कर पौषधशाला में धर्म प्रज्ञप्ति की आराधना करने लगे।

एवं एक्कारस उवासगपडिमाओ, तहेव जाव सोहम्मे कप्पे अरुणज्झए विमाणे जाव अंतं काहिइ ॥ णिक्खेवो ॥

॥ छट्टं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ - कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ने ग्यारह उपासक प्रतिमाओं का सम्यक् आराधन स्पर्शन एवं पालन किया यावत् सारा वर्णन जान लेना चाहिये। संलेखना कर के समाधिपूर्वक काल करके सौधर्म देवलोक के अरुणध्वज विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए। जहां उनकी स्थिति चार पत्त्योपम की कही गई है। वहां से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध यावत् सभी दुःखों का अंत करेंगे।

निक्षेप - आर्य सुधर्मा स्वामी ने जम्बूस्वामी से कहा - हे जम्बू! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उपासकदशा सूत्र के छठे अध्ययन के यही भाव फरमाये, जो मैंने तुम्हें बतलाये हैं।

॥ छठा अध्ययन समाप्त ॥



सत्तमं अज्झयणं - सातवां अध्ययन

श्रमणोपासक सकडालपुत्र

(४४)

सत्तमस्स उक्खेवो। पोलासपुरे णामं णयरे। सहस्संबवणे उज्जाणे। जियसत्तू राया। तत्थ णं पोलासपुरे णयरे सहालपुत्ते णामं कुंभकारे आजीविओवासए परिवसइ, आजीवियसमयंसि लद्धे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे विणिच्छियट्ठे अभिगयट्ठे अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते य, अयमाउसो! आजीवियसमए अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे ति आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - कुंभकारे - कुम्भकार-कुम्हार, आजीविओवासए - आजीविकोपासक-आजीविक सिद्धान्त या गोशालक मत का अनुयायी, आजीविय समयंसि - आजीविक मत में, लद्धे - लब्धार्थ - श्रवण आदि द्वारा यथार्थ तत्त्व को प्राप्त किए हुए, गहियट्ठे - गृहीतार्थ - ग्रहण किये हुए, पुच्छियट्ठे - पृष्ठार्थ - प्रश्न द्वारा उसे स्थित किए हुए, विणिच्छियट्ठे - विनिश्चितार्थ-निश्चित रूप में आत्मसात किए हुए, अभिगयट्ठे - अभिगतार्थ-स्वायत्त किए हुए, अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते - अस्थि और मज्जा पर्यन्त धर्म के प्रति प्रेम व अनुराग से भरा हुआ, अट्ठे - अर्थ - प्रयोजनभूत, परमट्ठे - परमार्थ, सेसे - शेष, अणट्ठे - अनर्थ - अप्रयोजनभूत।

भावार्थ - सप्तम अध्ययन के प्रारम्भ में भगवान् सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं - हे जम्बू! उस काल उस समय पोलासपुर नामक नगर के बाहर सहस्राग्रवन नामक उद्यान था। जितशत्रु वहां का राजा था। उस पोलासपुर नगर में सकडालपुत्र नामक कुम्हार रहता था जो गोशालक मत - आजीविक सिद्धान्त को मानने वाला था। वह आजीविक मत के यथार्थ तत्त्व को प्राप्त किए हुए, ग्रहण किये हुए, जिज्ञासा या प्रश्न द्वारा उसे स्थित किए हुए निश्चित रूप में आत्मसात् किये हुए और स्वायत्त किये हुए था। वह अस्थि और मज्जा पर्यन्त अपने धर्म के प्रति प्रेम व अनुराग से भरा हुआ था। वह आजीविक मत को ही अर्थ, परमार्थ और इसके सिवाय अन्य को अनर्थ मानता था। इस प्रकार वह आजीविक मतानुसार आत्मा को भावित करता हुआ विचर रहा था।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एक्का हिरण्णकोडी णिहाणपउत्ता, एक्का वुट्ठिपउत्ता, एक्का पवित्थरपउत्ता, एक्के वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं। तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स अग्गिमित्ता णामं भारिया होत्था।

भावार्थ - उस सकडालपुत्र आजीविकोपासक के पास एक करोड़ स्वर्ण मुद्राएं निधान में थीं, एक करोड़ व्यापार में तथा एक करोड़ की घर बिखरी थी। दस हजार गायों का एक वज्र था। उसकी पत्नी का नाम अग्निमित्रा था।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलासपुरस्स णयरस्स बहिया पंच कुम्भकारावणसया होत्था। तत्थ णं बहवे पुरिसा दिण्णभइभत्तवेयणा कल्लाकल्लिं बहवे करए य वारए य पिहडए य घडए य अद्धघडए य कलसए य अल्लिंजरए य जम्बूलए य उट्टियाओ य करेत्ति। अण्णे य से बहवे पुरिसा दिण्णभइभत्तवेयणा कल्लाकल्लिं तेहिं बहूहिं करएहि य जाव उट्टियाहि य रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

कठिन शब्दार्थ - बहिया - बाहर, पंचकुम्भकारावणसया - पांच सौ कुम्हार की कर्मशालाएं, दिण्णभइभत्तवेयणा - भोजन तथा मजदूरी रूप वेतन पर काम करने वाले, कल्लाकल्लिं - प्रतिदिन प्रभात होते ही, करए - करक-करवे, वारए - वारक-गडुए, पिहडए-पिठर-आटा गूंधने या दही जमाने के काम में आने वाली परातें या कुंडे, घडए - घटक-तालाब आदि से पानी लाने के काम में आने वाले घड़े, अद्धघडए - अधघड़े-छोटे घड़े, कलसए - कलशक-कलशे, अल्लिंजरए - अल्लिंजर-पानी रखने के बड़े घड़े, जंबूलए - जंबूलक-सुराहियाँ, उट्टियाओ - उष्ट्रिका-तैल, घी आदि रखने में प्रयुक्त लम्बी गर्दन और बड़े पेट वाले बर्तन-कूपे, रायमग्गेहि - राजमार्ग पर।

भावार्थ - पोलासपुर नगर के बाहर उस सकडालपुत्र आजीविकोपासक के पांच सौ कर्मशालाएं-मिट्टी के बरतन बनाने की दुकानें थीं। वहां भोजन तथा मजदूरी रूप वेतन पर काम करने वाले बहुत से पुरुष प्रतिदिन प्रभात होते ही करवे, गडुए, परातें या कुंडे, घड़े, छोटे घड़े, कलसे, बड़े मटके, सुराहियाँ तथा कूपे बनाने में लग जाते थे। अन्य बहुत से नौकर थे जो

प्रतिदिन उन बरतनों को राजमार्ग पर बेचा करते थे। इस प्रकार वह कुंभकार अपना व्यवसाय चलाता था।

सकडालपुत्र को देव संदेश (४५)

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अण्णया कयाइ पुव्वावरण्हकाल-समयंसि जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं जाव परिहिए सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी -

कठिन शब्दार्थ - अंतलिक्खपडिवण्णे - आकाश में अवस्थित, सखिंखिणियाइं - छोटी छोटी घंटियों (घुंघुरुओं) से युक्त, परिहिए - पहने हुए।

भावार्थ - एक दिन सकडालपुत्र आजीविकोपासक मध्याह्न (दोपहर) के समय अशोकवाटिका में जा कर मंखलिपुत्र गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति का चिंतन करने लगा। तब उसके समक्ष एक देव प्रकट हुआ। घुंघुरुओं सहित श्रेष्ठवस्त्रों को धारण करने वाला आकाश में स्थित उस देव ने आजीविकोपासक सकडाल पुत्र से इस प्रकार कहा -

एहिइ णं देवाणुप्पिया! कल्लं इहं महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे तीयपडुप्पण्णमणागयजाणए अरहा जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी तेलोक्कवहियमहियपूइए सदेवमणुयासुरस्सलोगस्स अच्चणिज्जे (पूयणिज्जे) वंदणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं जाव पज्जुवासणिज्जे तच्चकम्मसंपयासंपउत्ते, तं णं तुमं वंदेजाहि जाव पज्जुवासेजाहि, पाडिहारिणं पीढफलगसिज्जासंधारणं उवणिमंतेजाहि, दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

कठिन शब्दार्थ - कल्लं - कल प्रातःकाल, महामाहणे - महामाहन, उप्पण्णणाण-

दंसणधरे - अप्रतिहत ज्ञान दर्शन के धारक, तीयपडुप्पणमणागयजाणए - अतीत, वर्तमान और भविष्य-तीनों कालों के ज्ञाता, अरहा - अर्हत्-परम पूज्य, परम समर्थ, जिणे - जिन-रागद्वेष के विजेता, सव्वणू - सर्वज्ञ, सव्वदरिसी - सर्वदर्शी, तेलोक्कवहियमहियपूडए - तीन लोक द्वारा अर्चनीय (पूजा योग्य) वंदनीय (स्तवन योग्य) नमस्करणीय, सक्कारणिज्जे - सत्करणीय, सम्माणणिज्जे - सम्माननीय, कल्लाणं - कल्याण रूप, मंगलं - मंगलरूप, देवयं - देवरूप, चेइयं - ज्ञानवंत, पज्जुवासणिज्जे - पर्युपासनीय, तच्चकम्मसम्पयासंपउत्ते - तथ्य कर्म - सत्कर्म रूप संपत्ति युक्त, वंदेज्जाहि - वंदना करना, पज्जुवासेज्जाहि - पर्युपासना करना, पाडिहारिणं - प्रातिहारिक-ऐसी वस्तुएं जिन्हें साधु साध्वी उपयोग में लेकर वापस कर देते हैं, उवणिमंतेज्जाहि - आमंत्रित करना।

भावार्थ - हे देवानुप्रिय! कल यहाँ महामाहन, अप्रतिहत ज्ञान दर्शन (केवलज्ञान-केवलदर्शन) के धारक, भूत, भविष्य और वर्तमान के सम्पूर्ण ज्ञाता, अर्हत्, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तीनों लोक में वंदनीय, महामहिम, त्रिलोक पूजित, सभी देव-मनुष्य-दानव द्वारा अर्चनीय, वंदनीय, सत्कार सम्मान के योग्य, कल्याणकारी, मंगलकारी, देवाधिदेव, ज्ञान रूप यावत् पर्युपासना के योग्य, तथ्य कर्म-सम्पदा संप्रयुक्त-तप प्रभाव से जिन्हें अनंत चतुष्टय, अष्टमहाप्रतिहार्य, चौतीय अतिशय आदि की प्राप्ति हुई है, ऐसे एक महापुरुष पधारेंगे। इसलिए तुम उन्हें वन्दन करना यावत् पर्युपासना करना, प्रातिहारिक-पीठ-पाट फलक-बाजोट, शय्या-ठहरने का स्थान, संस्तारक-बिछौने के लिए घास आदि हेतु उन्हें आमंत्रित करना। इस प्रकार दो-तीन बार कह कर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया।

सकडालपुत्र की कल्पना

(४६)

तए णं तस्स सहालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तेणं देवेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ समुप्पण्णे - 'एवं खलु ममं धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मंखलिपुत्ते, से णं महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे जाव तच्चकम्मसंपयासंपउत्ते, से णं कल्लं इहं हव्वमागच्छिस्सइ। तए णं तं अहं वंदिस्सामि जाव पज्जुवासिस्सामि, पाडिहारिणं जाव उवणिमंतिस्सामि'।

कठिन शब्दार्थ - धम्मायरिए - धर्माचार्य, धम्मोवएसए - धर्मोपदेशक, वंदिस्सामि - वंदना करूंगा, पज्जुवासिस्सामि - पर्युपासना करूंगा, उवणिमंतिस्सामि - निमंत्रण करूंगा।

भावार्थ - उस देव के द्वारा उपरोक्त कथन सुन कर सकडालपुत्र ने विचार किया कि मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोसालक महामाहन् यावत् अतिशयधारी हैं। वे कल यहाँ पधारेंगे। मैं उन्हें वन्दना-नमस्कार यावत् पर्युपासना करूंगा। प्रातिहारिक पीठ फलक आदि का निमंत्रण करूंगा।

विवेचन - यद्यपि देव ने तो भगवान् महावीर स्वामी के लिए महामाहन्, सर्वज्ञ आदि शब्दों का प्रयोग किया था, पर सकडालपुत्र ने गोसालक के लिए सारा वृत्तान्त समझा।

भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण

(४७)

तए णं कल्लं जाव जलंते समणे भगवं महावीरे जाव समोसरिए। परिसा णिग्गया जाव पज्जुवासइ। तए णं से सहालपुत्ते आजीविओवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे - 'एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ, तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं, वंदामि जाव पज्जुवासामि' एवं संपेहेइ, संपेहिता ण्हाए जाव पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्पमहग्घाभरणाळं कियसरीरे मणुस्सवग्गुरापरिगए साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पोलासपुरं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जाव पज्जुवासइ।

कठिन शब्दार्थ - सुद्धप्पावेसाइं - शुद्ध सभायोग्य (मांगलिक एवं उत्तम) वस्त्र, अप्पमहग्घाभरणाळं कियसरीरे - थोड़े से बहुमूल्य (वजन में अल्प और मूल्य में ऊंचे) आभूषणों से शरीर अलंकृत किया, मणुस्सवग्गुरापरिगए - अनेक मनुष्यों से घिरा हुआ।

भावार्थ - तत्पश्चात् अगले दिन प्रातःकाल होने पर श्रमण भगवान् महावीरस्वामी पोलासपुर के सहस्राप्रवन उद्यान में पधारे। परिषद् धर्मकथा सुनने के लिए गई और पर्युपासना करने लगी।

सकडालपुत्र आजीविकोपासक को ज्ञात हुआ कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे हैं तो उसने सोचा मैं भी जाकर भगवान् की वंदना यावत् पर्युपासना करूँ। ऐसा विचार कर उसने स्नान किया यावत् शुद्ध सभा योग्य वस्त्र पहने, वजन में अल्प और मूल्य में ऊँचे आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया और मित्रजनों से घिरा हुआ वह अपने घर से निकला, पोलासपुर नगर के मध्य होता हुआ (राज मार्ग से) सहस्राप्रवन उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप आया और तीन बार आवर्तन युक्त वंदना नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा।

धर्म देशना

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासयस्स तीसे य महइ जाव धम्मकहा समत्ता।

भावार्थ - तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आजीविकोपासक सकडालपुत्र को तथा विशाल परिषद् को धर्मदेशना दी।

‘सद्दालपुत्ता’ इ! समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी - ‘से णूणं सद्दालपुत्ता! कल्लं तुमं पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया जाव विहरसि। तए णं तुब्भं एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवण्णे एवं वयासी - हं भो सद्दालपुत्ता! तं चेव सव्वं जाव पज्जुवासिस्सामि। से णूणं सद्दालपुत्ता! अट्ठे समट्ठे?’ हंता अत्थि। (तं) णो खलु सद्दालपुत्ता! तेणं देवेणं गोसालं मंखलिपुत्तं पणिहाय एवं बुत्ते।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सकडालपुत्र आजीविकोपासक से कहा - “हे सकडालपुत्र! कल दोपहर के समय जब तुम अशोकवाटिका में थे तब एक देव तुम्हारे पास आया। आकाश में स्थित उस देव ने तुम्हें इस प्रकार कहा - हे सकडाल पुत्र! कल प्रातः अर्हत् केवली आएंगे। तुमने उसे गोशालक के लिए समझा यावत् उसकी पर्युपासना का विचार किया इत्यादि। यह बात सत्य है।”

सकडालपुत्र ने उत्तर दिया - हाँ, भगवन्! यह सत्य है तब भगवान् ने फरमाया - ‘हे सकडालपुत्र! देव का कथन मंखलिपुत्र गोशालक के लिये नहीं था।’

तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासयस्स समणेणं भगवया महावीरेणं

सातवां अध्ययन - श्रमणोपासक सकडालपुत्र - भ० और सकडालपुत्र के प्रश्नोत्तर १३३

एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए ४ - 'एस णं समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे जाव तच्चकम्मसंपयासंपउत्ते, तं सेयं खलु ममं समणं भगवं महावीरं वंदित्ता णमंसित्ता पाडिहारिएणं पीढफलग जाव उवणिमंतित्तए' एवं संपेहेइ, संपेहित्ता उट्टाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - 'एवं खलु भंते! ममं पोलासपुरस्स णयरस्स बहिया पंच कुंभकारावणसया। तत्थ णं तुब्भे पाडिहारियं पीढ जाव संथारयं ओगिण्हित्ताणं विहरइ'।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सकडालपुत्र आजीविकोपासक को यह ज्ञात हो गया कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महामाहन्, अप्रतिहत ज्ञान दर्शन के धारक यावत् सत्कर्म संपत्ति युक्त है। अतः मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदना नमस्कार करके प्रातिहारिक पीठ फलक हेतु आमंत्रित करूँ। इस प्रकार विचार कर वह उठा और उठ कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार किया और निवेदन किया - 'हे भगवन्! पोलासपुर नगर के बाहर मेरी पांच सौ दुकानें हैं आप वहां पाट पाटले आदि ग्रहण कर विराजें।'

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पंचकुंभकारावणसएसु फासुएसणिज्जं पाडिहारियं पीढफलग जाव संथारयं ओगिण्हित्ताणं विहरइ।

भावार्थ - तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सकडालपुत्र आजीविकोपासक के इस कथन को स्वीकार किया और उसकी पांच सौ दुकानों में प्रासुक एषणीय प्रातिहारिक पीठ फलक यावत् संस्तारक ग्रहण कर वहां रहने लगे।

भगवान् और सकडालपुत्र के प्रश्नोत्तर

(४६)

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अण्णया कयाइ वायाहययं कोलालभंडं अंतो सालाहितो बहिया णीणेइ, णीणेत्ता आयवंसि दलयइ। तए

गं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी - 'सद्दालपुत्ता! एस गं कोलालभंडे कओ?

'तए गं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी-एस गं भंते! पुब्बिं मट्टिया आसी, तओ पच्छा उदएणं णि(मि)गिज्जइ, २ ता छारेण य करिसेण य एगयओ मीसिज्जइ, मीसिज्जिता चक्के आरोहिज्जइ, तओ बहवे करगा य जाव उट्टियाओ य कज्जंति।

कठिन शब्दार्थ - वायाहयं - हवा लगे हुए, कोलालभंडं - मिट्टी के बर्तनों को, अंतो - भीतर से, सालाहितो - कर्म शाला से, णीणेइ - निकालता है, आयवंसि - धूप में, मट्टिया - मिट्टी, उदएणं - पानी से, णिमिज्जइ (णिगिज्जइ) - भिगोया जाता है, छारेण - राख से, करिसेण - गोबर से, मीसिज्जइ - मिलाया जाता है, चक्के - चाक पर, आरोहिज्जइ - चढ़ाया जाता है, कज्जंति - बनाए जाते हैं।

भावार्थ - एक दिन सकडालपुत्र आजीविकोपासक वायु से कुछ सूखे बर्तनों को घर से बाहर निकाल कर धूप में सूखा रहा था। उस समय वहाँ पधारे हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सकडालपुत्र आजीविकोपासक से कहा - 'हे सकडालपुत्र! ये मिट्टी के बर्तन कैसे बने हैं?'

तब सकडालपुत्र ने उत्तर दिया - 'हे भगवन्! पहले यह सब मिट्टी रूप में थे। उस मिट्टी को पानी में भिगोया जाता है। फिर उसमें राख एवं लीद मिलाते हैं तथा उस पिण्ड को खूब खूँदा जाता है, तब उसे चाक पर चढ़ा कर भाँति-भाँति के बर्तन बनाए जाते हैं।'

तए गं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी - 'सद्दालपुत्ता! एस गं कोलालभंडे किं उट्टाणेणं जाव पुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जंति, उदाहु अणुट्टाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जंति?

तए गं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी - 'भंते! अणुट्टाणेणं जाव अपुरिसक्कारपरक्कमेणं णत्थि उट्टाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा, णियया सव्वभावा।'

भावार्थ - तब भगवान् महावीर स्वामी ने सकडालपुत्र आजीविकोपासक से पूछा - 'हे सकडालपुत्र! ये मिट्टी के बर्तन उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम से बने हैं या (बिना बनाए ही) अनुत्थान यावत् अपुरुषकार-पराक्रम से बने हैं?'

सातवां अध्ययन - श्रमणोपासक सकडालपुत्र - भ० और सकडालपुत्र के प्रश्नोत्तर १३५

सकडालपुत्र ने उत्तर दिया - “हे भगवन्! अनुत्थान यावत् अपुरुषकार पराक्रम से बने हैं। इसमें उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम नहीं है, क्योंकि सभी भाव नियत हैं।”

(५०)

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी -
‘सद्दालपुत्ता! जइ णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं
अवहरेज्जा वा विक्खिरेज्जा वा भिंदेज्जा वा अच्छिंदेज्जा वा परिट्ठवेज्जा वा,
अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरेज्जा, तस्स
णं तुमं पुरिसस्स किं दंडं वत्तेज्जासि?’

भंते! अहं णं तं पुरिसं आओसेज्जा वा हणेज्जा वा बंधिज्जा वा महेज्जा वा
तज्जेज्जा वा तालेज्जा वा णिच्छोडेज्जा वा णिब्भच्छेज्जा वा अकाले चेव
जीवियाओ ववरोवेज्जा।

कठिन शब्दार्थ - वायाहयं - हवा लगे हुए, पक्केलयं - धूप में सुखाए हुए,
कोलालभंडं - मिट्टी के बर्तनों को, अवहरेज्जा - चुरा ले, विक्खेरेज्जा - बिखेर दे, भिंदेज्जा-
फोड़ दे, अच्छिंदेज्जा - छेद कर दे, परिट्ठवेज्जा - उठा कर बाहर डाल दे, दंडं - दण्ड,
वत्तेज्जासि - दोगे, आओसेज्जा - फटकारूंगा, हणेज्जा - पीटूंगा, बंधेज्जा - बांध दूंगा,
महेज्जा - रौंद डालूंगा, तज्जेज्जा- तर्जित करूंगा-धमकाऊंगा, तालेज्जा - ताड़न-थप्पड़ घूंसे
मारूंगा, णिच्छोडेज्जा- धन आदि छीन लूंगा, णिब्भच्छेज्जा - भर्त्सना करूंगा।

भावार्थ - तब भगवान् ने सकडालपुत्र से पूछा - “हे सकडालपुत्र! यदि कोई पुरुष धूप
में सूखे हुए इन कच्चे और पके बर्तनों का अपहरण कर ले, बिखेर दे, फोड़ दे, छेद कर दे
अथवा फैंक दे और तेरी अग्निमित्रा भार्या के साथ भोग भोगे, तो तुम उस पुरुष को दण्ड दोगे
क्या?” तब सकडालपुत्र ने कहा -

“हे भगवन्! ऐसे पुरुष पर मैं आक्रोश करूंगा, डण्डे आदि से मारूंगा, रस्सी आदि से
बाँधूंगा, पीटूंगा, थप्पड़-मुक्के आदि से ताड़ना-तर्जना करूंगा, उसे फटकारूंगा, तिरस्कार करूंगा
यावत् जीवन-रहित कर दूंगा।

सद्दालपुत्ता! णो खलु तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं वा पक्केल्लयं वा

कोलालभंडं अवहरइ वा जाव परिट्टवेइ वा, अग्निमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, णो वा तुमं तं पुरिसं आओसेज्जसि वा हणेज्जसि वा जाव अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जसि, जइ णत्थि उट्टाणे इ वा जाव परक्कमे इ वा णियया सव्वभावा। अहं णं तुब्भं केइ पुरिसे वायाहयं जाव परिट्टवेइ वा, अग्निमित्ताए वा जाव विहरइ, तुमं वा तं पुरिसं आओसेसि वा जाव ववरोवेसि, तो जं वदसि णत्थि उट्टाणे इ वा जाव णियया सव्वभावा तं ते मिच्छा।

कठिन शब्दार्थ - आओसेज्जसि - फटकारते हो, हणिज्जसि - मारते हो।

भावार्थ - तब भगवान् ने फरमाया - “हे सकडालपुत्र! तुम्हारे मतानुसार न तो कोई पुरुष तुम्हारे कच्चे-पके बरतन चुराता यावत् फैंकता है और न कोई अग्निमित्रा भार्या के साथ भोग ही भोगता है। इसलिये तुम उस पुरुष पर न तो आक्रोश करोगे यावत् प्राणरहित नहीं करोगे। यदि उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम नहीं है, सभी भाव नियत हैं, जो होना होता है वही होता है, तो तुम बरतन चुराने वाले यावत् फैंकने वाले को तथा अग्निमित्रा भार्या के साथ कुकर्म करने वाले को आक्रोश यावत् प्राण-दण्ड क्यों दोगे? अतः उत्थान यावत् पुरुषकार-पराक्रम नहीं मानने का तुम्हारा मत मिथ्या है।”

एत्थ णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए संबुद्धे।

भावार्थ - भगवान् का युक्तियुक्त वचन सुन कर सकडालपुत्र को बोध प्राप्त हुआ।

सकडालपुत्र श्रमणोपासक बना

(५१)

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी - ‘इच्छामि णं भंते! तुब्भं अंतिए धम्मं णिसामेत्तए।’

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य जाव धम्मं परिकहेइ।

भावार्थ - तदनन्तर आजीविकोपासक सकडालपुत्र ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदन नमस्कार कर कहा - 'हे भगवन्! मैं आपसे धर्म सुनना चाहता हूँ।'

तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सकडालपुत्र आजीविकोपासक तथा उपस्थित परिषद् को धर्मकथा फरमाई।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्ट जाव हियए जहा आणंदो तहा गिहिधम्मं पडिवज्जइ। णवरं एगा हिरण्णकोडी णिहाणपउत्ता, एगा हिरण्णकोडी वुट्ठिपउत्ता, एगा हिरण्णकोडी पवित्थरपउत्ता, एगे वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं, जाव समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव पोलासपुरे णयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोलासपुरं णयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव अग्गिमित्ता भारिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अग्गिमित्तं भारियं एवं वयासी - 'एवं खलु देवाणुप्पिए! समणे भगवं महावीरे जाव समोसढे, तं गच्छाहि णं तुमं समणं भगवं महावीरं वंदाहि जाव पज्जुवासाहि, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि।'

कठिन शब्दार्थ - पंचाणुव्वइयं - पांच अणुव्रत, सत्तसिक्खावइयं - सात शिक्षाव्रत, पडिवज्जाहि - स्वीकार करो।

भावार्थ - आजीविकोपासक सकडालपुत्र श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुन कर अत्यंत प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुए और उन्होंने भी आनन्द की तरह श्रावक धर्म स्वीकार किया।

विशेषता यह है कि पाँचवें परिग्रह-परिमाण में एक करोड़ स्वर्णमुद्रा निधान में, एक करोड़ व्यापार में तथा एक करोड़ की घर-बिखरी और दस हजार गायों का एक वज्र, इस के उपरांत परिग्रह का त्याग किया। व्रत ग्रहण कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदना-नमस्कार किया और अपने घर आ कर अग्निमित्रा भार्या से कहा - 'हे देवानुप्रिय! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी यहाँ विराजमान हैं। तुम जाओ, वंदना-नमस्कार यावत् पर्युपासना करो। पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप श्रावकधर्म स्वीकार करो।

अग्निमित्रा श्रमणोपासिका हुई

(५२)

तए णं सा अग्निमित्रा भारिया सद्दालपुत्तस्स समणोवासगस्स 'तह'त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी - 'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! लहुकरणजुत्तजोइयं समखुरवालिहाण-समलिहियसिंगएहिं जंबूणयामयकलावजोत्त-पइविसिट्ठएहिं रययामयघंटसुत्त-रज्जुगवरकं चण-खइयणत्था-पग्गहोग्गहियएहिं णीलुप्पलकयामेलएहिं पवरगोणजुवाणएहिं णाणामणिकणगघंटियाजालपरिगयं सुजायजुगजुत्त-उज्जुगपसत्थसुविरइयणिम्मियं पवरलक्खणोववेयं जुत्तामेव धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह'। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

कठिन शब्दार्थ - लहुकरणजुत्तजोइयं - तेज चलने वाले, समखुरवालिहाणसमलिहियसिंगएहिं - एक समान खुर, पूंछ तथा अनेक रंगों से चित्रित सींग वाले, जम्बूणयामयकलावजोत्त-पइविसिट्ठएहिं - गले में सोने के गहने और जोत धारण किए हुए, रययामय-घण्टसुत्त-रज्जुग-वरकंचण-खइयणत्था-पग्गहोग्गहियएहिं - गले में लटकती चांदी की घंटियों सहित, नाक में उत्तम सोने के तारों से मिश्रित पतली सी सूत की नाथ से जुड़ी रास के सहारे वाहकों द्वारा संभाले हुए, णीलुप्पल कयामेलएहिं - नीले कमलों से बने हुए आभरण युक्त मस्तक वाले, पवरगोणजुवाणएहिं - श्रेष्ठ युवा बैलों से खींचे जाते, णाणामणिकणग-घंटियाजालपरिगयं - अनेक प्रकार की मणियों और सोने की बहुत सी घंटियों से युक्त, सुजाय-जुगजुत्त उज्जुग पसत्थसुविरइय णिम्मियं - बढ़िया लकड़ी के एकदम सीधे, उत्तम और सुंदर बने हुए जुए सहित, पवरलक्खणोववेयं - श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त, जाणप्पवरं - यान प्रवर-श्रेष्ठ रथ, उवट्ठवेह - उपस्थित करो, एयं - इस, आणत्तियं-आज्ञानुसार, पच्चप्पिणह - प्रत्यर्पित करो।

भावार्थ - तब सकडालपुत्र ने अपने कर्मचारियों को बुला कर कहा - “शीघ्र ही शीघ्रगति वाला रथ उपस्थित करो, जिसमें जोते जाने वाले बैल दक्ष, खुर तथा लम्बी पूँछ वाले, सरीखे सींगों वाले, गले में सुनहरे आभूषण पहने हुए, सुनहरी नक्काशीदार जोत वाले, गले में लटकते हुए चाँदी के घुँघरू वाले, सुनहरी सूत की नाथ से बंधे हुए, मस्तक पर नील कमल के समान कलंगी धारण किए हुए हों और युवावस्था वाले हों।” कर्मचारियों ने आज्ञानुसार कार्य कर आज्ञा प्रत्यर्पित की।

(५३)

तए णं सा अग्निमित्ता भारिया ण्हाया जाव पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा चेडियाचक्कवालपरिकिण्णा धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोलासपुरं णयरं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता चेडियाचक्कवालपरिवुडा जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो जाव वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे जाव पंजलिउडा ठिइया चेव पज्जुवासइ।

कठिन शब्दार्थ - चेडियाचक्कवालपरिकिण्णा - दासियों के समूह से घिरी हुई, णच्चासण्णे - न अधिक निकट, णाइदूरे - न अधिक दूर, पंजलिउडा - हाथ जोड़े।

भावार्थ - तब अग्निमित्रा ने स्नान कर सभा में जाने योग्य शुद्ध वस्त्र धारण किए और अल्पभार वाले बहुमूल्य आभूषणों से देह विभूषित की। तत्पश्चात् दासियों के समूह से परिवृत होकर धार्मिक रथ पर बैठ कर पोलासपुर नगर से निकली तथा सहस्राग्रवन उद्यान में आई धार्मिक उत्तम रथ से नीचे उतरी और दासियों के समूह से घिरी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप गई। तीन बार वंदना-नमस्कार कर, न अधिक दूर न अधिक निकट हाथ जोड़ कर पर्युपासना करने लगी।

(५४)

तए णं समणे भगवं महावीरे अग्निमित्ताए तीसे य जाव धम्मं कहेइ।

तए णं सा अग्निमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्टतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी- 'सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह, जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा जाव पव्वइया णो खलु अहं तहा संचाएमि देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा भवित्ता जाव अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवजिस्सामि'। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंथं करेह।

कठिन शब्दार्थ - उग्गा - उग्र-आरक्षक-अधिकारी, भोगा - भोग-राजा के मंत्री मण्डल के सदस्य।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अग्निमित्रा को तथा उपस्थित परिषद् को धर्मोपदेश दिया।

धर्म सुन कर अग्निमित्रा भार्या ने भगवान् से निवेदन किया - "हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ, यावत् जैसा आपने फरमाया वैसा ही है, यथार्थ है। जिस प्रकार बहुत से राजा राजेश्वर आपके समीप संयम धारण करते हैं, वैसी मेरी सामर्थ्य नहीं है। मैं आपश्री से पाँच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रत रूप श्रावक धर्म स्वीकार करूँगी।" भगवान् ने फरमाया - "हे देवानुप्रिया! जैसे सुख हो, वैसा करो, धर्म-कार्य में प्रमाद मत करो।"

तए णं सा अग्निमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहि(सावग)धम्मं पडिवज्जइ पडिवजित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ पोलासपुराओ णयराओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भावार्थ - तब अग्निमित्रा भार्या ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार किया, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी

सातवां अध्ययन - श्रमणोपासक सकडालपुत्र - सकडाल को समझाने गोशालक आया १४१

को वंदना नमस्कार किया। वंदन नमस्कार कर उसी धार्मिक रथ पर सवार हुई तथा जिस दिशा से आई थी उसी दिशा में लौट गई।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पोलासपुर नगर के सहस्राग्रवन उद्यान से प्रस्थान कर अन्य जनपदों में विहार कर गए।

(५५)

तए णं से सहालपुत्ते समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ।

भावार्थ - तदनन्तर सकडालपुत्र जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया यावत् साधु साध्वियों को प्रासुक एषणीय आहार पानी प्रतिलाभित करते हुए धार्मिक जीवन जीने लगा।

सकडाल को समझाने गोशालक आया

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते इमीसे कहाए लद्धट्टे समाणे 'एवं खलु सहालपुत्ते आजीवियसमयं वमिन्ता समणाणं णिग्गंथाणं दिट्ठिं पडिवण्णे, तं गच्छामि णं सहालपुत्तं आजीविओवासयं समणाणं णिग्गंथाणं दिट्ठिं वामेत्ता पुणरवि आजीवियदिट्ठिं गेण्हावित्तए' त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहिन्ता आजीवियसंघ-संपरिवुडे जेणेव पोलासपुरे णयरे जेणेव आजीवियसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आजीवियसभाए भंडगणिकखेवं करेइ, करेत्ता कइवएहिं आजीविएहिं सद्धिं जेणेव सहालपुत्ते समणोवासए तेणेव उवागच्छइ।

कठिन शब्दार्थ - आजीवियसमयं - आजीविक सिद्धान्त को, वमिन्ता - छोड़ कर, दिट्ठिं - दृष्टि-दर्शन को, गेण्हावित्तए - ग्रहण कराऊं, आजीवियसंघ संपरिवुडे - आजीविक संघ के साथ, आजीवियसभा - आजीविक सभा, भंडगणिकखेवं करेइ - पात्र उपकरण रखे, कइवएहिं - कतिपय, आजीविएहिं - आजीविकों के, सद्धिं - साथ।

भावार्थ - मंखलिपुत्र गोशालक को ज्ञात हुआ कि सकडालपुत्र आजीविकोपासक ने आजीविक मत का त्याग कर श्रमण-निर्ग्रथों की दृष्टि स्वीकार करली है, तो उसने सोचा कि - मुझे जाना चाहिए तथा सकडालपुत्र से जैनधर्म छुड़वा कर पुनः आजीविक मत में स्थिर करना चाहिए। वह अनेक आजीविक-मतियों के साथ पोलासपुर नगर में आया और 'आजीविक सभा' में भण्डोपकरण रख कर अपने शिष्यों सहित सकडालपुत्र श्रमणोपासक के निकट आया।

सकडालपुत्र ने गोशालक को आदर नहीं दिया

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता णो आढाइ, णो परिजाणइ, अणाढायमाणे अपरिजाणमाणे तुसिणीए संचिद्धइ।

कठिन शब्दार्थ - आढाइ - आदर किया, परिजाणइ - परिचित जैसा व्यवहार किया, अणाढायमाणे - आदर नहीं करता हुआ, अपरिजाणमाणे - परिचित का सा व्यवहार न करता हुआ, तुसिणीए - चुपचाप, संचिद्धइ - बैठा रहा।

भावार्थ - सकडालपुत्र श्रमणोपासक ने मंखलिपुत्र गोशालक को आते देखा तो उसका आदर सत्कार नहीं किया। आदर सत्कार नहीं करते हुए अर्थात् उपेक्षाभाव पूर्वक वह चुपचाप बैठा रहा।

स्वार्थी गोशालक भगवान् की प्रशंसा करता है

(५६)

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तेणं समणोवासएणं अणाढाइज्जमाणे अपरिजाणिज्जमाणे पीढफलगसिज्जासंथारद्धयाए समणस्स भगवओ महावीरस्स गुणकित्तणं करेमाणे सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी - 'आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महामाहणे?' तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी- 'के णं देवाणुप्पिया! महामाहणे?' तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी- 'समणे भगवं महावीरे महामाहणे।' 'से केणट्टेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे महामाहणे?' 'एवं खलु सद्दालपुत्ता! समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे जाव महियपूइए जाव तच्चकम्मसम्पयासंपउत्ते, से तेणट्टेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे महामाहणे।'

कठिन शब्दार्थ - पीढफलगसिज्जासंथारद्धयाए - पीढ-फलक-शय्या तथा संस्तारक की प्राप्ति के लिए, गुणकित्तणं - गुण कीर्तन, आगए - आये।

भावार्थ - सकडालपुत्र के उपेक्षा भाव को समझ कर पीठ-फलक स्थान एवं शय्या की प्राप्ति के लिए मंखलिपुत्र गोशालक ने भगवान् महावीर स्वामी का गुणकीर्तन करते हुए सकडालपुत्र से इस प्रकार कहा -

हे देवानुप्रिय! क्या यहाँ 'महामाहन' आए थे?

सकडालपुत्र श्रमणोपासक ने पूछा - "हे देवानुप्रिय! महामाहन कौन है?"

गोशालक ने कहा - "श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महामाहन हैं।"

सकडालपुत्र ने पूछा - "हे देवानुप्रिय! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को महामाहन किस कारण से कहते हो?"

गोशालक ने कहा - "श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महामाहन उत्पन्न ज्ञानदर्शन के धारक, अरहंत जिन-केवली यावत् तीन लोक के वंदनीय-पूजनीय हैं। अतः वे महामाहन हैं।"

'आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महागोवे?' 'के णं देवाणुप्पिया! महागोवे?' 'समणे भगवं महावीरे महागोवे' 'से केणट्टेणं देवाणुप्पिया! जाव महागोवे?' 'एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे धम्ममएणं दंडेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे णिव्वाणमहावाडं साहत्थिं संपावेइ, से तेणट्टेणं सद्दालपुत्ता! एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे महागोवे।'

कठिन शब्दार्थ - संसाराडवीए - संसार अटवी में, णस्समाणे - नश्यमान-सन्मार्ग से च्युत हो रहे हैं, विणस्समाणे - विनश्यमान-प्रतिक्षण मरण प्राप्त कर रहे हैं, खज्जमाणे - खाद्यमान हैं-खाए जा रहे हैं-मृग आदि की योनि में शेर बाघ आदि द्वारा खाए जा रहे हैं, छिज्जमाणे - छिद्यमान हैं-मनुष्य आदि योनि में तलवार आदि से काटे जा रहे हैं, भिज्जमाणे-भिद्यमान है-भाले आदि द्वारा बीधे जा रहे हैं, लुप्पमाणे - लुप्यमान हैं-कान, नासिका आदि का छेदन किया जा रहा है, विलुप्पमाणे - विलुप्यमान हैं-विकलांग किये जा रहे हैं, धम्ममएणं दण्डेणं - धर्म रूपी दंडे से, सारक्खमाणे - रक्षण करते हुए, संगोवेमाणे - संगोपन करते हुए-बचाते हुए, णिव्वाडमहावाडं - मोक्ष रूपी विशाल बाड़े में, साहत्थिं - सहारा देकर, संपावेइ - पहुँचाते हैं, महागोवे - महागोप।

भावार्थ - हे देवानुप्रिय! क्या यहाँ 'महागोप' आए थे?

“महागोप कौन हैं?”

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महागोप हैं।

“भगवान् महागोप किस प्रकार हैं?” - सकडालपुत्र ने पूछा।

गोशालक ने कहा - “हे सकडालपुत्र! संसार-अटवी में बहुत से जीव सन्मार्ग से नष्ट हो रहे हैं, विनष्ट हो रहे हैं, मिथ्यात्वादि द्वारा खाए जा रहे हैं, छेदे जा रहे हैं, भेदे जा रहे हैं, उनका हरण किया जा रहा है, उन गायों के समान जीवों की धर्म रूपी डंडे से रक्षा कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मुक्ति रूपी बाड़े में पहुँचाते हैं। अतः वे महान् ग्वाले के समान होने से महागोप कहे गए हैं।

‘आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महासत्थवाहे?’ ‘के णं देवाणुप्पिया! महासत्थवाहे?’ सद्दालपुत्ता! समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे’ ‘से केणट्टेणं (देवाणु० महासत्थवाहे)?’ ‘एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे जाव विलुप्पमाणे (उम्मगपडिवण्णे) धम्ममएणं पंथेणं सारक्खमाणे णिव्वाणमहापट्टणाभिमुहे साहत्थिं संपावेइ, से तेणट्टेणं सद्दालपुत्ता! एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे।’

कठिन शब्दार्थ - महासत्थवाहे - महासार्थवाह, णिव्वाणमहापट्टणाभिमुहे - निर्वाणरूप महानगर में।

भावार्थ - गोशालक ने पूछा - “हे देवानुप्रिय! क्या यहाँ ‘महासार्थवाह’ आए थे?”

“कौन महासार्थवाह?”

‘श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महासार्थवाह हैं।’

“कैसे?”

गोशालक ने कहा - “हे सकडालपुत्र! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी संसार अटवी में भटकते हुए, नष्ट होते हुए यावत् विलुप्त होते हुए जीवों को धर्म रूपी मार्ग दिखा कर भली प्रकार से रक्षण करते हैं तथा निर्वाण रूप महानगर में पहुँचाते हैं। अतः श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को मैं महासार्थवाह कहता हूँ।”

‘आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महाधम्मकही?’ ‘के णं देवाणुप्पिया!

महाधम्मकही?’ ‘समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही’ ‘से केणट्टेणं समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही?’ ‘एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे महइमहालयंसि संसारंसि बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे उम्मग्गपडिवण्णे सप्पहविप्पणट्ठे मिच्छत्त-बलाभिभूए अट्टविहकम्मतमपडलपडिच्छण्णे बहूहिं अट्टेहि य जाव वागरणेहि य चाउरंताओ संसारकंताराओ साहत्थिं णित्थारेइ, से तेणट्टेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ - समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही’।

कठिन शब्दार्थ - महाधम्मकही - महाधर्मकथी, महइमहालयंसि संसारंसि - अत्यंत विशाल संसार में, उम्मग्गपडिवण्णे - उन्मार्गगामी, सप्पहविप्पणट्ठे - सत्पथ से भ्रष्ट, मिच्छत्तबलाभिभूए - मिथ्यात्व से ग्रस्त, अट्टविहकम्मतमपडलपडिच्छण्णे - आठ प्रकार के कर्मरूपी अंधकार पटल के पर्दे से ढके हुए, चाउरंताओ - चार गति रूप, संसारकंताराओ - संसार रूपी भयानक वन से, णित्थारेइ - निकालते हैं।

भावार्थ - “हे सकडालपुत्र! क्या यहाँ ‘महाधर्मकथी’ आए थे?”

“कौन महाधर्मकथी?”

“श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महाधर्मकथी हैं।”

“किस प्रकार?”

गोशालक उत्तर देता है - “अगाध संसार में बहुत-से जीव नष्ट होते हैं, खेदित होते हैं, छेदित होते हैं, भेदित होते हैं, लुप्त होते हैं, विलुप्त होते हैं, उन्मार्ग में प्रवृत्त होते हैं, सन्मार्ग से भ्रष्ट होते हैं, मिथ्यात्व से पराभूत होते हैं और आठ कर्म रूप महा अंधकार के समूह से आच्छादित होते हैं। उन संसारी जीवों को श्रमण भगवान् महावीर स्वामी धर्मोपदेश दे कर, अर्थ समझा कर, हेतु बता कर, प्रश्न का उत्तर दे कर तथा शंका-शल्य मिटा कर चतुर्गति रूप संसार-अटवी से स्वयं पार पहुँचाते हैं। इसलिए हे सकडालपुत्र! मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को महाधर्मकथी कहता हूँ।”

‘आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महाणिज्जामए?’ से के णं देवाणुप्पिया! महाणिज्जामए?’ ‘समणे भगवं महावीरे महाणिज्जामए।’ ‘से केणट्टेणं०?’ ‘एवं

खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे संसारमहासमुद्वे बहवे जीवे णस्समाणे विणस्समाणे जाव विलुप्पमाणे वुड्डमाणे णिवुड्डमाणे उप्पियमाणे धम्ममईए णावाए णिव्वाणतीराभिमुहे साहत्थिं संपावेइ, से तेणट्टेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे महाणिज्जामए।’

कठिन शब्दार्थ - महाणिज्जामए - महानिर्यामक, वुड्डमाणे - डूब रहे हैं, णिवुड्डमाणे-गोते खा रहे हैं, उप्पियमाणे - बहते जा रहे हैं, णावाए - नाव से, णिव्वाणतीराभिमुहे - मोक्ष रूपी किनारे पर।

भावार्थ - गोशालक फिर पूछता है - “हे देवानुप्रिय! यहाँ ‘महान् निर्यामक’ आए थे?”

“कौन महानिर्यामक?”

“श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महान् निर्यामक हैं?”

सकडालपुत्र पूछते हैं - “किस प्रकार महान् निर्यामक हैं?”

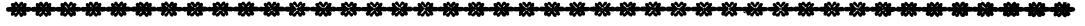
गोशालक कहता है - “संसार एक महान् दुस्तर समुद्र है। इसमें संसारी जीव नष्ट हो रहे हैं, विनष्ट हो रहे हैं, यावत् डूब रहे हैं, जन्म-मरण रूपी गोते लगा रहे हैं, ऐसे डूबते जीवों को श्रमण भगवान् महावीर स्वामी धर्मरूपी नाव में बिठा कर स्वयं निर्वाण रूपी तीर तक पहुँचाते हैं। अतः उन्हें मैं महान् धर्म-निर्यामक (बड़े जहाज को चलाने वाले, खेवैया, नाविक) कहता हूँ।”

मैं भगवान् से विवाद नहीं कर सकता

(५७)

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी - ‘तुब्भे णं देवाणुप्पिया! इयच्छेया जाव इयणिउणा इयणयवादी इयउवएसलद्धा इयविण्णाणपत्ता, पभू णं तुब्भे मम धम्ममायरिणं धम्मोवएसएणं समणेणं भगवया महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए?’ ‘णो इणट्टे समट्टे’।

कठिन शब्दार्थ - इयच्छेया - इतने छेक, इयणिउणा - इतने निपुण (सूक्ष्मदर्शी), इयणयवादी - इतने नयवादी-नीतिवक्ता, इयउवएसलद्धा - इतने उपदेशक लब्ध-आप्तजनों का उपदेश प्राप्त किये हुए-बहुश्रुत, इयविण्णाणपत्ता - इतने विज्ञान प्राप्त-विशेष बोध युक्त, धम्ममायरिणं - धर्माचार्य से, धम्मोवएसएणं - धर्मोपदेशक, विवादं - विवाद-तत्त्वचर्चा।



भावार्थ - तब सकडालपुत्र ने मंखलिपुत्र गोशालक से कहा कि - “हे देवानुप्रिय! जब आप इतने दक्ष, चतुर, निपुण, नयवादी, प्रसिद्ध वक्ता एवं विज्ञान वाले हैं, तो क्या आप श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के साथ शास्त्रार्थ कर सकते हैं?”

गोशालक ने उत्तर दिया - “नहीं, मैं भगवान् से विवाद नहीं कर सकता। मैं असमर्थ हूँ।”

‘से केणट्टेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ - णो खलु पभू तुब्भे मम धम्मायरिएणं जाव महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए?’ ‘सदालपुत्ता! से जहाणामए केइ पुरिसे तरुणे जुगवं जाव णिउणसिप्पोवगए एणं महं अयं वा एलयं वा सूयरं वा कुक्कुडं वा तित्तिरं वा वट्टयं वा लावयं वा कवोयं वा कविंजलं वा वायसं वा सेणयं वा हत्थंसि वा पायंसि वा खुरंसि वा पुच्छंसि वा पिच्छंसि वा सिंगंसि वा विसाणंसि वा रोमंसि वा जहिं-जहिं गिण्हइ तहिं-तहिं णिच्चलं णिप्फंदं धरेइ, एवामेव समणे भगवं महावीरे ममं बहूहिं अट्टेहि य हेऊहि य जाव वागरणेहि य जहिं-जहिं गिण्हइ तहिं-तहिं णिप्पट्टपसिणवागरणं करेइ, से तेणट्टेणं सदालपुत्ता! एवं वुच्चइ-णो खलु पभू अहं तव धम्मायरिएणं जाव महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए’।

कठिन शब्दार्थ - णिउणसिप्पोवगए - निपुण शिल्पोगत - शिल्प या कला की सूक्ष्मता तक पहुँचा हुआ, अयं - बकरे को, एलयं - मेंढे को, सूयरं - सूअर को, कुक्कुडं - मुर्गे को, तित्तिरं - तीतर को, वट्टयं - बटेर को, लावयं - लवा को, कवोयं - कबूतर को, कविंजलं - पपीहे को, वायसं - कौए को, सेणयं - बाज को, हत्थंसि - हाथ, पायंसि - पांव, खुरंसि - खुर, पुच्छंसि - पूंछ, पिच्छंसि - पंख, सिंगंसि - सिंग, विसाणंसि - विश्राण, रोमंसि - रोम को, जहिं - जहां से, तहिं - वहां से, णिच्चलं - निश्चल-गति शून्य, णिप्फंदं - निस्पन्द-हलन चलन रहित, अट्टेहि - अर्थों, हेऊहि - हेतुओं, वागरणेहि-विश्लेषणों से, णिप्पट्टपसिणवागरणं - निरुत्तर।

भावार्थ - सकडाल पुत्र ने पूछा - “हे देवानुप्रिय! आप श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से विवाद क्यों नहीं कर सकते?”

गोशालक ने उत्तर दिया - “हे सकडालपुत्र! जैसे कोई चतुर शिल्प-कला का ज्ञाता युवक पुरुष किसी बकरे को, मेंढे को, सूअर, मुर्गे, तीतर, बटेर, लावक, कबूतर, कर्पिंजल, कौए

अथवा बाज का हाथ, पाँव, खुर, पूँछ, पंख, सींग या रोम, इनमें से जो भी अंग पकड़ता है, तो वह लेश-मात्र भी हिल-डुल नहीं सकता। इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी भी मुझे अर्थ, हेतु, व्याकरण आदि द्वारा जहाँ-जहाँ पकड़ें, वहाँ-वहाँ मैं निरुत्तर हो जाऊँ। इसलिए ऐसा कहा कि मैं श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूँ।

मैं तुम्हें धर्म के उद्देश्य से स्थान नहीं देता

(५८)

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी-‘जम्हा णं देवाणुप्पिया! तुब्भे मम धम्मायरियस्स जाव महावीरस्स संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं भावेहिं गुणकित्तणं करेह तम्हा णं अहं तुब्भे पाडिहारिणं पीढ जाव संथारणं उवणिमंतेमि, णो चेव णं धम्मोत्ति वा तवोत्ति वा, तं गच्छह णं तुब्भे मम कुंभारावणेसु पाडिहारियं पीढफलग जाव ओगिण्हित्ताणं विहरह।’

कठिन शब्दार्थ - संतेहिं - सत्य, तच्चेहिं - यथार्थ, तहिएहिं - तथ्य, सब्भूएहिं - सद्भूत, भावेहिं - भावों से, उवणिमंतेमि - आमंत्रित करता हूँ, धम्मोत्ति - धर्म मान कर, तवोत्ति - तप मान कर।

भावार्थ - सकडालपुत्र ने कहा - “हे मंखलिपुत्र गोशालक! आपने मेरे धर्मोपदेशक धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का सत्य, तथ्य, सद्भूत भावों का यथार्थ गुण-कीर्तन किया, अतः मैं प्रातिहारिक पीठ-फलक आदि का निमंत्रण करता हूँ। परन्तु मैं इसमें धर्म या तप मान कर देता हूँ, ऐसी बात नहीं है। आप जाइए तथा मेरी दुकानों से इच्छित पीठ-फलक आदि ले कर सुख से रहिए।”

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता कुंभारावणेसु पाडिहारियं पीढ जाव ओगिण्हित्ता णं विहरइ। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं जाहे णो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य पणवणाहि य सणवणाहि य विणवणाहि य णिगंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोमित्तए वा विपरिणामित्तए वा ताहे संते तंते परितंते

पोलासपुराओ णयरओ पडिणिक्खमइ, परिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - आघवणाहि - आख्यापना - अनेक प्रकार से कह कर, पणवणाहि- प्रज्ञापना - भेदपूर्वक तत्त्व निरूपण कर, सणवणाहि - संज्ञापना - भलीभांति समझा कर, विणवणाहि - विज्ञापना - उसके मन के अनुकूल भाषण करके, णिगंथाओ पावयणाओ- निर्ग्रंथ प्रवचन से, चालित्तए - विचलित, खोभित्तए - क्षोभित, विप्परिणामित्तए - विपरिणामित- विपरीत परिणाम युक्त, संते - श्रान्त, तंते - क्लान्त, परितंते - खिन्न होकर।

भावार्थ - मंखलिपुत्र गोशालक ने सकडालपुत्र श्रमणोपासक का यह कथन स्वीकार किया और उसकी दुकानों (कर्मशालाओं) से प्रातिहारिक पाट पाटले शय्या आदि ग्रहण कर रहने लगा।

मंखलिपुत्र गोशालक जब भांति भांति के सामान्य वचनों, विशेष वचनों, अनुकूल वचनों एवं प्रतिकूल वचनों से भी जब वह सकडालपुत्र को निर्ग्रंथ-प्रवचन से चलित नहीं कर सका, क्षुभित नहीं कर सका, मन-परिणामों से भी विचलित नहीं कर सका, तो थक कर, खेदित हो कर, पोलासपुर से बाहर जनपद में विचरने लगा।

देवोपसर्ग

(५६)

तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स बहूहिं सीलञ्जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छरा वीड्ढकंता, पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले जाव पोसहसालाए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एणे देवे अंतियं पाउब्भवित्था। तए णं से देवे एणं महं णीलुप्पल जाव असिं गहाय सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी-जहा चुलणीपियस्स तहेव देवो उवसगं करेइ, णवरं एक्केक्के पुत्ते णव मंससोल्लए करेइ जाव कणीयसं घाएइ, घाएत्ता जाव आयंचइ। तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए अभीए जाव विहरइ।

भावार्थ - बहुत-से अणुव्रतों, गुणव्रतों आदि से आत्मा को भावित करते हुए सकडालपुत्र को चौदह वर्ष बीत गए। पन्द्रहवें वर्ष में किसी दिन वे पौषधशाला में भगवान् की धर्म-विधि की आराधना कर रहे थे। आधी रात के समय एक देव आया और नीलकमल के समान खड्ग लेकर कहने लगा - “यदि तू धर्म से विचलित नहीं होगा, तो तेरे तीनों पुत्रों के खण्ड-खण्ड कर, उबलते तेल में तल कर तेरे शरीर पर छिड़कूंगा सारा वर्णन चुलनीपिता के समान है। विशेषता यह है कि एक-एक पुत्र के नौ-नौ टुकड़े किए यावत् सकडालपुत्र निर्भय रह कर धर्माराधना करते रहे।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं जाव पासित्ता चउत्थंपि सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी-‘हं भो सद्दालपुत्ता! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया जाव ण भंजसि तओ ते जा इमा अग्गिमित्ता भारिया धम्मसहाइया धम्मविइज्जिया धम्माणुरागरत्ता समसुहदुक्खसहाइया तं साओ गिहाओ णीणेमि, णीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि घाएत्ता णव मंससोल्लए करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिण्ण य आयंचामि, जहा णं तुमं अट्टदुहट्ट जाव ववरोविज्जसि।’ तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए जाव विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - धम्मसहाइया - धर्म सहायिका - धार्मिक कार्यों में सहयोग करने वाली, धम्मविइज्जिया - धर्म वैद्या - धर्म की संगिनी, धम्माणुरागरत्ता - धर्मानुरागरत्ता - धर्म के अनुराग में रंगी हुई, समसुहदुक्खसहाइया - सम सुख दुःख सहायिका - सुख और दुःख में समान रूप से हाथ बंटाने वाली।

भावार्थ - सकडालपुत्र को निर्भय जान कर चौथी बार देव ने कहा - “हे सकडालपुत्र! मृत्यु की इच्छा वाले! यदि तू शीलव्रत, गुणव्रत का परित्याग नहीं करेगा, तो तेरी भार्या अग्निमित्रा जो तेरे लिए धर्म-सहायिका, धर्मानुरागिणी, सुख-दुःख में समान सहायिका है, उसे तेरे घर से लाकर तेरे सामने मार कर उसके नौ मांस-खण्ड करूंगा तथा उबलते हुए कड़ाह में डाल कर तेरे शरीर पर छिड़कूंगा जिससे तू आर्तध्यान करता हुआ अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त होगा।” ऐसा कहने पर भी सकडालपुत्र निर्भय रहे।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी-‘हं भो सद्दालपुत्ता! समणोवासया! तं चेव भणइ। तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्तस्स समाणस्स अयं अज्झत्थिए ४ समुप्प(जित्था)ण्णे। एवं जहा चुलणीपिया तहेव चित्तेइ-‘जेणं ममं जेट्ठं पुत्तं, जेणं ममं मज्झिमयं पुत्तं, जेणं ममं कणीयसं पुत्तं जाव आयंचइ, जाडवि य णं ममं इमा अग्गिमित्ता भारिया समसुहदुक्खसहाइया तं-पि य इच्छइ साओ गिहाओ णीणेणा मम अग्गओ घाएत्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए’ त्ति-कट्टु उद्धाइए जहा चुलणीपिया तहेव सव्वं भाणियव्वं, णवरं अग्गिमित्ता भारिया कोलाहल सुणित्ता भणइ, सेसं जहा चुलणीपिया वत्तव्वया, णवरं अरुणभूए विमाने उववण्णे, जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ(५) ॥ णिकखेवो ॥

॥ सत्तमं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ - उस देव ने दूसरी बार-तीसरी बार उपरोक्त वचन कहे तब सकडालपुत्र श्रमणोपासक को यह सुन कर विचार हुआ कि निश्चय ही ‘यह कोई अनार्य-दुष्ट पुरुष है, जिसने पहले मेरे ज्येष्ठ पुत्र को फिर मंझले पुत्र को और फिर छोटे पुत्र को मेरे सामने मारा, नौ-नौ मांस-खण्ड किए तथा उन्हें मेरे शरीर पर छिड़क कर वेदना उत्पन्न की। अब यह मेरी धर्मसहायिका अग्निमित्रा भार्या को मार कर उसके नौ मांस-खण्ड कर मुझ पर छिड़कना चाहता है। अतः मेरे लिए उचित है कि इसे पकड़ लूँ।’ ऐसा सोच कर ज्योंही पकड़ना चाहा, देव उड़ गया और खंभा ही हाथ आया। सकडालपुत्र ने कोलाहल किया, अग्निमित्रा भार्या ने उन्हें वस्तु-स्थिति समझाई तथा प्रायश्चित्त दे कर शुद्ध किया। शेष सारा वर्णन चूलनीपिता के समान जानना चाहिए। विशेष यह कि संलेखना संथारा कर के सौधर्म नामक प्रथम देवलोक के अरुणभूत विमान में उत्पन्न हुए। चार पत्योपम की स्थिति का उपभोग कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त बनेंगे।

॥ सातवां अध्ययन समाप्त ॥

अट्टमं अज्झयणं - आठवां अध्ययन

श्रमणोपासक महाशतक

(६०)

अट्टमस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। तत्थ णं रायगिहे महासयए णामं गाहावई परिवसइ, अट्टे जहा आणंदो। णवरं अट्ट हिरण्णकोडीओ सकंसाओ णिहाणपउत्ताओ, अट्ट हिरण्णकोडीओ सकंसाओ वुट्ठिपउत्ताओ, अट्ट हिरण्णकोडीओ सकंसाओ पवित्थरपउत्ताओ, अट्ट वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं।

कठिन शब्दार्थ - सकंसाओ - कांस्य परिमित-कांसे से बने एक पात्र विशेष से मापी-तौली हुई।

भावार्थ - आठवें अध्ययन के प्रारम्भ में जंबू स्वामी के पूछने पर आर्य सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं - “हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विद्यमान थे, तब राजगृह नगर के बाहर गुणशील उद्यान था। श्रेष्ठिक राजा राज्य करते थे। राजगृह में ‘महाशतक’ नामक गाथापति रहता था। जो आनन्द की भांति आद्वय यावत् अपराभूत था। उसके पास आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का धन निधान-प्रयुक्त था, आठ करोड़ व्यापार में तथा आठ करोड़ की घर-बिखरी थी। दस हजार गायों का एक वज्र, ऐसे आठ वज्र प्रमाण पशु-धन था।

विवेचन - “सकंसाओ” शब्द का अर्थ टीका में - ‘सकंसाओ’ ति कांस्येन द्रव्यमानविशेषेण यास्ताः संकास्याः’ किया है। अर्थ में लिखा है द्रव्य नापने का कांस्य नाम का पात्र विशेष, जिसमें बत्तीस सेर वजन समा सकता है। पूज्यश्री अमोलकऋषिजी म. सा. ने ‘संकसाओ’ का अर्थ नहीं किया है।

तस्स णं महासयगस्स रेवईपामोक्खाओ तेरस भारियाओ होत्था, अहीण जाव सुरूवाओ। तस्स णं महासयगस्स रेवईए भारियाए कोल(ह)घरियाओ अट्ट हिरण्णकोडीओ, अट्ट-वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था। अवसेसाणं

दुवालसण्हं भारियाणं कोलघरिया एगमेगा हिरण्णकोडी, एगमेगे य वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

कठिन शब्दार्थ - कोलघरियाओ - पीहर से, दुवालसण्हं - बारह, भारियाणं - पत्नियों, एगमेगा - एक।

भावार्थ - उन महाशतकजी के रेवती प्रमुख तेरह पत्नियाँ थीं। रेवती के पीहर वालों ने रेवती को प्रीतिदान में आठ करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ एवं गायों के आठ वज्र दिए थे। शेष बारह भार्याओं के पीहर वालों ने एक-एक करोड़ स्वर्ण-मुद्रा तथा दस हजार गायों का एक-एक वज्र दिया था।

(६१)

तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा णिग्गया। जहा आणंदो तहा णिग्गच्छइ, तहेव सावयधम्मं पडिवज्जइ। णवरं अट्ट हिरण्णकोडीओ सकंसाओ उच्चारेइ, अट्ट वया, रेवईपामोक्खाहिं तेरसहिं भारियाहिं अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खाइ, सेसं सव्वं तहेव। इमं च णं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ-कल्लाकल्लिं च णं कप्पइ मे वे दोणियाए कंसपाईए हिरण्णभरियाए संववहरित्तए।

कठिन शब्दार्थ - रेवइपामोक्खाहिं - रेवती प्रमुख, दोणियाए - द्रोण, कंसपाईए - कांस्य पात्र, संववहरित्तए - सीमा रखूंगा।

भावार्थ - उस समय राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। परिषद् धर्मकथा सुनने के लिए गई, आनन्दजी की भाँति महाशतकजी ने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए। विशेष यह कि आठ करोड़ भण्डार में, आठ करोड़ व्यापार में और आठ करोड़ की घर-बिखरी। गौओं के आठ वज्र का परिमाण किया। रेवती आदि तेरह पत्नियों के अतिरिक्त शेष मैथुन का प्रत्याख्यान किया तथा यह अभिग्रह लिया कि “मैं कल से नित्य दो द्रोण कांस्यपात्र भरे (एक द्रोण सोलह सेर के लगभग होता है, इस प्रकार बत्तीस सेर) सोने से अधिक का व्यापार नहीं करूँगा।”

तए णं से महासयए समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ,
तए णं समणे भगवं महावीरे बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भावार्थ - व्रत धारण करने से महाशतक 'श्रमणोपासक' हो गए। वे जीव-अजीव को जानने वाले यावत् साधु-साध्वियों को प्रासुक-एषणीय आहार-पानी बहराने वाले हो गए। तत्पश्चात् कभी भगवान् जनपद में विचरने लगे।

कामासक्त रेवती की नृशंस योजना

(६२)

तए णं तीसे रेवईए गाहावइणीए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्ब जाव इमेयारूवे अज्झत्थिए ४- 'एवं खलु अहं इमासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं विघाएणं णो संचाएमि महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए, तं सेयं खलु ममं एयाओ दुवालस-वि सवत्तियाओ अग्गिप्पओगेणं वा सत्थप्पओगेणं वा विसप्पओगेणं वा जीवियाओ ववरोवित्ता, एयासिं एगमेगं हिरण्णकोडिं एगमेगं वयं सयमेव उवसंपजित्ता णं महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं जाव विहरित्तए' एवं संपेहेइ, संपेहिता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणी विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - सवत्तीणं - सौतों के, विघाएणं - विघ्न के कारण, उरालाइं - विपुल, माणुस्सयाइं - मनुष्य जीवन के, भोगभोगाइं - विषय भोगों को, अग्गिप्पओगेणं - अग्नि प्रयोग से, सत्थप्पओगेणं - शस्त्र प्रयोग से, विसप्पओगेणं - विष प्रयोग से, अंतराणि- अंतर-अनुकूल अवसर, छिद्दाणि - छिद्र-सूनापन, विवराणि - विवर-एकान्त की टोह।

भावार्थ - एक बार मध्य रात्रि के समय रेवती गाथापत्नी को कुटुम्ब जागरण करते हुए विचार हुआ कि "इन बारह सौतों के कारण मैं महाशतक श्रमणोपासक के साथ यथेच्छ कामभोग नहीं भोग सकती। अतः मेरे लिए यह उचित होगा कि इन बारह ही सौतों को अग्निप्रयोग से, शस्त्र द्वारा या विष द्वारा जीवन-रहित कर दूँ और इनका एक-एक करोड़ स्वर्ण

आठवां अध्ययन - श्रमणोपासक महाशतक - रेवती ने सपत्नियों की हत्या कर दी १५५

तथा गोवज्र अपने अधीन कर के महाशतक के साथ निर्विघ्न मानवीय कामभोगों का उपभोग करूँ।” ऐसा मनोसंकल्प कर के रेवती उन बारह सोतों के छिद्रान्वेषण करने लगी।

रेवती ने सपत्नियों की हत्या कर दी

तए णं सा रेवई गाहावइणी अण्णया कयाइ तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतरं जाणित्ता छ सवत्तीओ सत्थप्पओगेणं उद्दवेइ, उद्दवेत्ता छ सवत्तीओ विसप्पओगेणं उद्दवेइ, उद्दवेत्ता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं कोलघरियं एगमेगं हिरण्णकोडिं एममेगं वयं सयमेव पाडेवज्जइ, पडिवज्जित्ता महासयएणं समणोवासएणं सद्धिं उरालाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।

भावार्थ - रेवती गाथापत्नी के अवसर देख कर अपनी बारह सोतों को मारने का ठान लिया। उसने अपनी छह सोतों को शस्त्र प्रयोग से तथा छह सोतों को विष दे कर मार डाला और उनका बारह करोड़ का धन तथा बारह वज्र अपने अधीन कर लिए। अब वह अकेली ही महाशतक के साथ ऐन्द्रिक सुख भोगने लगी।

तए णं सा रेवई गाहावइणी मंसलोलुया मंसेसु मुच्छिया गिद्धा गढिया अज्झोववण्णा बहुविहेहिं मंसेहि य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च महुं च मेरगं च मज्जं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणी विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - मंसलोलुया - मांसलोलुप, मंसेसु - मांसभक्षण में, मुच्छिया - आसक्त, गिद्धा - लुब्ध, सोल्लेहि - सलाखा पर सेके हुए, तलिएहि - तले हुए, भज्जिएहि - भूने हुए, सुरं - सुरा, महुं - मधु, मेरगं - मेरक, मज्जं - मद्य, सीधुं - सीधु, पसण्णं - प्रसन्न-मदिरा विशेष, आसाएमाणी - आस्वादन करती, विसाएमाणी - मजा लेती, परिभाएमाणी - छक कर सेवन करती, परिभुंजेमाणी - बारबार सेवन करती।

भावार्थ - रेवती गाथापत्नी मांसलोलुप, मांसभक्षण में आसक्त गृद्ध, लुब्ध तथा तत्पर रहती अर्थात् मांसाहार के बिना उसे चैन नहीं मिलता। वह लोहे की सलाखा पर सेके हुए, घी आदि में तले हुए, आग पर भूने हुए बहुत प्रकार के मांस एवं सुरा (जौ आदि धान्य से बना शराब) मधु (वह मद्य जिसके निर्माण में अन्य वस्तुओं के साथ शहद भी मिलाया जाता है)

मेरक (सुरा, आसव तथा मधु से बनी शराब) मद्य, सीधु (ईख से बना शराब) और प्रसन्न नामक मदिराओं का आस्वादन, विस्वादन करती, मजा लेती छक कर सेवन करती और बार बार सेवन करती।

अमारि घोषणा और रेवती का पाप

(६३)

तए णं रायगिहे णयरे अण्णया कयाइ अमाघाए घुट्टे यावि होत्था। तएणं सा रेवई गाहावइणी मंसलोलुया मंसेसु मुच्छिया ४ कोलघरिए पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी-‘तुभ्भे णं देवाणुप्पिया! मम कोलघरिएहिंतो वएहिंतो कल्लाकल्लिं दुवे-दुवे गोणपोयए उद्वेह, उद्वेत्ता ममं उवणेह। तए णं ते कोलघरिया पुरिया रेवईए गाहावइणीए ‘तह’ त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता रेवईए गाहावइणीए कोलघरिएहिंतो वएहिंतो कल्लाकल्लिं दुवे-दुवे गोणपोयए वहेत्ति, वहेत्ता रेवईए गाहावइणीए उवणेंति। तए णं सा रेवई गाहावइणी तेहिं गोणमंसेहिं सोल्लेहि य सुरं च ६ आसाएमाणी ४ विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - अमाघाए - अमारि-प्राणीवध नहीं करने की, घुट्टे - घोषणा, दुवे - दो, गोणपोयए - बछड़े, उद्वेह - मार कर।

भावार्थ - एक बार राजगृह नगर में (महाराजा श्रेणिक ने) अमारि घोषणा की। फलतः पशु-वध बन्द हो जाने से रेवती को मांसाहार में बाधा खड़ी हो गई। तब पीहर से साथ आए नौकर से उसने कहा कि “तुम मेरे पीहर से प्राप्त गो ब्रजों में से प्रतिदिन गाय के दो बछड़े मार कर लाया करो।” वह कर्मचारी प्रतिदिन दो बछड़ों को मार कर उनका मांस रेवती को देने लगा। रेवती मांस-मदिरा का प्रचुर सेवन करने लगी।

रेवती पति को मोहित करने गई

(६४)

तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स बहूहिं सील जाव भावेमाणस्स

चोद्दस संवच्छरा वीडक्कंता। एवं तहेव जेट्ट पुत्तं ठवेइ जाव पोसहसालाए धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी मत्ता लुलिया विइण्णकेसी उत्तरिज्जयं विकट्टमाणी विकट्टमाणी जेणेव पोसहसाला जेणेव महासयए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोहुम्मायजणणाइं सिंगारियाइं इत्थिभावाइं उवदंसेमाणी उवदंसेमाणी महासययं समणोवासयं एवं वयासी-‘हं भो महासयगा! समणोवासया! धम्मकामया पुण्णकामया सग्गकामया मोक्खकामया धम्मकंखिया ४ धम्मपिवासिया ४ किण्णं तुब्भं देवाणुप्पिया! धम्मेण वा पुण्णेण वा सग्गेण वा मोक्खेण वा? जण्णं तुमं मए सद्धिं उरालाइं जाव भुंजमाणे णो विहरसि?’

कठिन शब्दार्थ - ‘मत्ता - उन्मत्त, लुलिया - लड़खड़ाती हुई, विइण्णकेसी - बाल बिखरे, उत्तरिज्जयं - उत्तरीय-दुपट्टा या औढना, विकट्टमाणी - फैकती हुई, मोहुम्मायजणणाइं- मोह तथा उन्मादजन के, सिंगारियाइं - कामोदीपक, इत्थिभावाइं उवदंसेमाणी - कटाक्ष आदि हावभाव प्रदर्शित करती हुई, धम्मकामया - धर्म की कामना-इच्छा रखने वाले धर्म के कामी, पुण्णकामया - पुण्य के कामी, सग्गकामया - स्वर्ग के कामी, मोक्खकामया - मोक्ष की कामना वाले, धम्मकंखिया - धर्म के आकांक्षी, धम्मपिवासिया - धर्म के पिपासु।

भावार्थ - महाशतक श्रमणोपासक को श्रावक-व्रतों का निर्मल पालन कर के आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष बीत गए। तत्पश्चात् आनन्दजी की भाँति उन्होंने भी ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपा और पौषधशाला में जा कर भगवान् की धर्म-प्रज्ञप्ति स्वीकार कर ली। एक बार रेवती भार्या उन्मत्त बनी हुई, मदिरा पीने के कारण खलित गति वाली, केश बिखरे हुए, ओढ़ने से सिर ढके बिना ही उस महाशतक श्रमणोपासक के समीप आई और कामोदीपन करने वाले श्रृंगारयुक्त मोहक वचन कहने लगी -

“अरे हे महाशतक श्रमणोपासक! तुम धर्म, पुण्य, स्वर्ग और मोक्ष के कामी हो, आकांक्षी हो, धर्म-पुण्य एवं मोक्ष प्राप्ति के पिपासु हो, परन्तु तुम्हें धर्म, पुण्य, स्वर्ग या मोक्ष से क्या प्रयोजन है? तुम मेरे साथ कामभोग क्यों नहीं भोगते अर्थात् भावी सुख की कल्पना में प्राप्त वैषयिक सुख की उपेक्षा क्यों कर रहे हो?”

विवेचन - रेवती का महाशतक से कहने का आशय यह है कि - तुम धर्म-साधना कर रहे हो, वह भविष्य में स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त होने से सुख की कल्पना से कर रहे हो, परन्तु भावी सुख की मिथ्या कामना से वर्तमान सुख को त्यागना नहीं चाहिए। छोड़ो इस साधना को और चलो मेरे साथ। मैं तुम्हें सभी सुख दूँगी।

तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए एयमट्टं णो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढाइज्जमाणे अपरियाणमाणे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तए णं सा रेवई गाहावइणी महासययं समणोवासयं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी-
‘हं भो! तं चेव भणइ, सोऽवि तहेव जाव अणाढाइज्जमाणे अपरियाणमाणे विहरइ।

तए णं सा रेवई गाहावइणी महासयएणं समणोवासएणं अणाढाइज्जमाणी अपरियाणिज्जमाणी जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

कठिन शब्दार्थ - अणाढाइज्जमाणे - आदर न देता हुआ, अपरियाणमाणे - ध्यान न देता हुआ, तुसिणीए - मौन भाव से।

भावार्थ - श्रमणोपासक महाशतक ने रेवती गाथापत्नी की इस बात को कोई आदर नहीं दिया और न ही उस पर ध्यान दिया। वह मौन भाव से धर्मारोधना में लग गया।

उसकी पत्नी रेवती ने दूसरी तीसरी बार फिर वैसा ही कहा, पर वह उसी प्रकार अपनी पत्नी रेवती के कथन को आदर न देता हुआ, उस पर ध्यान न देता हुआ धर्मध्यान में रत रहा।

रेवती गाथापत्नी, महाशतक श्रमणोपासक द्वारा आदर न दिए जाने पर, ध्यान न दिये जाने पर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

(६५)

तए णं से महासयए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमं अहासुत्तं जाव एक्कारसऽवि। तए णं से महासयए समणोवासए तेणं उरालेणं जाव किसे धमणिसंतए जाए। तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासयस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए ४-‘एवं

खलु अहं इमेणं उरालेणं जहा आणंदो तहेव अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-
झूसियसरीरे भत्तपाणपडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

भावार्थ - महाशतकजी ने प्रथम उपासक-प्रतिमा की यथावत् आराधना की। इस प्रकार ग्यारह उपासक-प्रतिमाओं का सम्यग् पालन किया। कठोर तपश्चर्या के कारण महाशतक का शरीर अस्थि और शिराओं का जाल मात्र रह गया। एक बार धर्म जागरण करते हुए उन्हें विचार हुआ कि अब शरीर बहुत कृश हो गया है, अतः मुझे अपश्चिममारणांतिक संलेखना-संधारा उचित है। उन्होंने आनन्द श्रावक की तरह संधारा कर लिया।

अवधिज्ञान का प्रादुर्भाव

तए णं तस्स महासयगस्स समणोवासगस्स सुभेणं अंज्झवसाणेणं जाव
खओवसमेणं ओहिणाणे समुप्पण्णे। पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे जोयणसाहस्सियं खेतं
जाणइ पासइ, एवं दक्खिणेणं पच्चत्थिमेणं, उत्तरेणं जाव चुल्लहिमवंतं
वासहरपव्वयं जाणइ पासइ, अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं णरयं
चउरासीइवाससहस्सट्ठियं जाणइ पासइ।

कठिन शब्दार्थ - ओहिणाणे - अवधिज्ञान, चउरासीइवाससहस्सट्ठियं - चौरासी हजार वर्ष की स्थिति।

भावार्थ - संधारे में शुभ अध्यवसायों और तथारूप कर्म का क्षयोपशम होने से महाशतकजी को अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। इससे वे पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशा में लवण-समुद्र का एक हजार योजन का क्षेत्र जानने-देखने लगे, उत्तर-दिशा में चुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत तक का क्षेत्र जानने-देखने लगे। अधो-दिशा में वे चौरासी हजार वर्ष स्थिति वाले नैरकियों के निवास स्थान तक का प्रथम नरक का लोलुयच्चुय नरकावास देखने लगे।

तू दुःखी होकर नरक में जाएगी

(६६)

तए णं सा रेवई गाहावइणी अण्णया कयाइ मत्ता जाव उत्तरिज्जयं
विकइमाणी विकइमाणी जेणेव पोसहसाला जेणेव महासयए समणोवासए तेणेव

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महासययं तहेव भणइ, जाव दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी-हं भो तहेव। तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ४ ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी-‘हं भो रेवई! अपत्थियपत्थिए! ४ एवं खलु तुमं अंतो सत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया समाणी अट्टदुहट्टवसट्टा असमाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए णरए चउरासीइवाससहस्सट्टिइएसु णेरइएसु णेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।’

कठिन शब्दार्थ - सत्तरत्तस्स - सात रात्रि के अंदर, अलसएणं - अलसक, वाहिणा-रोग से, अट्टदुहट्टवसट्टा - आर्त्त-व्यथित, दुःखित तथा विवश, असमाहिपत्ता - असमाधिपूर्वक, उववज्जिहिसि - उत्पन्न होगी।

भावार्थ - महाशतकजी को अवधिज्ञान होने के बाद एक दिन रेवती गाथापत्नी काम-वासना में उन्मत्त हो कर निर्लज्जतापूर्ण वस्त्र गिराती हुई यावत् पौषधशाला में जहाँ महाशतक श्रमणोपासक थे वहाँ आई और पूर्वोक्त रीति से कहने लगी। दूसरी-तीसरी बार रेवती के द्वारा कामोत्पादक वचन सुन कर महाशतक को क्रोध आ गया। उन्होंने अवधिज्ञान से उपयोग लगाया और अवधिज्ञान से उसका आगामी भव देख कर कहने लगे - “अरे हे रेवती! जिसकी कोई चाहना नहीं करता, उस मौत को तू चाहने वाली है, यावत् तुझे वचन-विवेक भी नहीं रहा। तू निश्चय ही आज से सातवीं रात्रि में अलस रोग से आर्त्तध्यानयुक्त हो कर असमाधिपूर्वक काल कर के पहली नरक के लोलुयच्चुय नरकावास में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिक के रूप में जन्म लेगी।”

तए णं सा रेवई गाहावइणी महासयएणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणी एवं वयासी-‘रुट्ठे णं ममं महासयए समणोवासए, हीणे णं ममं महासयए समणोवासए अवज्जाया णं अहं महासयएणं समणोवासएणं, ण णज्जइ णं अहं केणवि कुमारेणं मारिज्जिस्सामि’ त्तिकट्टु भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छिता ओह्य० जाव झियाइ। तए णं सा रेवई गाहावइणी अंतो सत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया अट्टदुहट्टवसट्टा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए णरए चउरासीइवाससहस्सट्टिइएसु णेरइएसु णेरइयत्ताए उववण्णा।

कठिन शब्दार्थ - रूढे - रुष्ट, अवज्झाया - दुर्भावना, भीया - भयभीत, तत्था - त्रस्त, तसिया - व्यथित, उव्विग्गा - उद्विग्न।

भावार्थ - यह बात सुन कर रेवती को विचार हुआ कि “निश्चय ही महाशतक श्रमणोपासक मुझ पर रुष्ट हो गए हैं। उनके मन में मेरे प्रति हीनभाव हो गए हैं। मैं उन्हें अच्छी नहीं लगती। अतः मैं नहीं जानती कि वे मुझे न जाने किस कुमौत से मारेंगे?” ऐसा सोच कर वह भयभीत हो गई, नरक दुःखों के श्रवण से उद्विग्न हो गई और त्रास को प्राप्त हुई। वह धीरे-धीरे पौषधशाला से निकल कर अपने स्थान पर आई तथा आर्त्तध्यान करने लगी। सातवें दिन अलसक-विशूचिका से पीड़ित होकर आर्त्तध्यान करती हुई असमाधिपूर्वक मर कर रत्नप्रभा पृथ्वी के लोलुयच्चुय नरकावास में, चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुई।

विवेचन - नोद्ध्वं व्रजति नाधस्तादाहाये न च पच्यते।

आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः॥

- खाया हुआ आहार न तो ऊँचा जाता है और न नीचा जाता है, और न पचता है, किन्तु आमाशय में आलसी हो कर पड़ा रहता है, उसे ‘अलसक’ रोग कहते हैं। इसे विशूचिका भी कहते हैं।

भगवान् गौतमस्वामी को भेजते हैं

(६७)

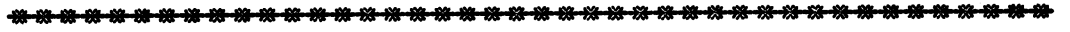
तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे, समोसरणं, जाव परिसा पडिगया। ‘गोयमा’ इ! समणे भगवं महावीरे एवं वयासी-‘एवं खलु गोयमा! इहेव रायगिहे णयरे ममं अंतेवासी महासयए णामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिममारणंतियसंलेहणाए झूसियसरिरे भत्तपाणपडियाइक्खिए कालं

अणवकंखमाणे विहरइ। तए णं तस्स महासयगस्स रेवई गाहावइणी मत्ता जाव विकह्णुमाणी विकह्णुमाणी जेणेव पोसहसाला जेणेव महासयए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोहुम्माय जाव एवं वयासी-तहेव जाव दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयासी-

भावार्थ - उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह पधारे, परिषद् धर्मोपदेश सुन कर लौट गई। भगवान् ने गौतमस्वामी से फरमाया - “हे गौतम! इस राजगृह नगर में मेरा अंतेवासी महाशतक श्रमणोपासक अपश्चिम-मारणांतिकी संलेखना की आराधना कर रहा है। आहार-पानी की इच्छा न करते हुए तथा मृत्यु की आकांक्षा नहीं रखते हुए पौषधशाला में वह शरीर और कषायों को क्षीण कर रहा है। उसके पास एक दिन रेवती गाथापत्नी आई थी तथा मोह-उन्मादजनक वचन दो-तीन बार कहे थे।

तए णं से महासयए समणोवासए रेवईए गाहावइणीए दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते ४ ओहिं पउंजइ पउंजित्ता ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी-जाव ‘उववज्जिहिसि’। णो खलु कप्पइ गोयमा! समणोवासगस्स अपच्छिम जाव झूसियसरीरस्स भत्तपाणपडियाइक्खियस्स परो संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं अणिट्टेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं अमणामेहिं वागरणेहिं वागरित्तए, तं गच्छ णं देवाणुप्पिया! तुमं महासययं समणोवासयं एवं वयाहि-णो खलु देवाणुप्पिया! कप्पइ समणोवासगस्स अपच्छिम जाव भत्तपाणपडियाइक्खियस्स परो संतेहिं जाव वागरित्तए। तुमे य णं देवाणुप्पिया! रेवई गाहावइणी संतेहिं ४ अणिट्टेहिं ५ वागरणेहिं वागरिया, तं णं तुमं एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव जहारिहं च पायच्छित्तं पडिवज्जाहि।

कठिन शब्दार्थ - पउंजइ - प्रयोग किया, संतेहिं - सत्य, तच्चेहिं - तत्त्वरूप-यथार्थ या उपचार रहित, तहिएहिं - तथ्य - अतिशयोक्ति या न्यूनोक्ति रहित, सब्भूएहिं - सद्भूत-जिनमें कही हुई बात सर्वथा विद्यमान हो, अणिट्टेहिं - अनिष्ट - जो इष्ट न हों, अकंतेहिं - अकान्त - जो सुनने में अकमनीय-असुंदर हो, अमणुण्णेहिं - अमनोज्ञ-जिन्हें मन न बोलना चाहे, न सुनना चाहे, अमणामेहिं - अमनाम-जिन्हें मन न सोचना चाहे न स्वीकारना चाहे, जहारिहं- यथोचित, पायच्छित्ते - प्रायश्चित्त, पडिवज्जाहि - स्वीकार करो।



भावार्थ - रेवती के वचन दो-तीन बार सुन कर महाशतक श्रमणोपासक कुपित हुआ। अवधिज्ञान में उपयोग लगा कर आगामी भव देखा तथा प्रथम नरक में उत्पन्न होवेगी यावत् वचन कहे। हे गौतम! अपश्चिममाराणांतिकी संलेखना स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा और आहार की अभिलाषा नहीं रखने वाले श्रावक को सत्य, तथ्य, यथार्थ एवं सद्भूत होते हुए भी अप्रिय, अकान्त, अनिष्ट लगने वाले, मन को नहीं भाने वाले और मन को बुरे लगने वाले वचन कहना नहीं कल्पता है। अतः हे देवानुप्रिय गौतम! तुम महाशतक के समीप पौषधशाला में जाओ और उससे कहो कि “संलेखना में श्रावक को ऐसे वचन कहना नहीं कल्पता है। तुमने रेवती गाथापत्नी को सत्य बात भी अप्रिय-अनिष्ट आदि लगने वाली कही, अतः उस दोष-स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर यथायोग्य प्रायश्चित्त स्वीकार करो।”

तए णं से भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स ‘तह’ त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव महासयगस्स समणोवासयस्स गिहे जेणेव महासयए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ।

भावार्थ - भगवान् का आदेश सुन कर गौतमस्वामी ने विनयपूर्वक स्वीकार किया और अपने स्थान से निकले तथा राजगृह नगर में प्रविष्ट होकर महाशतक श्रमणोपासक के घर पधारे।

महाशतक तुम प्रायश्चित्त लो

तए णं से महासयए समणोवासए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ जाव हियए भगवं गोयमं वंदइ णमंसइ। तए णं से भगवं गोयमे महासययं समणोवासयं एवं वयासी-‘एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ भासइ पण्णवेइ परूवेइ - णो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया! समणोवासगस्स अपच्छिम जाव वागरित्ते, तुमे णं देवाणुप्पिया! रेवई गाहावइणी संतेहिं जाव वागरिया, तं णं तुमं देवाणुप्पिया! एयस्स ठाणस्स आलोएहि जाव पडिवज्जाहि।’

भावार्थ - भगवान् गौतमस्वामी को पधारते हुए देख कर महाशतक श्रमणोपासक का चित्त प्रीति से भर गया, हृदय हर्षित हुआ यावत् उसने प्रसन्न हो कर भगवान् गौतमस्वामी को वंदना-नमस्कार किया। तब गौतमस्वामी ने महाशतक को फरमाया - “हे महाशतक! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी इस प्रकार आख्यान करते हैं, भाषण करते हैं, विशेष कथन करते हैं, प्ररूपणा करते हैं कि संलेखना-संधारा किए श्रावक को सत्य होते हुए भी अप्रिय वचन बोलना नहीं कल्पता है। तुमने रेवती गाथापत्नी को सत्य किन्तु अप्रिय वचन कहे। अतः हे देवानुप्रिय! उस दोष-स्थान की आलोचना प्रतिक्रमण कर प्रायश्चित्त कर के शुद्धिकरण करो।”

तए णं से महामयए समणोवासए भगवओ गोयमस्स ‘तह’ त्ति एयमट्ठे विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ जाव अहारिहं च पायच्छित्तं पडिवज्जइ। तए णं से भगवं गोयमे महासयगस्स समणोवासयस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं णयरं मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ णयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भावार्थ - तब महाशतक ने भगवान् गौतमस्वामी द्वारा कहे हुए भगवान् महावीर स्वामी के आदेश को ‘तहत्ति’-आपका कथन यथार्थ है-कह कर विनयपूर्वक स्वीकार किया और गौतमस्वामी के पास उस दोष-स्थान की आलोचना की, योग्य प्रायश्चित्त ग्रहण किया। तदनन्तर गौतमस्वामी अपने स्थान को पधारे तथा भगवान् महावीर स्वामी को वंदना-नमस्कार कर संयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए रहने लगे। तत्पश्चात् किसी दिन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने राजगृह नगर से निकल कर बाहर जनपद में विहार किया।

(६८)

तए णं से महासयए समणोवासए बहूहिं सील जाव भावेत्ता वीसं वासाइं

समणोवासयपरियायं पाउणित्ता एक्कारस उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणवडिंसए विमाणे देवत्ताए उववण्णे । चत्तारि पलिओवमाइं ठिई । महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ॥ णिक्खेवो ॥

॥ अट्टमं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ - उन महाशतक श्रमणोपासक ने श्रावक के बहुत-से व्रत एवं तपश्चर्या से आत्मा को भावित किया और बीस वर्ष की श्रावक-पर्याय का तथा ग्यारह उपासक-प्रतिमाओं का यथारीति सम्यक् पालन-स्पर्शन किया। मासिकी संलेखना से शरीर और कषायों को क्षीण करके मृत्यु के अवसर पर आलोचना प्रतिक्रमण कर, समाधिपूर्वक काल कर के सौधर्म देवलोक के अरुणावतंसक विमान में उत्पन्न हुए, जहाँ चार पल्योपम तक देव-स्थिति का उपभोग कर वे महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध मुक्त होंगे।

श्री सुधर्मा स्वामी फरमाते हैं कि हे जंबू! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से श्री उपासकदशांग सूत्र के अष्टम अध्ययन के जो भाव मैंने सुने, वे ही तुम्हें कहे हैं।

विवेचन - इस अध्ययन में विचारणा के लिए अनेक दृष्टिकोण उपलब्ध हैं - वेदमोहनीय की विचित्रता, आहार का वेदोदय के साथ सम्बन्ध, आहार का चित्तवृत्ति के साथ सम्बन्ध, ज्ञान होने पर भी कषायोदय से अविवेकपूर्ण भाषण आदि।

॥ आठवां अध्ययन समाप्त ॥



णवमं अज्झयणं - नवम अध्ययन

श्रमणोपासक नंदिनीपिता

(६६)

णवमस्स उक्खेवो। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी णयरी। कोट्टए चेइए जियसत्तू राया। तत्थ णं सावत्थीए णयरीए णंदिणीपिया णामं गाहावई परिवसइ, अट्ठे। चत्तारि हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ वुट्ठिपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं। अस्सिणी भारिखा। सामी समोसढे। जहा आणंदो तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ। सामी बहिया विहरइ।

भावार्थ - हे जंबू! उस समय श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्टक नामक उद्यान था। जितशत्रु राजा था। उस श्रावस्ती नगरी में 'नंदिनीपिता' नामक गाथापति रहता था, जो आहूय यावत् अपराभूत था। उसके पास चार करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ भण्डार में, चार करोड़ व्यापार में तथा चार करोड़ की घर-बिखरी थी। चार गो व्रज थे। उनकी भार्या का नाम 'अश्विनी' था। भगवान् महावीर स्वामी श्रावस्ती पधारे। आनन्द की भाँति नन्दिनीपिता ने भी श्रावक धर्म स्वीकार किया। भगवान् जनपद में विचरने लगे।

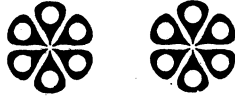
तए णं से णंदिणीपिया समणोवासए जाए जाव विहरइ। तए णं तस्स णंदिणीपियस्स समणोवासयस्स बहूहिं सीलव्वयगुणं जाव भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वीइक्कंताइं। तहेव जेट्ठं पुत्तं ठवेइ, धम्मपण्णत्तिं, वीसं वासाइं परियाणं, णाणत्तं अरुणगवे विमाणे उववाओ। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ॥ णिक्खेवो॥

॥ णवमं अज्झयणं समत्तं ॥

भावार्थ - नंदिनीपिता व्रत धारण कर श्रमणोपासक बन गए। जीवा-जीव के ज्ञाता यावत् साधु-साध्वियों को प्रासुक एषणीय आहार बहराने लगे। चौदह वर्ष के बाद ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का मुखिया नियुक्त कर दिया। उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना तथा अन्य तपश्चर्या आदि से बीस वर्ष तक की श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना से सौधर्म देवलोक के अरुणगवे विमान में उत्पन्न हो गए। वहाँ चार पल्योपम की स्थिति भोग कर और महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होंगे।

निक्षेप - आर्य सुधर्मास्वामी बोले - हे जम्बू! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नौवें अध्ययन का यही भाव फरमाया है, जो मैंने तुम्हें कहा है।

॥ नौवां अध्ययन समाप्त ॥



दसमं अज्झयणं - दशम अध्ययन

श्रमणोपासक सालिहीपिता

(७०)

दसमस्स उक्खेवो। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी णयरी। कोट्टए चेइए। जियसत्तू राया। तत्थ णं सावत्थीए णयरीए सालिहीपिया णामं गाहावई परिवसइ। अट्ठे दित्ते। चत्तारि हिरण्णकोडीओ णिहाणपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ वुट्ठिपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ। चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था फग्गुणी भारिया। सामी समोसढे। जहा आणंदो तहेव गिहिधम्मं पडिवज्जइ।

भावार्थ - हे जम्बू! उस समय श्रावस्ती नगरी थी। कोष्टक उद्यान था। जितशत्रु राजा था। वहाँ 'सालिहीपिता' नामक गाथापति रहते थे, जो आढ्य यावत् अपराभूत थे। उनके पास चार करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का भण्डार, चार करोड़ व्यापार में, चार करोड़ घर-बिखरी थी। चार गो-ब्रज थे। 'फाल्गुनी' नामक भार्या थी। उस समय भगवान् महावीरस्वामी का वहाँ पदार्पण हुआ। आनंद की भाँति सालिहीपिता ने श्रावक-व्रत धारण किए। भगवान् का विहार हो गया।

जहा कामदेवो तहा जेट्ठं पुत्तं ठवेत्ता पोसहसालाए समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। णवरं णिरुवसग्गाओ एक्कारस-वि उवासगपडिमाओ तहेव भाणियव्वाओ। एवं कामदेवगमेणं णेयव्वं जाव सोहम्मे कप्पे अरुणकीले विमाणे देवत्ताए उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

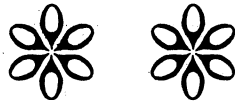
॥ दसमं अज्झयणं समत्तं ॥



कठिन शब्दार्थ - णिरुवसग्गाओ - उपसर्ग रहित।

भावार्थ - कामदेव के समान सालिहीपिता ने भी ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंप कर भगवान् की धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार की। उपसर्ग-रहित उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं तथा तपश्चर्या से आत्मा को भावित किया। सारा वर्णन कामदेव के समान जानना चाहिए। विशेषता यह कि मनुष्यायु पूर्ण कर के वे सौधर्म स्वर्ग के अरुणकील विमान में देव रूप में उत्पन्न हुए। वे चार पत्न्योपम की देव-स्थिति का उपभोग करेंगे और महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त होंगे।

॥ दशवां अध्ययन समाप्त ॥



उपसंहार

(७१)

दसण्ह वि पणरसमे संवच्छरे वट्टमाणाणं चिंता । दसण्ह - वि वीसं वासाइं
समणोवासयपरियाओ ।

कठिन शब्दार्थ - समणोवासयपरियाओ - श्रमणोपासक पर्याय ।

भावार्थ - दसों ही श्रावकों को पन्द्रहवें वर्ष में निवृत्ति धारण करने की इच्छा हुई। दसों ने बीस वर्ष की श्रमणोपासक-पर्याय का पालन किया ।

एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं
अयमट्ठे पणत्ते ।

भावार्थ - आर्य सुधर्मास्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा - हे जम्बू! मोक्ष प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने सातवें अंग उपासकदशा के दसवें अध्ययन का यह भाव फरमाया है।

उवासगदसाणं सत्तमस्स अंगस्स एणो सुयखंधो दस अज्झयणा एक्कसरगा
दससु चेव दिवसेसु उद्दिस्सिज्जंति तओ सुयखंधो समुद्दिस्सिज्जइ अणुण्णविज्जइ
दोसु दिवसेसु अंगं तहेव ।

॥ उवासगदसाओ समत्ताओ ॥

कठिन शब्दार्थ - सुयखंधो - श्रुतस्कंध, एक्कसरगा - एक सरीखा स्वर-पाठ शैली, दिवसेसु - दिवसों में, उद्दिस्संति - उद्देश किया जाता है, समुद्दिस्सइ - समुद्देश-सूत्र को स्थिर और परिचित करने का उद्देश किया जाता है, अणुण्णविज्जइ - अनुज्ञा दी जाती है।

भावार्थ - सातवें अंग उपासकदशा में एक श्रुतस्कंध तथा दस अध्ययन कहे गए हैं। ये दस अध्ययन एक समान है - एक सरीखा स्वर-पाठ शैली है, गद्यात्मक शैली में ग्रथित हैं। इनका अध्ययन दस दिनों में पूरा होता है, तत्पश्चात् समुद्देश किया जाता है, अनुज्ञा - सम्मति दी जाती है। दो दिनों में अंग का समुद्देश और अनुमति समझना चाहिये।

॥ उपासकदशांग सूत्र समाप्त ॥

उपासकदशांग का संक्षेप में परिचय

पूर्वाचार्य कृत गाथाएँ

श्रमणोपासकों के नगर

“वाणियगामे चंपा दुवे य वाणारसीए णयरीए।
आलभिया य पुरवरी, कंपिल्लपुरं च बोद्धव्वं ॥ १॥
पोलासं रायगिहं, सावत्थीए पुरीए दोण्णि भवे।
एए उवासगाणं, णयरा खलु होंति बोद्धव्वा ॥ २॥”

अर्थ - १. आनन्दजी श्रमणोपासक वाणिज्य ग्राम के थे, २. कामदेवजी चम्पानगरी के, ३. चूलनीपिता वाराणसी के, ४. सुरादेवजी भी वाराणसी के, ५. चूलशतकजी आलभिया के, ६. कुण्डकौलिकजी कम्पिलपुर के, ७. सकडालपुत्रजी पोलासपुर के, ८. महाशतकजी राजगृह के, ९. नन्दिनीपिताजी और १०. सालिहीपिताजी श्रावस्ती नगरी के निवासी थे।

श्रावकों की पत्नियों के नाम

सिवणंद-भद्ध-सामा, धण्ण-बहुल-पूस-अग्गिमित्ता य।

रेवइ अस्सिणि तह फग्गुणी य भज्जाण णामाइं ॥ ३॥

अर्थ - १. शिवानन्दा २. भद्रा ३. श्यामा ४. धन्ना ५. बहुला ६. पूषा ७. अग्निमित्रा ८. रेवती ९. अश्विनी और १०. फल्गुनी।

उपसर्ग

ओहिण्णाण-पिसाए, माया-वाहि-धण-उत्तरिज्जे य।

भज्जा य सुव्वया दुव्वया णिरुवसग्गया दोण्णि ॥ ४॥

अर्थ - १. अवधिज्ञान का २. पिशाच का ३. माता का ४. व्याधि का ५. धन का ६. वस्त्र और मुद्रिका का ७. भार्या का ८. रेवती पत्नी का ९.-१०. के कोई उपसर्ग नहीं हुआ।

विवेचन - आनंदजी को किसी प्रकार का उपसर्ग नहीं हुआ। गौतम स्वामी से संवाद होना एक विशेष घटना है, उपसर्ग नहीं। यही बात कुण्डकौलिक जी के विषय में है। अन्य छह

को देवकृत उपसर्ग हुए। माता, व्याधि आदि तो चलित होने के निमित्त थे। अतएव चार को उपद्रव रहित मानना उचित लगता है।

सौधर्म-स्वर्ग में उत्पन्न हुए उन विमानों के नाम

अरुणे अरुणाभे खलु, अरुणप्पह अरुणकंत सिद्धे य।

अरुणज्झए य छट्ठे, भूय-वडिंसे गवे कीले ॥ ५ ॥

अर्थ - १. अरुण २. अरुणाभ ३. अरुणप्रभ ४. अरुणकांत ५. अरुणशिष्ट ६. अरुणध्वज ७. अरुणभूत ८. अरुणावतंस ९. अरुणगव और १०. अरुणकिल विमान में उत्पन्न हुए।

गोधन की संख्या

चाली सट्ठि असीई, सट्ठी सट्ठी य सट्ठि दस सहस्सा।

असिई चत्ता चत्ता, एए वइयाण य सहस्साणं ॥ ६ ॥

अर्थ - १. चालीस हजार २. साठ हजार ३. अस्सी हजार ४. साठ हजार ५. साठ हजार ६. साठ हजार ७. दस हजार ८. अस्सी हजार ९. चालीस हजार और १०. चालीस हजार गौएँ थीं।

श्रावकों की धन सम्पत्ति

बारस अट्टारस चउवीसं तिविहं अट्टरसाइ णेयं।

धण्णेण ति चोव्वीसं, बारस बारस य कोडीओ ॥ ७ ॥

अर्थ - १. बारह हिरण्यकोटि २. अठारह हिरण्यकोटि ३. चौबीस हिरण्यकोटि ४. अठारह हिरण्यकोटि ५. अठारह हिरण्यकोटि ६. अठारह हिरण्यकोटि ७. एक हिरण्यकोटि ८. चौबीस हिरण्यकोटि ९. बारह हिरण्यकोटि और १०. के बारह हिरण्यकोटि धन था।

उपभोग परिभोग के नियम

उल्लण-दंतवण-फले अभिंणुव्वट्टणे सिणाणे य।

वत्थ-विलेवण-पुप्फे, आभरणं धूव-पेज्जाइ ॥ ८ ॥

भक्खोयण-सूव-घए सागे माहुर-जेमणऽण्ण-पाणे य।

तंबोले इगवीसं, आणंदाईण अभिग्गाहा ॥ ९ ॥



अर्थ - सभी श्रमणोपासकों के - १. शरीर पोंछने का अंगोछा २. दातुन ३. फल ४. तेल अभ्यंगन ५. उबटन ६. स्नान ७. वस्त्र ८. चन्दनादि विलेपन ९. पुष्प १०. आभरण ११. धूप १२. पान १३. मिष्ठान्न १४. चावल १५. दाल १६. घृत १७. शाक १८. मधुरक (फल) १९. भोजन २०. पानी और २१. मुखवास।

अवधिज्ञान का परिमाण

उद्वं सोहम्मपुरे लोलूए, अहे उत्तरे हिमवंते।

पंचसए तह तिदिसिं, ओहिण्णाणं दसगणस्स॥ १०॥

अर्थ - वे श्रमणोपासक (महाशतक को छोड़ कर) अवधिज्ञान से ऊर्ध्वलोक में सौधर्म-देवलोक तक, अधोलोक में रत्नप्रभा पृथ्वी के लोलुयच्चय नरकावास तक, उत्तर में हिमवंत वर्षधर पर्वत तक और पूर्व-पश्चिम और दक्षिण में पाँच सौ योजन लवण-समुद्र में जान-देख सकते थे।

विवेचन - सूत्र के अ० ८ में महाशतक श्रमणोपासक को एक हजार योजन तक लवण समुद्र में देखना लिखा है। अन्य सभी को पाँच सौ योजन है। यहाँ अन्तर मालूम देता है अथवा भेद होने के कारण महाशतक के अवधिज्ञान के विस्तार का गाथा में उल्लेख नहीं किया गया हो?

प्रतिमाओं के नाम

दंसण-वय-सामाइय पोसह-पडिमा-अबंभ-सच्चित्ते।

आरंभ-पेस-उद्दिट्ठ-वज्जए समणभूए य॥११॥

इक्कारस पडिमाओ, वीसं परियाओ अणसणं मासे।

सोहम्मे चउपलिया, महाविदेहंमि सिज्झिहिइ॥१२॥

अर्थ - १. दर्शन २. व्रत ३. सामायिक ४. पौषध ५. कायोत्सर्ग ६. ब्रह्मचर्य ७. सचित्त आहार-त्याग ८. स्वयं आरम्भ-वर्जन ९. भृतक प्रेष्यारंभ वर्जन १०. उद्दिष्टभक्त वर्जन और ११. श्रमणभूत प्रतिमा। ये ग्यारह श्रावक प्रतिमाओं के नाम हैं। अंत में इन दसों श्रावकों की श्रावक पर्याय बीस वर्ष की थी। एक मास की संलेखना तथा अनशन द्वारा देह त्याग किया। सौधर्म देवलोक में चार-चार पत्योपम की आयु वाले देवों के रूप में उत्पन्न हुए। देव भव के अनन्तर सभी महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे और मोक्ष प्राप्त करेंगे।

परिशिष्ट

तुंगिका के श्रमणोपासक

देवाधिदेव श्रमण भगवान् महावीर प्रभु के उपासकों में, तुंगिका नगरी के श्रमणोपासकों का उल्लेख भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक ५ में आया है। उनकी पौद्गलिक और आत्मिक ऋद्धि का मार्मिक वर्णन है। विषय के अनुरूप होने के कारण यह विषय यहाँ उद्धृत किया जाता है।

“तए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहाओ णयराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय विहारं विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं तुंगिया णामं णयरी होत्था, वण्णओ। तीसे णं तुंगियाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे पुप्फवइए णामं चेइए होत्था, वण्णओ। तत्थ णं तुंगियाए णयरीए बहवे समणोवासया परिवसंति, अट्ठा दित्ता वित्थिण्णविपुलभवण-सयणाऽसण-जाण-वाहणाइण्णा, बहुधण- बहुजायरूव-रयया, आओगपओग-संपउत्ता, विच्छड्डिय-विपुल-भत्तपाणा, बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलयप्पभूया, बहुजणस्स अपरिभूया।”

अर्थ - उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशील चैत्य से निकल कर अन्य जनपद में विचर रहे थे।

उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशील चैत्य से निकल कर अन्य जनपद में विचर रहे थे।

उस समय तुंगिका नाम की नगरी थी। उस नगरी के बाहर पूर्वोत्तर दिशा में पुष्पवती नाम का उद्यान था। तुंगिका नगरी में बहुत-से श्रमणोपासक निवास करते थे। वे श्रमणोपासक आढ्य (धन-धान्य से परिपूर्ण) दीप्त (देदीप्यमान) थे। उनके भवन विशाल-विस्तीर्ण थे। शयन-आसन, यान-वाहन आदि सुख के साधन भी उनके पास बहुत और उत्तम थे। धन एवं सोना-चाँदी से भी वे परिपूर्ण थे। वे लेन-देन एवं ब्याज पर धन लगाने का व्यवसाय भी बहुत करते थे। उनके यहाँ बहुत लोग भोजन करते थे। इसलिए झूठन में भी भोजन बहुत रह जाता था। उनके दास-दासी, गाय, भैंस, भेड़-बकरियाँ भी बहुत थे। वे समर्थ थे। उन्हें कोई भी विचलित नहीं कर सकता था।

श्रमणोपासकों की आत्मिक सम्पत्ति

“अभिगयजीवाऽजीवा, उवलद्ध पुण्ण-पावा आसव-संवर-णिज्जर-किरियाऽहिगरण-बंध-मोक्ख-कुसला। असहेज्जदेवाऽसुर-णाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किण्णर-किंपुरुष-गरुल-गंधव्व-महोरगाईएहिं देवगणेहिं णिग्गंथाओ पावयणाओ अणतिककमणिज्जा, णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिया णिककंखिया णिव्वितिगिच्छा, लद्धट्ठा, गहियट्ठा, पुच्छियट्ठा, अभिगयट्ठा, विणिच्छियट्ठा, अट्ठिमिंजपेमाणु-रागरत्ता। “अयमाउसो! णिग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे। उसियफलिहा, अवंगुय दुवारा, चियत्तंतेउरघरप्पवेसा। बहूहिं सीलव्वय-गुण वेरमण-पच्चक्खाणपोसहोववासेहिं चाउदसट्ठमुट्ठिट्ठ-पुण्णमासिणीसु परिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा, समणे णिग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेणं पडिलाभेमाणा अहापडिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।”

सूत्रकार ने उपरोक्त शब्दों में उन आदर्श श्रमणोपासक महानुभावों की भव्य आत्म-ऋद्धि का अच्छा परिचय दिया है।

अभिगय जीवाऽजीवा - उन श्रमणोपासकों ने जीव और अजीव तत्त्व का स्वरूप जानने के साथ अभिगत - आत्मा में स्थापित कर लिया था।

उवलद्धपुण्ण-पावा - पुण्य और पाप तत्त्व का अर्थ और आशय प्राप्त कर लिया था। पुण्य और पाप के निमित्त, भाव, क्रिया और परिणाम समझ कर हृदयंगम कर चुके थे।

आसव-संवर-णिज्जर.....मोक्खकुसला - आसव-संवर-निर्जरा-क्रिया-अधिकरण-बंध और मोक्ष के स्वरूप, साधन, आचरण, बंधन और मुक्ति का स्वरूप वे समझे हुए थे। वे आर्हत सिद्धांत में दक्ष थे, निपुण एवं विशेषज्ञ थे। आत्म-परिणत ज्ञान के वे धारक थे।

वे तत्त्वज्ञ, तत्त्वानुभवी, तत्त्वसंवेदक एवं तत्त्वदृष्टा विद्वान् थे।

आत्मतत्त्व, आत्मवाद, आत्मा का स्वरूप, आत्मा की वैभाविक और स्वाभाविक दशा का ज्ञान, आत्मा को अनात्म द्रव्य से संबद्ध करने वाले भावों और आचरणों एवं मुक्त होने के उपाय, मुक्तात्मा का स्वरूप आदि के वे तलस्पर्शी ज्ञाता थे। हेय-ज्ञेय और उपादेय का विवेक करने में निपुण थे।

असहेज देवासुर..... वे श्रमणोपासक सुख-दुःख को अपने कर्मोदय का परिणाम मान कर शांतिपूर्वक सहन करते थे। परन्तु किसी देव-दानव की सहायता की इच्छा भी नहीं करते थे। वे अपने धर्म में इतने दृढ़ थे कि उन्हें देव-दानवादि भी चलित नहीं कर सकते थे।

णिगंथे पावयणे णिस्संकिया - निर्ग्रन्थ-प्रवचन - जिनेश्वर भगवंत के बताये हुए सिद्धांत में दृढ़ श्रद्धावान् थे। उनके हृदय में सिद्धान्त के प्रति किसी प्रकार की शंका नहीं थी। वे जिनधर्म के अतिरिक्त अन्य किसी भी धर्म की आकांक्षा नहीं रखते थे, क्योंकि निर्ग्रन्थ प्रवचन में उनकी पूर्ण श्रद्धा थी। धर्मारोधन के फल में उन्हें तनिक भी संदेह नहीं था।

लद्धट्ठा गहियट्ठा उन्होंने तत्त्वों का अर्थ प्राप्त कर लिया था। जिज्ञासा उत्पन्न होने पर भगवान् अथवा सर्वश्रुत या बहुश्रुत गीतार्थ से पूछ कर निश्चय किया था। सिद्धांत के अर्थ को भली प्रकार समझ कर धारण कर लिया था। उन्होंने तत्त्वों का रहस्यज्ञान प्राप्त कर लिया था।

अट्टिमिंज पेमाणुसगरत्ता - उन एक भवावतारी श्रमणोपासकों की धर्मश्रद्धा इतनी बलवती थी कि उनके आत्म-प्रदेशों में धर्म-प्रेम गाढ़ से गाढ़तर और गाढ़तम हो गया था। उसके प्रभाव से उनकी हड्डियाँ और मज्जा भी उस प्रशस्त राग से रंग गई थी। भवाभिनन्दियों और पुद्गल राग-रक्त जीवों के तो अप्रशस्त राग से आत्मा और अस्थियाँ मैली-कुचेली बनी रहती हैं। जब वह मैल कम होता है तब आत्मा में धर्मप्रेम जागता है। ज्यों-ज्यों धर्म-राग बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों कालिमा हट कर प्रशस्त शुभ रंग चढ़ता है, फिर एक समय ऐसा भी आता है कि सभी राग-रंग उड़ कर विराग-दशा हो जाती है। यह उस नष्ट होती हुई कर्म-कालिमा की सुधरी हुई अवस्था है, जिसमें दुःखद-परिणाम वाली कषैली प्रकृति धुल कर स्वच्छ बनाती है और उसके साथ शुभरंग का योग होता है। फिर कालिमा का अंश मिटा कि शुभ भी साथ ही मिट कर आत्म-द्रव्य शुद्ध हो जाता है।

अयमाउसो! णिगंथे पावयणे..... उनके धर्म-राग की उत्कृष्टता का प्रमाण यह है कि जब साधर्मीबन्धु परस्पर मिलते अथवा किसी के साथ उनकी धर्म-चर्चा होती, तो उनके हृदय के अन्तस्तल से यही स्वर निकलता - “आयुष्मन्! यदि संसार में कोई सारभूत अर्थ है, तो एकमात्र निर्ग्रन्थ-प्रवचन=जिनधर्म ही है। यही परम अर्थ - उत्कृष्ट लाभ है। शेष सभी (धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार एवं अन्य मत) अनर्थ=दुःखदायक हैं।

उसियफलिहा अवंगुयदुवारा - वे उदार थे, दाता थे। उनके घर के द्वार याचकों के लिए खुले रहते थे। पाखण्डियों एवं कुप्रावचनिकों से उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था।

चियत्तंतेउरघरप्पवेसा - जनता में उनकी प्रतीति ऐसी थी कि वे कार्यवश किसी के घर में अथवा राज के अन्तःपुर में प्रवेश करते, तो जनता को उनके चरित्र में किसी प्रकार की शंका नहीं होती। वे अपने स्वदार-संतोष व्रत में दृढ़ थे और जनता के विश्वासपात्र थे।

वे अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान, अणुव्रत-गुणव्रत, सामायिक, पौषधोपवास और अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण पौषध व्रत का पालन करते थे और श्रमण-निर्ग्रन्थ - साधु-साध्वी को अचित्त निर्दोष आहार-पानी, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोक्षण, पीढ-फलक स्थान-संस्कारक औषध-भेषज आदि भक्तिपूर्वक प्रतिलाभित करते रहते थे और यथाशक्ति तप करते हुए अपनी आत्मा को पवित्र करते रहते थे।

भगवान् के इन श्रमणोपासकों का चरित्र इस उपासकदशांग सूत्र के साथ जोड़ने का यही आशय है कि हम उनके चरित्र का मनन करें और उनका अवलम्बन लेकर अपना जीवन सुधारें। अन्य विचारों और इधर-उधर देखना छोड़ कर अपने इस आदर्श को ही अपनावेंगे तो हमारी नय्या पार हो जायेगी।



श्री कामदेव जी की सज्जाय

(अध्ययन २ के आधार पर)

श्रावक श्री वीर ना चम्पा ना वासीजी। अन्तरा।
एक दिन इन्द्र प्रशंसियोजी, भरी सभा के मांय।
दृढ़ताई कामदेव नी, कोई असुर सके न चलाय॥श्रा०॥१॥

सरध्यो नहीं एक देवता जी, रूप पिशाच बनाय।
कामदेव श्रावक कने आयो, पौषधशाला के मांय॥२॥

हं भो! रे कामदेवजी! थाने कल्पे नहीं रे कोय।
थारे धरम नहीं छोड़वो पण, हुं छोड़ावसुं तोय॥३॥

रूप पिशाच नो देखने जी, डरिया नहीं मन मांय।
जाण्यो मिथ्यात्वी देवता, दियो ध्यान में चित्त लगाय॥४॥

एकबार मुखसुं कहो, इम देव कहे वारंवार।
कामदेव बोल्या नहीं, जद देव आयो छे बहार॥५॥

हाथी रूप वैक्रेय कियोजी, पिशाच पणो कियो दूर।
पौषधशाला में आयने, वो बोले वचन करूर॥६॥

मन करी चलिया नहीं, तब हाथी सुंड में झाल।
पौषधशाला में आयने, वो बोले वचन करूर॥७॥

मन करी चलिया नहीं, तब हाथी सुंड में झाल।
पौषधशाला के बाहिरे, दियो आकाश मांहि उछाल॥८॥

दंतशूल पर झेलने जी, कमल नी पेरे रोल।
उज्वल वेदना उपनी पण, रह्यो ध्यान अडोल॥९॥

गज रूप तजी सर्प हुवोजी, कालो महा विकराल।
डंक दियो कामदेव ने, यो क्रोधी महा चंडाल॥१०॥

उज्वल वेदना उपनीजी, डरिया नहीं तिल मात्र।
सूर थाकी प्रकट हुवोजी, देवता रूप साक्षात्॥११॥

करजोड़ी यूं विनवे, थारा सुरपति किया रे वखाण।
मैं मूढमति सरध्यो नहीं, थाने उपसर्ग दियो आण॥१२॥

मन करी डगिया नहीं जी, थें धर्म पाया परिणाम।
खमो अपराध माहरो कही, देव गयो निज स्थान॥१३॥

वीर जिनन्द समोसर्याजी, कामदेव वन्दन जाय।
वीर कहे उपसर्ग दियोजी, देव मिथ्यात्वी आय॥१४॥

हां स्वामीजी सांच छे, जब श्रमण श्रमणी बुलाय।
घड़ बेठां उपसर्ग सह्यो, इम प्रशंसे जिनराय॥१५॥

बीस वरस शुद्ध पालियाजी, श्रावक ना व्रत बार।
देवलोक मां उपन्या, चवी जासे मोक्ष मझार॥१६॥

मरुधर देश सुहामणोजी, जयपुर कियो चोमास।
अष्टादस शत छयासीए, खुशालचन्द जोड़ी प्रकाश॥१७॥

